एकादशी माहात्म्य

(हिन्दी टीका सहित)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

अथ एकादशीमाहात्म्यं हिन्दीटीका सहितं प्रारभ्यते

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : नवंबर २०१९, संवत् २०७६

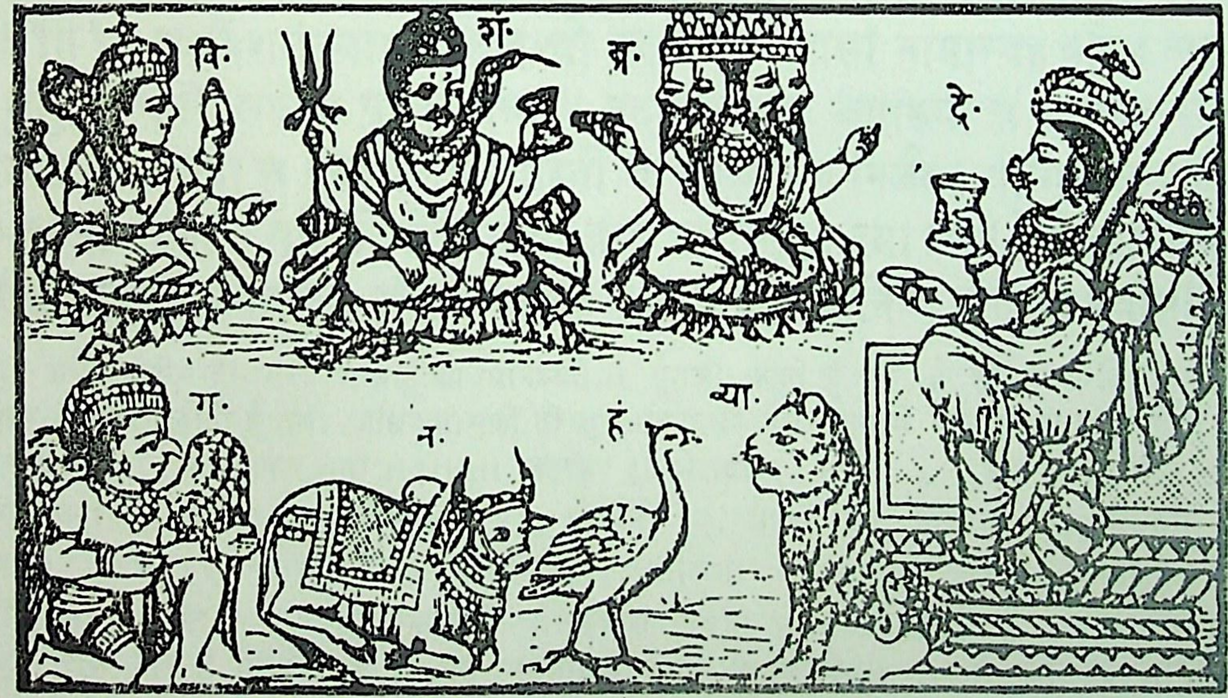
मूल्य : २५० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass, Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.


वि.
शं.
ब्र.
दे.
ग.
न.
हं.
व्या.

श्रीगणेशाय नमः॥ सूत उवाच॥ अथ द्वादशमासेषु एकादश्यो भवन्ति याः॥ अधिके मासि चाप्यन्ये ये च द्वे भवतः शुभे॥१॥ एवं षड्विंशसंख्याका एकादश्यो भवंति हि॥ तासां नामान्यहं वच्मि शृणुध्वं सुसमाहिताः॥२॥ उत्पन्ना मोक्षदा चापि सफला पुत्रदा तथा॥ षट्तिलाख्या जयाख्या च विजयाऽऽमलकीति च॥३॥ पापमोचनिकाख्या च कामदा च वरूथिनी॥ मोहिनी चापराख्या च निर्जला योगिनी तथा॥४॥ विष्णोर्देवस्य शयनी पवित्रा पुत्रदा त्वजा॥ परिवर्तिनींदिराख्या तथा पाशांकुशा रमा॥५॥ देवोत्थानीति च प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिनामभिः॥ द्वे चाप्यधिकमासस्य पद्मिनी परमेति च॥६॥ अन्वर्थानि च नामानि सर्वासां विद्धि निश्चितम्॥

श्रीगणेशाय नमः॥ अथैकादशीमाहात्म्यस्य भाषाटीका प्रारभ्यते॥ सूतजी कहते हैं कि, हे शौनक आदि ऋषीश्वरो! सुनिये, बारह मासों में जो चौबीस एकादशी होती हैं तथा अधिकमासकी दो शुभ एकादशी ऐसे गणनामें कुल छब्बीस एकादशी होती हैं, उनके नाम मैं कहता हूँ तुम सब सावधान मन होकर सुनो॥१॥२॥ उत्पन्ना १, मोक्षदा २, सफला ३, पुत्रदा ४, षट्तिला ५, जया ६, विजया ७, आमलकी ८, पापमोचना ९, कामदा १०, वरूथिनी ११, मोहिनी १२, अपरा १३, निर्जला १४, योगिनी १५, देवशयनी १६, पुत्रदा १७, पवित्रा १८, अजा १९, परिवर्तिनी २०, इन्दिरा २१, पाशांकुशा २२, रमा २३ और देवोत्थानी २४। ये चौबीसोंके नाम कहे और पद्मिनी १ तथा परमा २ नाम दो एकादशी अधिकमास अर्थात् मलमासमें होती हैं॥३॥४॥५॥६॥ इन सबके नाम अन्वर्थ कहिये, जैसे नाम हैं वैसेही गुण हैं–जैसे भगवान्के अंगसे उत्पन्न होनेसे उत्पन्ना कही गई और चंपकनगरके वैखानस

तद्धि सर्वं कथाभिस्तु स्फुटतां यास्यति ध्रुवम् ॥ ७ ॥ व्रतमुद्यापनं चासां यदि कर्तुं न शक्नुयात् ॥ तदा संकीर्त्तनान्नाम्नां सद्यस्तत्फलमाप्नुयात् ॥८॥ अथ कथा ॥ सूत उवाच ॥ एवं प्रीत्या पुरा विप्राः श्रीकृष्णेन परं व्रतम् ॥ कथितं तत्प्रयत्नेन यः कुर्याद्भुवि मानवः ॥१॥ भुक्त्वा भोगाननेकांस्तु विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥ पार्थ उवाच ॥ उपवासस्य नक्तस्य तथैवायाचितस्य भो ॥ किं पुण्यं किं विधानं हि ब्रूहि सर्वं जनार्दन ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ हेमन्ते चैव संप्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे ॥ शुक्लपक्षे तथा पार्थ एका दश्यामुपोष्य च ॥३॥

नाम राजाके पुत्रको मोक्ष देनेसे मोक्षदा नाम हुआ ऐसेही सभीके नाम समझना चाहिये यह सब आगे इनकी कथाओंसे निश्चय हो जायगा ॥७॥ और जो इन एकादशियोंके व्रत तथा उद्यापन करनेमें समर्थ न हो तो इनके नामोंका कीर्त्तन करनेसे शीघ्रही फल प्राप्त होता है ॥८॥ उत्पन्ना मार्गकृष्णे या भवत्येकादशी शुभा ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां कुर्वे सुदीपिकाम् ॥ अथ कथा ॥ नैमिषारण्य क्षेत्र में सूतजी अट्ठासी हजार शौनक आदि ऋषियोंसे बोले कि, हे ब्राह्मणो! श्रीकृष्ण महाराजने बडी प्रीतिसे श्रेष्ठव्रत युधिष्ठिर आदि पांडवोंको पहले बताये हैं, इनको पृथ्वीमें जो मनुष्य यत्नपूर्वक करेगा ॥१॥ वह इस लोकमें अनेक भोगोंको भोगकर अन्त समय विष्णुके लोकमें जायगा । अर्जुन बोले कि, हे जनार्दन! इस एकादशी व्रतका क्या पुण्य है और कौनसी विधिसे इसको करना चाहिये, आप कृपा करके सब बताइयेगा ॥२॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ हेमन्तऋतु मार्गशीर्ष महीना आनेपर कृष्णपक्ष तथा शुक्लपक्षमें एकादशीके दिन

दशम्यां चैव यत् किंचित् यः कुर्यात्सुदृढ़ व्रतम् ॥ नक्तं च तद्दिने कृत्वा दशम्यां दन्तधावनम् ॥४॥ दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे ॥ तत्र नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥५॥ ततः प्रभातसमये संकल्प्य नियमांश्चरेत् ॥ मध्याह्ने च तथा पार्थ शुचिः स्नातः समाहितः ॥६॥ नद्यां तडागे वाप्यां वा उत्तमं मध्यमं त्वधः ॥ क्रमाज्ज्ञेयं तथा कूपे तदभावे प्रशस्यते ॥७॥ अश्वक्रांते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥८॥ त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम् ॥ अनेन मृत्तिकास्नानं विदधीत व्रती नरः ॥९॥ नालपेत् पतितैश्चौरैस्तथा पाषण्डिभिः सह ॥ मिथ्यापवादिनो देववेदब्राह्मणनिन्दकान्

व्रत करके ॥ ३ ॥ दशमीके दिन कुछ दृढ़ व्रत करे और रात्रिके समय दातून करे ॥ ४ ॥ और दिनके आठवें भागमें जब सूर्यका तेज मन्द हो जाय उस समयसे रात्रि जानना चाहिये और उसी समयसे भोजन न करे ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल संकल्प करके नियमोंको करे और हे अर्जुन ! मध्याह्नमें शुद्ध और सावधानचित्त से स्नान करे ॥ ६ ॥ नदी, तलाव अथवा बावडीमें स्नान क्रमसे उत्तम, मध्यम और अधम जानना चाहिये और इन तीनों के अभाव में कूपही पर स्नान करना श्रेष्ठ है ॥७॥ हे अश्वक्रान्ते ! हे रथक्रान्ते ! हे विष्णुक्रान्ते ! हे वसुन्धरे! हे मृत्तिके ! पूर्व जन्ममें संचित मेरे पापों को तू हर ले ॥ ८ ॥ तुम्हारे द्वारा पापों के नष्ट होने से मैं परमगति को पा जाऊंगा इस मंत्रसे मनुष्य स्नानसे प्रथम मृत्तिका स्नान करे ॥९॥ व्रत के दिन पतित, चोर, पाखण्डी और झूठा अपवाद लगानेवाले तथा देवता और ब्राह्मणकी

॥१०॥ अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागामिनस्तथा ॥ परद्रव्यापहृतश्चैव देवद्रव्यापहारिणः ॥११॥ न सम्भाषेत दृष्ट्वाऽपि भास्करं चावलोकयेत् ॥ ततो गोविंदमभ्यर्च्य नैवेद्यादिभिरादरात् ॥ १२ ॥ दीपं दद्याद् गृहे चैव भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ तद्दिने वर्जयेत् पार्थ निंदां मैथुनमेव च ॥ गीतशास्त्रविनोदेन दिवारात्रं नयेद्व्रती ॥१३॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१४॥ यथा शुक्ला तथा कृष्णा मान्या वै धर्मतत्परैः ॥ एकादश्योर्द्वयो राजन् विभेदं नैव कारयेत् ॥१५॥ एवं हि कुरुते यस्तु शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥१६॥ एकादश्युपवासस्य कलां

निन्दा करनेवाले मनुष्यों से । वार्तालाप न करे ॥१०॥ और जो दुष्ट आचारवाले मनुष्य हैं, और अगम्या, जो माता भगिनी आदि हैं उनसे गमन करनेवाले मनुष्यों से, पराया धन अपहरण करने वाले तथा देवताका द्रव्य लेनेवाले मनुष्यों से संभाषण न करे ॥११॥ यदि कदाचित् इनके दर्शन हो जायँ तो सूर्यका दर्शन करके तदनन्तर नैवेद्य आदि से आदरपूर्वक गोविंदका पूजन करे ॥१२॥ और भक्तियुक्तचित्तसे घरमें आरती आदि करे, हे अर्जुन ! उस दिन व्रती मनुष्य पर-निन्दा और स्त्रीसंग न करे । भजन आदि गाता हुआ शास्त्रीय आनन्द में दिन-राति व्यतीत करे ॥१३॥ भक्तियुक्त चित्त से रात्रिमें जागरण करे और ब्राह्मणको दक्षिणा देकर नमस्कार करके क्षमा-याचना करे ॥१४॥ जिस प्रकार कृष्णपक्षकी उसी भांति शुक्लपक्षकी एकादशी धर्मात्मा मनुष्यको मानना चाहिये । दोनों में कोई भेद न माने ॥१५॥ इस प्रकार व्रत करने वाले को जो फल-प्राप्ति होती है उसे सुनो—मनुष्य को शंखोद्धार नामक क्षेत्रमें स्नान कर गदाधर भगवान्के दर्शन करनेसे जो

नार्हति षोडशीम् ॥ व्यतीपाते च दानस्य लक्षमेकं फलं स्मृतम् ॥ १७ ॥ संक्रांतिषु चतुर्लक्षं यो ददाति धनं-जय ॥ कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ १८ ॥ तत्सर्वं लभते यस्तु एकादश्यामुपोषितः ॥ अश्व-मेधस्य यज्ञस्य करणाद्यत्फलं लभेत् ॥ ततः शतगुणं पुण्यमेकादश्युपवासतः ॥१९॥ तपस्विनो गृहे नित्यं लक्षं यस्य च भुञ्जते ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि तस्य पुण्यं च यद्भवेत् ॥२०॥ एकादश्युपवासेन पुण्यं प्राप्नोति मानवः ॥ गोसहस्रे च यत्पुण्यं दत्ते वेदांग पारगे ॥ २१ ॥ तस्मात्पुण्यं दशगुणमेकादश्युपवासिनाम् ॥ नित्यं भुञ्जते यस्य दश चैव द्विजोत्तमाः ॥२२॥ भवेत्तद्धे दशगुणभोजने ब्रह्मचारिणः ॥ एतत्सहस्रं भूदाने कन्यादाने ततः

फल प्राप्त होता है ।। १६ ।। वह फल एकादशीके व्रतकी सोलहवीं कला अर्थात् सोलहवें भागके भी समान नहीं है । व्यतीपातनाम योगमें जो दान दिया जाता है उसका एक लक्ष फल कहा गया है ।। १७ ।। और हे अर्जुन ! सक्रांतिमें जो दान दिया जाता है उसका चार लक्ष फल और चन्द्र तथा सूर्यके ग्रहणमे जो कुरुक्षेत्र में फल होता है ।। १८ ।। उन सब फलोंको एकादशी व्रत करनेवाला मनुष्य प्राप्त करता है । अश्व मेघ यज्ञके करनेसे जो फल प्राप्त होता है उससे सौगुणा एकादशीका व्रत करनेसे फल होता है ।।१९।। जिसके घरमें एक लाख तपस्वी नित्य भोजन करते हों, साठ हजार वर्षमें उसको जो फल मिलता है ।। २० ।। वह पुण्य मनुष्यको एकादशी व्रतसे प्राप्त होता है और वेद पढ़नेवाले मनुष्यको हजार गौ देनेसे जो पुण्य होता है ।। २१ ।। उस पुण्यसे दशगुणा अधिक पुण्य एकादशीव्रत करनेवाले मनुष्यको होता है । घरमें नित्य उत्तम दश ब्राह्मण भोजन कराने से, ।। २२ ।। दशगुणा अधिक एक ब्रह्मचारीके भोजन करानेसे फल होता है उससे हजारगुणा अधिक

स्मृतम् ॥२३॥ तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं विद्यादाने तथैव चविद्यादशगुणं चान्नं यो ददाति बुभुक्षिते ॥२४॥
अन्नदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ तृप्तिमायांति कौन्तेय स्वर्गस्थाः पितृ देवताः ॥२५॥ एकादशीव्रत-
स्यापि पुण्यसंख्या न विद्यते॥ एतत्पुण्यप्रभावश्च यत्सुरैरपि दुर्लभः ॥२६॥ नक्तस्यार्द्धं फलं तस्य एकभुक्तस्य
सत्तम ॥ एकभुक्तं च नक्तं च उपवासस्तथैव च ॥२७॥ एतेष्वन्यतमं वापि व्रतं कुर्याद्धरेर्दिने ॥ तावद्गर्जंति
तीर्थानि दानानि नियमा यमाः ॥२८॥ एकादशी न संप्राप्ता यावत्तावन्मखा अपि॥ तस्मादेकादशी सर्वैरुपोष्या
भवभीरुभिः ॥ २९ ॥ न नखेन पिबेत्तोयं न हन्यान्मत्स्यसूकरान् ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत यन्मां त्वं पृच्छसे-

भूमिके दानका फल होता है और उससे हजारगुणा अधिक कन्यादानका फल कहा गया है ।। २३ ।। इसी भांति उससे दशगुणा विद्यादान का फल कहा गया है और भूखेको भोजन देने के पुण्यसे भी दशगुणा अधिक है ।। २४ ।। अन्नदानके समान कोई दान नहीं, अन्नदानसे स्वर्गमें स्थित पितर और देवता तृप्तिको प्राप्त होते हैं ।। २५ ।। एकादशीके व्रतके पुण्यों की संख्या नहीं है यह देवताओं को भी दुर्लभ है ।। २६ ।। हे सत्तम ! अर्थात् हे बड़े सज्जन अर्जुन ! रात्रिमें भोजन करने वाले को और दिनमें एकबार भोजन करनेवाले को आधा फल मिलता है एकबार भोजन करना, रात्रिमें भोजन करना और उपवास करना, ।। २७ ।। इन तीनि प्रकारके व्रतोंमें से एकादशीके दिन कोई न कोई व्रत करना चाहिये । तभी तक तीर्थ, दान, नियम, और यम गरजते हैं ।। २८ ।। जब तक एकादशी नहीं आती है । और यज्ञ भी तभी तक गरजते हैं । इसलिए संसारसे डरे हुये मनुष्योंको एकादशीका व्रत अवश्य करना चाहिये ।। २९ ।। हे अर्जुन ! तुम्हारे पूँछने से मैं कहता हूँ

ऽर्जुन ॥३०॥ एतत्ते कथितं सर्वं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ एकादशीसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम् ॥ ॥ ३१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ उक्ता त्वया कथं देव पुण्येयं सर्वतस्तिथिः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पुरा कृतयुगे पार्थ मुरुनामा हि दानवः ॥ अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेवभयंकरः ॥३२॥ इन्द्रो विनिर्जितस्तेन ह्यत्युग्रेण च पांडव ॥ इन्द्रेण कथितः सर्वो वृत्तांतः शंकराय वै ॥ ३३ ॥ सर्वलोकपरिभ्रष्टा विचरामो महीतले ॥ उपायंब्रूहि मे देव त्रिदशानां तु का गतिः ॥ ३४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ देवराज सुरश्रेष्ठ यत्रास्ति गरुडध्वजः ॥ शरण्यश्च जगन्नाथः परित्राणपरायणः ॥ ३५ ॥

कि, नखों से जल न पिये, मच्छियों तथा सुअरोंको न मारे और एकादशीको भोजन न करे ।। ३० ।। यह मैंने तुमसे सब व्रतोंमें उत्तम व्रत कहा, उस एकादशीव्रतके समान हजार यज्ञ भी नहीं हैं ।। ३१ ।। अर्जुन बोले कि हे देव ! आपने एकादशीको सब तिथियोंमें श्रेष्ठ तिथि क्यों कहा वह कथा सुननेकी मेरी इच्छा है । श्रीकृष्ण बोले–कि, हे अर्जुन ! पहिले कृतयुगमें अति अद्भुत और बहुतही भयानक देवताओं को भय देनेवाला मुरु नामक दैत्य था ।। ३२ ।। हे पांडव ! उस अति उग्र मुरु नाम दैत्य ने इन्द्रको जीत लिया । तब इन्द्रने यह सम्पूर्ण वृत्तांत महादेवसे कहा ।। ३३ ।। कि, हे महाराज ! हम सब अपने लोकसे भ्रष्ट होकर भूमिमें विचरण कर रहे हैं हे देव ! उपाय बताओ, देवताओंकी कौनसी गति है । हे ईश्वर ! कहिये ।। ३४ ।। श्रीमहादेवजी बोले–कि हे देवताओंमें श्रेष्ठ देवराज ! शरणागतकी रक्षा करने वाले, जगत्के स्वामी और रक्षामें तत्पर श्रीभगवान् विष्णु जहां हैं ।। ३५ ।। वहां हम सब चलते हैं, वे ही हमारा कार्य करेंगे, शिवजीके ऐसे

तत्र गच्छामहे सर्वे स नः कार्यं विधास्यति ॥ ईशस्य वचनं श्रुत्वा देवराजो महामनाः ॥ ३६ ॥ पुरस्कृत्य महादेवं सगणं समरुद्गणम् ॥ यत्र देवो जगन्नाथः प्रसुप्तो हि जनार्दनः ॥३७॥ जलमध्ये प्रसुप्तं तु दृष्ट्वा देवं जगत्पतिम् ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा रुद्रः स्तोत्रमुदीरयत् ॥३८॥ ॐ नमो देवदेवाय देवदेवैः सुवंदितः ॥ दैत्यारे पुण्डरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन ॥३९॥ दैत्यभीता इमे देवा मया सह समागताः ॥ शरणं त्वं जगन्नाथः त्वं-कर्ता त्वं च कारकः ॥४०॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥ त्वं स्थितिस्त्वं तथोत्पत्तिस्त्वं च संहारकारकः ॥४१॥ सहायस्त्वं च देवानां त्वं च शांतिकरः प्रभो ॥ त्वं धरा च त्वमाकाशः सर्वविश्वोपकारकः

वचन सुनकर महामना इन्द्र ॥ ३६ ॥ समस्त शिव गणों और मरुद्गणों जो देवताओंके समूह हैं उनके साथ श्रीमहादेवजीको आगे करके जहाँ जगत् के स्वामी श्रीभगवान् सो रहे थे वहां गये ॥३७॥ जगत्के स्वामी जो श्रीभगवान् हैं उनको जलके मध्यमें सोते देखकर श्रीमहादेवजी हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥३८॥ हे देवताओंके देवता और श्रेष्ठ देवताओं द्वारावंदित तथा दैत्योंके शत्रु हे पुण्डरीकाक्ष ! हे मधुसूदन! हमारी रक्षा करो ॥ ३९ ॥ दैत्यों से भयभीत हम सब देवता शरणमें आये हैं, हे महाराज ! आप शरणागत की रक्षा करनेवाले हो और सबके कर्ता और सब कुछ कराने वाले आपही हो ॥४०॥ तुम्हीं सब लोकों के माता हो और तुम्हीं संसार के पिता हो ।आपही उत्पन्न करने वाले, पालनवाले और संहार करनेवाले हो ॥ ४१ ॥ हे प्रभो ! आप ही देवताओंके सहायक हो और उन्हें शांति देनेवाले हो ।आपही पृथ्वी-आकाश हो और समस्त संसारके उपकार करने वाले हो ॥ ४२ ॥ आप ही शिव, ब्रह्मा तथा तीनों लोकोंके पालन करनेवाले विष्णु रूप हो ।

॥४२॥ भवस्त्वं च स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्यप्रतिपालकः ॥ त्वं रविस्त्वं शशांकश्च त्वं च देवो हुताशनः ॥४३॥ हव्यं होमो हुतस्त्वं च मन्त्रतंत्रर्त्विजो जपः ॥ यजमानश्च यज्ञस्त्वं फलभोक्ता त्वमीश्वरः ॥४४॥ न त्वया रहितं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ भगवन् देवदेवेश शरणागत वत्सल ॥४५॥ त्राहि त्राहि महायोगिन् भीतानां शरणं भव ॥ दानवैर्निर्जिता देवाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो ॥४६॥
स्थानभ्रष्टा जगन्नाथ विचरंति महीतले॥ रुद्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥४७॥ श्रीभगवानुवाच कोऽसौ दैत्यो महामायोदेवा येन विनिर्जिताः ॥ किं स्थानं तस्य किं नाम किं बलं कस्तदाश्रयः ॥४८॥ एतत्सर्वं समा-

आप ही सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेवता हो ॥४३॥ हव्य जो साकल्य है वह, और होम तथा होम भई वस्तु, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, जप, यजमान, यज्ञ ये सब आपही हो । फल भोगनेवाले ईश्वर आपही हो ॥ ४४ ॥ तीनों लोकोंमें और चर अचरमें आपसे रहित कोई वस्तु नहीं है अर्थात् आप सर्वव्यापी हो । हे भगवन् ! हे देवदेवेश हे शरणागतवत्सल ! अर्थात् शरणमें आये हुये जीवों की रक्षा करनेवाले हो ॥ ४५ ॥ हे महायोगिन् ! हे महाराज ! रक्षा करो और भीत अर्थात् डरे हुये हम देवों की रक्षा करो ! हे विभो ! अर्थात् हे समर्थ ! हे महाराज ! दानव द्वारा जीते गये देवता स्वर्गसे भ्रष्ट कर दिये गये हैं ॥४६॥ हे जगन्नाथ ! देवता स्थानसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें विचर रहे हैं । महादेवजीका वचन सुनकर विष्णु भगवान् बोले ॥ ४७ ॥ श्री भगवान् ने कहा—ऐसा कौनसा बड़ा मायावी दैत्य है जिसने तुम्हें जीत लिया । उसका स्थान कहां है और उसका क्या नाम है । वह कितना बलशाली है और उसका सहायक कौन है ॥४८॥ हे इन्द्र ! यह सब कहो । इंद्र

चक्ष्व मघवन्निर्भयो भव ॥ इन्द्र उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश भक्तानुग्रहकारक ॥४९॥ दैत्यः पूर्वं महानासीन्नाडीजंघ इति स्मृतः ॥ ब्रह्मवंशसमुद्भूतो महोग्रः सुरसूदनः ॥५०॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातो मुरनामा महासुरः ॥ तस्य चन्द्रावती नाम नगरी च गरीयसी ॥५१॥ तस्यां वसन्स दुष्टात्मा विश्वं निर्जित्य वीर्यवान् ॥ सुरान् स वशमानिन्ये निराकृत्य त्रिविष्टिपात् ॥५२॥ इन्द्राग्नियमवाय्वीशसोमनिर्ऋतिपाशिनाम् ॥ पदेषु स्वयमेवासीव् सूर्यो भूत्वा तपत्यपि ॥५३॥ पर्जन्यः स्वयमेवासीद्देव सर्वाश्च देवताः ॥ जहि तं दानवं विष्णो सुराणां जयमावह ॥५४॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपाविष्टो जनार्दनः ॥ उवाच शक्रं देवेन्द्र हनिष्ये तं महाबलम् ॥५५॥

बोले–कि, हे देवदेवेश ! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाले महाराज ॥ ४९ ॥ पहले समयमें नाडीजंघ नाम का एक महान् राक्षस हुआ । ब्रह्मवश में उत्पन्न होकर भी बड़ा उग्र और देवताओंको दुःखदायी बना ॥ ५० ॥ उसका पुत्र अतिविख्यात मुर नामक बड़ा असुर है, चन्द्रावती नाम उसकी नगरी है ॥ ५१ ॥ उस नगरीमें निवास करता हुआ वह महा पराक्रमी दुष्टात्मा संसारको जीतकर देवताओंको स्वर्गसे निकालकर अपने अधीन कर लिया ॥ ५२ ॥ इंद्र, अग्नि, यम, वायु, ईश, निर्ऋति, बरुण इन सबके स्थानमें आपही स्थित है और सूर्य बन कर तप रहा है ॥ ५३ ॥ हे देव ! वह स्वयं ही मेघ बन बैठा है । सब देवता भी स्वयं ही बन गया है । हे विष्णु ! उस दैत्यको मारिये और देवताओंको विजयी बनाओ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उनके वचन सुनकर जनार्दन भगवान् कुपित होकर इन्द्रसे कहने लगे कि, हे देवेश ! मैं उस बलवान्

प्रयांतु सहिताः सर्वे चन्द्रावत्यां महाबलाः ॥ इत्युक्ताःप्रययुः सर्वे पुरस्कृत्य हरिं सुराः ॥ ५६ ॥ दृष्टो देवैस्तु दैत्येन्द्रो गर्जमानस्तु दानवैः ॥ असंख्यातसहस्रैस्तु दिव्यप्रहरणायुधैः ॥५७॥

हन्यमानास्तदा देवा असुरैर्बाहुशालिभिः ॥ संग्रामं ते समुत्सृज्य पलायंत दिशो दश ॥५८॥ ततो दृष्ट्वा हृषीकेशं संग्रामे समुपस्थितम् ॥ अन्वधावन्नभिक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ॥५९॥ अथ तान्प्रद्रुतान्दृष्ट्वा शंखचक्रगदाधरः ॥ विव्याध्य सर्वगात्रेषु शरैराशीविषोपमैः ॥६०॥ तेनाहतास्ते शतशो दानवा निधनं गताः ॥ एकांगो दानवः स्थित्वा युद्धयमानो मुहुर्मुहुः ॥६१॥ तस्योपरि हृषीकेशो यद्यदायुधमुत्सृजत ॥ पुष्पवत्तं समभ्येति

दैत्यको मारूंगा ।। ५५ ।। हे महाबली देवताओ ! तुम सब इकट्ठे होकर चन्द्रावती नगरीको चलो । विष्णु के ऐसा कहने पर सब देवता विष्णु को आगे करके चन्द्रावती पुरीको चले ।। ५६ ।। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित उस दैत्यको देखकर देवताओं ने गरजना प्रारम्भ किया ।। ५७ ।। दैत्यों के विशाल भुजाओं से मार खाकर देवगण युद्ध-भूमि छोड़कर दशों-दिशाओं में भागने लगे ।। ५८ ।। उनके पीछे हृषीकेश भगवान्को संग्राममें स्थित देख वे असुर नानाप्रकारके अस्त्र लेकर उनके ऊपर प्रहार करने लगे ।। ५९ ।। शंख, चक्र, गदाके धारण करने वाले भगवान् उन असुरोंको आता देख, सबके शरीरको सर्पके समान बाणोंसे बेध दिया ।। ६० ।। उन विष्णु द्वारा मारेजाने पर सैकड़ों राक्षस मृत्युको प्राप्त हुये । अकेला वह दानव युद्ध में स्थित होकर बारंबार युद्ध करता रहा ।। ६१ ।। उसके ऊपर भगवान् जो-जो अस्त्र

कुंठितं तस्य तेजसा ॥६२॥ शस्त्रास्त्रैर्विद्धयमानोऽपि यदा जेतुं न शक्यते ॥ युयोध च तथा क्रुद्धो बाहुभिः परिघोपमैः ॥ ६३ ॥ बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ तेन श्रांतः स भगवान् गतो बदरिकाश्रमम् ॥६४॥ तत्र हैमवती नाम्नी गुहा परमशोभना॥ तांप्रविश्य महायोगी शयनार्थं जगत्पतिः ॥६५॥ योजनद्वादशायामा एकद्वारा धनंजय ॥ अहं तत्र प्रसुप्तोऽस्मि भयभीतो न संशयः ॥६६॥ महायुद्धेन तेनैव श्रांतोहं पांडुनन्दन॥ दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविवेश स तां गुहाम् ॥६७॥ प्रसुप्तं मां तदा दृष्ट्वाऽचिन्तयद्दानवो हृदि॥ हरिमेनं हरिष्येऽहं दानवानां क्षयावहम् ॥६८॥ एवं सुदुर्मतेस्तस्य व्यवसायं व्यवस्यतः ॥ समुद्भूता ममाङ्गेभ्यः कन्यैका च महाप्रभा॥६९॥

शस्त्र प्रहार करते हैं वे सब उसके तेज से कुंठित होकर फूलके समान उसके समीप जाते हैं ।।६२।। शस्त्र द्वारा जब उसे जीतनेमें समर्थ न हुये तब परिघके समान बड़ी-बड़ी भुजाओं से बाहु-युद्ध करने लगे ।। ६३ ।। उसने दशहजार दिव्य वर्षों तक बाहुयुद्ध किया फिर थककर भगवान् विष्णु बदरिकाश्रमको चले गये ।। ६४ ।। वहां हैमवती नामकी बहुत सुहावनी गुफा है उसमें महायोगीजगत्के स्वामी विष्णु भगवान् शयन करनेके लिये प्रवेश किये ।।६५।। हे अर्जुन ! वह गुफा १२ योजन अर्थात् ४८ कोस चौड़ी है और उसमें एकही द्वार है। उसमें मैं भयभीत होकर सोया इसमें सन्देह नहीं है ।।६६।। हे अर्जुन ! मैं उस महायुद्धसे थक गया था और वह दानव मेरे पीछे उस गुफामें प्रवेश किया ।।६७।। तब वह दानव मुझे शयन करता देख अपने हृदयमें चिंता करने लगा कि मैं दानवोंके नाश करनेवाले हरिको मारूंगा ।।६८।। वह

दिव्यप्रहरणा देवी युद्धाय समुपस्थिता ॥ ईक्षिता दानवेन्द्रेण अरुणा पांडुनन्दन ॥७०॥ युद्धं समाहिता तेन स्त्रिया तत्र प्रयाचितम् ॥ तेनायुद्ध्यत सा नित्यं तां दृष्ट्वा विस्मयं गतः ॥७१॥ केनेयं निर्मिता रौद्रा अत्युग्राऽशनिपातिनी ॥ इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ युयुधे कन्यया तया ॥७२॥ ततस्तया महादेव्या त्वरया दानवो बली ॥ छित्त्वा सर्वाणि शस्त्राणि क्षणेन विरथः कृतः ॥७३॥ बाहुप्रहरणोपेतो धावमानो महाबलात् ॥ तलेनाहत्य हृदये तया देव्या निपातितः॥७४॥ पुनरुत्थाय सोऽधावत् कन्याहंननकांक्षया॥दानवं पुनरायान्तं रोषेणाहत्य तच्छिरः॥७५॥क्षणान्निपातयामास भूमौ तत्र महासुरम्॥दैत्यः कृत्तशिरः सोऽथ ययौ वैवस्वतालयम् ॥७६॥

दुष्टबुद्धि इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि मेरे शरीर से एक बड़ी तेजस्विनी कन्या उत्पन्न हुई ।। ६९ ।। दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करने वाली वह देवी युद्ध करनेको उद्यत हो गई । हे अर्जुन ! दानवेंद्र ने उसे क्रोधसे अरुण वर्ण देखा ।। ७० ।। उसी देवी की मांग पर उस दैत्य राजने युद्ध किया । नित्य ही उसके साथ युद्ध करने से उसे आश्चर्य हुआ ।। ७१ ।। अति उग्र एवं भयानक वज्र प्रहार करने वाली इस देवी को किसने बनाया । ऐसा कहकर वह राक्षस उसके साथ युद्ध करता रहा ।। ७२ ।। तदनन्तर उस महादेवीने अति शीघ्र उसके सब अस्त्र-शस्त्र काट डाले और उसे रथहीन कर दिया ।। ७३ ।। तब वह असुर बाहुयुद्ध करने के लिए दौड़ा । देवी ने उसकी छाती में प्रहार करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ।।७४।। वह उठकर उस देवी को मारने की इच्छा से दौड़ा, देवीने उसे आता हुआ देखकर क्रोधित होकर उसके शिर को काट दिया।।७५।।क्षणमात्रमेंही देवी उस महाअसुरको भूमिमें गिरा दिया । तदनन्तर शिर कट जाने से वह असुर यमलोक को पहुँच गया

शेषा भयार्दिता दीनाः पातालं विविशुर्द्विषः ॥ ततः समुत्थितो देवः पुरो दृष्ट्वाऽसुरं हतम् ॥७७॥ कन्यां पुरः स्थितां चापि कृतांजलिपुटां नताम् ॥ विस्मयोत्फुल्लवदनः प्रोवाच जगतां पतिः ॥७८॥ केनायं-निहतः संख्ये दानवो दुष्टमानसः ॥ येन देवाः सगन्धर्वाः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः ॥ ७९ ॥ सनागाः सहलोकेशा लीलयैव विनिर्जिताः ॥ येनाहं निर्जितो भूत्वा भीतः गुप्तो गुहामिमाम् ॥८०॥ कन्योवाच ॥ मया विनिहतो दैत्यस्त्वदंशोद्भूतया प्रभो ॥८१॥

दृष्ट्वा सुप्तं हरे त्वां तु यतो हन्तुं समुद्यतः ॥ त्रैलोक्यकंटकस्येत्थं व्यवसायं प्रबुद्ध्य च ॥ ८२ ॥ हतो मया

॥ ७६ ॥ शेष असुर शत्रु-भयसे पीड़ित और दीन होकर पातालको चले गये। तदनन्तर भगवान् विष्णु उठकर सामने मारे गये असुर को देखा ॥ ७७ ॥ और नम्रतासे हाथ जोड़े सामने खड़ी एक कन्याको देखा, तब जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु बोले ॥ ७८ ॥ इस दुष्ट चित्त दानवको संग्राममें किसने मारा है, जिसने देवता, गंधर्व, इन्द्र और देवगण समेत सबको जीत लिया है ॥ ७९ ॥ नागों तथा लोकपालों को लीलाहीसे जीत लिया और जिससे जीता गया मैं भयभीत होकर इस गुफामें सोया हुआ हूं ॥ ८० ॥ कन्या बोली–कि हे प्रभो ! तुम्हारे ही अंशसे उत्पन्न हुई हूँ मैं, और मेरे द्वारा ही यह दैत्य मारा गया है ॥ ८१ ॥ हे हरिमहाराज ! तुम्हें सोया हुआ देखकर यह मारने के लिए उद्यत हुआ। तीनों लोक को दुःख देने वाले इस असुरके इस उद्योग को देखकर मैंने दुष्ट का संहार ॥ ८२ ॥ किया और देवताओं को निर्भय

दुरात्माऽसौ देवता निर्भयाः कृताः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निहते दानवेन्द्रेऽस्मिन्संतुष्टोऽहं त्वयाऽनघे ॥ ८३ ॥ हृष्टाः पुष्टाश्च वै देवा आनन्दः समजायत ॥ आनंदस्त्रिषु लोकेषु देवानां यस्त्वया कृतः ॥८४॥ प्रसन्नोऽस्म्यनघे तुभ्यं वरं वरय सुव्रते ॥ ददामि तं न संदेहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥८५॥ कन्योवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम ॥ तारयेऽहं महापापादुपवासपरं नरम् ॥८६॥ उपवासस्य यत्पुण्यं तस्यार्द्धं नक्तभोजने ॥ तदर्धं च भवेत्तस्य एकभुक्तं करोति यः ॥८७॥ यः करोति व्रतं भक्त्या दिने मम जितेन्द्रियः ॥ स गत्वा वैष्णवं स्थानं कल्प कोटिशतानि च ॥८८॥ भुंजानो विविधान् भोगानुपवासी जितेन्द्रियः ॥ भगवंस्त्वत्प्र-

किया । श्रीभगवान् बोले–कि हे अनघे ! इस असुर के वध करने से मैं तुझसे प्रसन्न हूँ ॥ ८३ ॥ देवता हृष्ट पुष्ट हुये । साथ ही देवगण आनन्दित हुये और उनके आनन्दित होने से तीनों लोक प्रसन्न हो गया है ॥ ८४ ॥ हे अनघे ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ हे सुव्रते ! वर मांगले, मैं तुझे वह वर दूंगा जो देवताओं को भी दुर्लभ है ॥८५॥ कन्या बोली–कि हे देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे वर देना चाहते हो तो वह वर दीजिये जिससे मैं व्रत करने वाले लोगों का उद्धार कर सकूँ॥८६॥ उपवासका जो फल है उससे आधा फल रात्रिमें भोजन करने वाले को प्राप्त होता है और उससे आधा पुण्य एक वार भोजन करने वाले को होता है ॥ ८७ ॥ जो जितेंद्रिय पुरुष भक्तिसहित हमारे दिन व्रत करेंगे वे वैष्णव धाम अर्थात् वैकुंठ धाममें जाकर करोड़ों कल्पों पर्यन्त आनन्द से निवास करते हैं ॥८८॥ और वहां नाना प्रकार के भोगों

सादेन भवत्वेष वरो मम ॥८९॥ उपवासं च नक्तं च एकभुक्तं करोति यः ॥ तस्य धर्मं च वित्तं च मोक्षं देहि जनार्दनः ॥९०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्त्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति ॥ मम भक्ताश्च ये लोकास्तव भक्ताश्च ते नराः ॥९१॥

त्रिषु लोकेषु विख्याताः प्राप्स्यंति मम सन्निधिम् ॥ एकादश्यां समुत्पन्ना मम भक्तिपरायणा ॥ ९२ ॥ अत एकादशीत्येवं तव नाम भविष्यति ॥ दग्ध्वा पापानि सर्वाणि दास्यामि पदमव्ययम् ॥९३॥ तृतीया चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी ॥ एकादशी विशेषेण तिथयो मे महाप्रियाः ॥९४॥ सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सर्वदानाधिकं

का उपभोग करते हैं, हे भगवन् ! आपके प्रसादसे यह वर मुझे प्राप्त हो ।। ८९ ।। और जो मेरे दिन उपवास या रात्रिमें एक बार भोजन अथवा दिनमें एकबार भोजन करे, हे जनार्दन उसे आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान करें ।। ९० ।। श्रीभगवान् बोले–कि हे कल्याणि ! तूने जो कुछ कहा वह सब व्रत करने वालों को प्राप्त होगा क्योंकि जो मेरे भक्त वेही तेरे भी भक्त हैं ।। ९१ ।। वे तीनों लोकमें विख्यात होकर मेरी निकटता प्राप्त करेंगे। मेरी भक्तिमें परायण तू एकादशीके दिन उत्पन्न हुई है अतः इस ।। ९२ ।। एकादशीका नाम तेरा ही नाम होगा और इसका व्रत के करनेवाले मनुष्योंके सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर उसे अविनाशी पद दूँगा ।। ९३ ।। तीज, अष्टमी, नवमी, और चतुर्दशी ये तिथियां मुझे प्रिय हैं परन्तु इनमें एकादशी तो मुझे बहुत प्रिय है ।।९४ ।। एकादशीका पुण्य सब तीर्थोंके पुण्यसे अधिक है

फलम् ॥ सर्वंव्रताधिकं चैव सत्यं सत्यं वदामि ते ॥९५॥ एवं दत्त्वा वरं तस्यास्तत्रैवांतरधीयत ॥ हृष्टा तुष्टा तु सा जाता तदा एकादशी तिथिः ॥९६॥ इमामेकाशीं पार्थ करिष्यंति नरास्तु ये ॥ तेषां शत्रु हनिष्यामि दास्यामि परमां गतिम् ॥९७॥ अन्येऽपि ये करिष्यंति एकादश्या महाव्रतम् ॥ हरामि तेषां विघ्नांश्च सर्व-सिद्धिं ददामि च ॥९८॥ एवमुक्ता समुत्पत्तिरेका दश्याः पृथासुताः ॥ इयमेकादशी नित्या सर्वपापक्षयंकरी ॥९९॥ एकैव च महापुण्या सर्वपापनिषूदनी ॥ उदिता सर्व लोकेषु सर्वसिद्धिकरीतिथिः ॥ १०० ॥ शुक्ला वाप्यथवा कृष्णा इति भेदं न कारयेत् ॥ कर्तव्ये उभये पार्थ न तुल्या द्वादशी तिथिः ॥१०१॥ अन्तरं नैव कर्त्तव्यं समस्तैर्व्रतकारिभिः ॥ तिथिरेकाभवेत्सर्वा पक्षयोरुभयोरपि ॥१०२॥

और इसका फल सभी दानों और व्रतों के फलसे अधिक है। यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ ।। ९५ ।। ऐसा वर देकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और उसी समय एकादशी तिथि हृष्ट पुष्ट हो गई ।। ९६ ।। हे अर्जुन ! जो मनुष्य उस एकादशी व्रतको करेंगे उनके शत्रुओंका नाश कर उन्हें परमगति अर्थात् मोक्ष प्रदान करूँगा ।। ९७ ।। और जो लोग इस एकादशीके महाव्रतको करेंगे उनके विघ्नों का मैं हरण कर उन्हें सब सिद्धि प्रदान करूँगा ।।९८।। हे कुन्तीके पुत्रो ! एकादशीकी उत्पत्ति इस प्रकार मैंने कहा, यह एकादशी सदा सब पापों का नाश करने वाली है ।। ९९ ।। परम पवित्र सब पापोंका नाश करने वाली और सब सिद्धियोंको देनेवाली यह एकही एकादशी तिथि सब लोको में प्रसिद्ध है ।। १०० ।। शुक्लपक्षकी अथवा कृष्णपक्षकी है यह भेद न करे। हे अर्जुन ! दोनों ही श्रेष्ठ हैं और करनी चाहिये उनमें द्वादशी

उपवासं प्रकुर्वंति एकादश्यां नराश्च ये ॥ ते यांति परमं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः ॥१०३॥ धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ एकादश्यास्तु माहात्म्यं सर्वलोकेषु यः पठेत् ॥१०४॥ अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तदाप्नोति न संशयः ॥ एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहं च परेऽहनि ॥१०५॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पांजलिमथार्पयेत् ॥१०६॥ अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमंत्रितम् ॥ उपवासफलप्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम् ॥१०७॥ दिवा निद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ क्षौद्रं कांस्यामिषे तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥१०८॥ असंभाष्यं हि संभाष्य भक्षयेत्तुलसीदलम्॥ आमलक्याः फलं वापि पारणे

विद्धा सबसे उत्तम है ।। १०१ ।। संपूर्ण व्रत करनेवाले मनुष्यको भेद न मानना चाहिये दोनों पक्षों की सब तिथिया समान हैं ।। १०२ ।। जो मनुष्य एकादशीके दिन व्रत करते हैं वे उस परम धाम को प्राप्त करते हैं जहां भगवान् विराजमान हैं ।।१०३।। जो मनुष्य विष्णु भक्तिमें रत हैं वे धन्य हैं और समस्त लोकोंमें जो एकादशी माहात्म्य पढ़ेंगे ।। १०४ ।। वे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करेंगे इसमें संदेह नहीं है । एकादशीका व्रत निराहार रहकर मैं दूसरे दिन भोजन करूंगा ।। १०५ ।। हे पुंडरीकाक्ष अच्युत भगवान् ! मेरे रक्षक हो ऐसा उच्चारण करके बाद में विद्वान् पुरुष पुष्पांजलि अर्पण करे ।। १०६ ।। उपवासके फलको चाहने वाला मनुष्य तीन बार अष्टाक्षर मंत्र जपकर जलको अभिमंत्रित करे और फिर उस जल को पिये ।। १०७ ।। दिनमें शयन, पराया अन्न, दूसरी बार भोजन, स्त्रीसंग, शहद, कांसे-के पात्रमें भोजन करना, मांस, तेल, इन आठ वस्तुओंका द्वादशीके दिन त्याग करे ।। १०८ ।। चांडाल आदि जो बोलने योग्य नहीं हैं, उनसे बातकर लेने पर

प्राश्य शुद्ध्यति ॥ १०९ ॥ आमध्याह्नाच्च राजेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ॥ स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमा-
दिसंयुताः ॥११०॥ संकष्टे विषमे प्राप्ते द्वादश्याः पारणं कथम् ॥ अद्भिस्तु पारणं कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत् ॥
॥१११॥ यः शृणोति दिवारात्रौ नरो विष्णुपरायणः ॥ तद्भक्तमुखनिष्पन्नां कथां विष्णोः सुमंगलाम् ॥११२॥
कल्पकोटिसमायुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं पादमेकं शृणोति यः ॥११३॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ विष्णुधर्मसमं नास्ति व्रतंनाम सनातनम् ॥११४॥ इति श्रीभविष्यो-
त्तरपुराणे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मार्गशीर्षकृष्णैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥१॥

शुद्धिके लिये तुलसीदल भक्षण करे और पारणमें आमलेके फलको भक्षण करने से शुद्ध हो ।। १०९ ।। हे राजेंद्र ! अर्थात् राजाओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! एकादशीके मध्याह्नसे द्वादशीके दिन अरुणोदय तक दान, होम, स्नान, पूजन आदि क्रिया करनी चाहिये ।। ११० ।। यदि कोई विषय परिस्थिति आ जाय तो द्वादशी में केवल जल पीकर ही पारण कर लेना चाहिये इसमें दूसरी बार भोजन करनेका दोष नहीं लगता है ।। १११ ।। जो विष्णुपरायण नर विष्णुभक्तके मुखसे कही गयी सुन्दर मंगलरूपी विष्णुकथा को रात-दिन सुनते हैं ।। ११२ ।। वे करोड़ों कल्पों तक विष्णुलोकमें सानंद निवास करते हैं । जो एकादशीके माहात्म्यका एक पाद अर्थात् चौथाई भी कथा सुनते हैं ।। ११३ ।। निस्संदेह उनके ब्रह्महत्यादि समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । वैष्णवधर्मके समान कोई सनातन व्रत नहीं है ।। ११४ ।। इति श्रीमत्पण्डितकेशव-प्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीटीकायां दीपिकासमाख्यायां मार्गशीर्षकृष्णैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ।। १ ।।

अथ मार्गशीर्षशुक्लैएकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वन्दे विष्णुं प्रभुं साक्षाल्लोकत्रयसुखप्रदम् ॥ विश्वेशं विश्वकर्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥ पृच्छामि देवदेवेश संशयोऽस्ति महान् मम ॥ लोकानां तु हितार्थाय पापानां च क्षयाय च ॥२॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ कीदृशश्च विधिस्तस्याः को देवस्तत्रपूज्यते ॥ ३ ॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण यथातथम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यक्पृष्टं त्वया राजन् साधु ते विपुलं यशः ॥४॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र हरिवासरमुत्तमम् ॥ उत्पन्ना सा सिते पक्षे द्वादशी मम वल्लभा ॥५॥ मार्गशीर्षे समुत्पन्ना मम देहान्नराधिप ॥ मुरासुरवधार्थाय प्रख्याता मम वल्लभा ॥६॥ कथिता सा

अथ मार्गशीर्षशुक्लैकादशीमोक्षदाकथायाष्टीका ।। मार्गस्याऽपरपक्षे या मोक्षदैकादशी स्मृता तन्माहात्म्यस्य भाषाया टीकां रम्यां करोम्यहम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि, तीनों लोकोंको सुख देनेवाले, विश्वके स्वामी और विश्वके कर्ता पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ।। १ ।। हे देवदेवेश ! मुझे बड़ा संदेह है अतः लोगों के हितार्थ और पापों के नाश के निमित्त आपसे पूछता हूँ ।। २ ।। कि मार्गशीर्ष महीनोंके शुक्लपक्षकी एकादशीका क्यां नाम है और उसकी विधि क्या है तथा किस देवता की पूजा करें ? ।। ३ ।। हे स्वामिन् इसका मुझसे विस्तारपूर्वक आप जैसेका तैसा वर्णन कीजिये। श्रीभगवान् बोले–कि, हे राजन् ! तुमने अच्छे प्रश्न किये इसीसे तुम्हारा यश संसारमें भली-भांति विख्यात है ।। ४ ।। हे राजाधिराज ! मैं तुमसे उत्तम हरिवासर कहता हूँ। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी उत्पन्ना नामकी एकादशी मुझे बहुत प्रिय है ।। ५ ।। हे राजन् ! मेरे शरीर से उत्पन्न विशेष कर मुर नामक दैत्य के वध करनेके लिए

मया चैव त्वदग्रे राजसत्तम ॥ पूर्वमेकादशी राजँस्त्रैलोक्ये सचराचर ॥७॥ मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे चोत्पत्तिरिति नामतः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षे सितां तथा ॥८॥

तस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं भवेत् ॥ मोक्षा नाम्नीति विख्याता सर्वापापहरा परा ॥९॥ देवं दामोदरं तस्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥ तुलस्या मंजरीभिश्च धूपदीपैर्मनोरमैः ॥१०॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ अधोगतिं गता ये वै पितृमातृसुतादयः ॥ ११ ॥ अस्याः पुण्यप्रभावेण स्वर्गं यांति न संशयः ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्महिमानं शृणुष्व तम् ॥१२॥ चम्पके नगरे रम्ये वैष्णवैः सुविभूषिते ॥ वैखा-

विख्यात यह मेरी प्रिया है ॥ ६ ॥ हे राजन् श्रेष्ठ! तुम्हारे सन्मुख मैंने चराचर त्रैलोक्यके कल्याणके लिए पहले यह एकादशी कही ॥ ७ ॥ हे राजन्! मार्गशिर्ष के कृष्णपक्षमें इसकी उत्पत्ति हुई अतः इसका नाम उत्पन्ना हुआ । अब मैं मार्गशिर्षके शुक्लपक्षकी एकादशी कहता हूँ ॥ ८ ॥ जिसके सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है । मोक्षा नामसे विख्यात यह सब पापोंको हरनेवाली है ॥ ९ ॥ उसमें दमोदर भगवान् की तुलसीकी मंजरी और सुन्दर धूप से पूजा करे ॥१०॥ हे राजाधिराज! सुनो, मैं पुराणकी सुन्दर कथा कहता हूँ । जिनके पिता माता और पुत्र आदि अधोगति को प्राप्त हैं ॥ ११ ॥ यदि वे इस एकादशी व्रत को करें तो उस व्रत के पुण्य-प्रभाव से उनके माता-पिता पुत्रादि स्वर्ग को प्राप्त करेंगे, हे राजन्! इसकी महा महिमा

नसेति राजर्षिः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥१३॥ द्विजाश्चन्यवसंस्तत्र चतुर्वेदपरायणाः ॥ एवं स राज्यं कुर्वाणो रात्रौ तु स्वप्नमध्यतः ॥१४॥ ददर्श जनकं स्वं तु अधोयोनि गतं नृपः ॥ एवं दृष्ट्वा तु तं तत्र विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥१५॥ कथयामास वृत्तान्तं द्विजाग्रे स्वप्नसंभवम् ॥ राजोवाच ॥ मया तु स्वपिता दृष्टो नरके पतितो द्विजाः ॥ तारयस्वेति मां तात अधोयोनिगतं सुत ॥१६॥ इति ब्रुवाणः स तदा मया दृष्टः पिता स्वयम् ॥ तदाप्रभृति भो विप्रा नाहं शर्म लभाम्यहो ॥१७॥ एतद्राज्यं मम महदसह्यमसुखं तदा ॥ अश्वा गजा रथाश्चैव मे रोचंते न सर्वथा॥१८॥न कोशोऽपि सुखायेति न किंचित्सुखदं मम ॥ न दारा न सुता मह्यं रोचन्ते द्विजसत्तमाः॥१९॥

को सुनो ।। १२ ।। वैष्णवों से शोभित चंपक नाम नगरमें पुत्रके समान प्रजाका पालन करनेवाले वैखानस नामक राजर्षि हुये ।। १३ ।। उस नगरमें चारों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मण निवास करते थे। इस प्रकार राज्य करते हुए उस राजा ने स्वप्नमें ।। १४ ।। अपने पिताको नरक में पड़ा देखकर बड़ा आश्चर्य चकित हुआ। और फिर जब जागा तो ।। १५ ।। ब्राह्मणों के सम्मुख जाकर स्वप्न के वृत्तांत को कहा–कि, हे ब्राह्मणो ! मैंने अपने पिता को नरकमें पड़ा हुआ देखा और वे मुझसे कह रहे थे कि, हे पुत्र ! मेरा नरक से उद्धार करो ।। १६ ।। इस प्रकार कहते हुए मैंने स्वयं जब से पिता को देखा, हे ब्राह्मणो ! तब से मुझे सुख-चैन नहीं है ।। १७ ।। यह राज्य । और ये हाथी, घोड़े रथादि सब मेरे लिए व्यर्थ हैं। रंचमात्र भी मुझे नहीं रुचिकर प्रतीत होते ।। १८ ।। धन-खजाना भी मुझे सुखदायी

किं करोमि क्व गच्छामि शरीरं मे सु दह्यते ।। दानं व्रतं तपो योगो येनैव मम पूर्वजाः ॥२०॥ मोक्षमायांति विप्रेन्द्रास्तदेव कथयंतु मे ॥ किं तेन जीवता लोके सुपुत्रेण बलीयसा ॥ २१ ॥ पिता तु यस्य नरके तस्य जन्म निर्थकम् ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पर्वतस्य मुनेरत्र आश्रमो निकटे नृप ॥ २२ ॥ गम्यतां राजसार्दूल भूतं भव्य विजानतः ॥ तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं वैखानो राज सत्तमः ॥२३॥ जगाम तत्र यत्राऽसौ आश्रमे पर्वतो मुनिः ॥ ब्राह्मणैर्वेष्टितः शांतैः प्रजाभिश्च समंततः ॥ २४ ॥ आश्रमो विपुलस्तस्य मुनिभिः सन्निषेवितः ॥ ऋग्वेदिभिर्याजुषैश्च सामाथर्वणकोविदैः॥२५॥ वेष्टितो मुनिभिस्तत्र द्वितीय इव पद्मजः॥ दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा

नहीं है, हे ब्राह्मणो ! मुझे स्त्री पुत्रादि कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है ।।१९।। क्या करूं, कहां जाऊं, मेरा शरीर जल रहा है । आप लोग कोई ऐसा दान, तप, व्रत योग बतलायें जिससे मेरे पितरों को मुक्ति प्राप्त हो ।। २० ।। हे ब्राह्मणो ! जिससे उनको मोक्ष प्राप्त हो ऐसा उपाय मुझे बतलाइये । उस बलवान् पुत्रके जीवनसे क्या लाभ है ।। २१ ।। जिसके पिता नरकमें पड़े हों, उसका जन्म निरर्थक है, ब्राह्मण बोले—कि, हे राजन् ! यहां पर्वतमुनिका आश्रम निकट है ।। २२ ।। हे राजशार्दूल ! वहीं जाओ, वे भूत-भविष्य के जाननेवाले हैं ब्राह्मणों द्वारा राजा ने यह बात सुनी ।। २३ ।। और पर्वत आश्रममें गया जहां शांत स्वरूप ब्राह्मणों और प्रजासहित मुनिविराजमान थे ।। २४ ।। वह ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदमें चतुर था, और ब्राह्मणों द्वारा सेवित था ।।२५।। बड़े-बड़े मुनीश्वरों द्वारा परि-

वैखानसस्तदा ॥२६॥ जगाम् चावनिं मूर्ध्ना दंडवत्प्रणनाम च ॥ पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वंगेष्वसौ मुनिः ॥२७॥
राज्ये निष्कण्टकत्वं च राजसौख्यसमन्वितम् ॥ राजोवाच ॥ तव प्रसादाद्ब्रो विप्र कुशलं मेऽङ्गसप्तके ॥२८॥
विभवेष्वनुकूलेषु कश्चिद्विघ्न उपस्थितः ॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मन् प्रष्टुंत्वां च समागतः ॥२९॥ एवं श्रुत्वा नृपवचः
पर्वतो मुनिसत्तमः ॥ ध्यानस्ति मितनेत्रोऽसौ भूतं भव्यं व्यचिंतयत् ॥३०॥
मुहूर्त्तमेकं ध्यात्वा च प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ मुनिरुवाच ॥ जानेऽहं तव राजेन्द्र पितुः पापं विकर्मणः ॥३१॥
पूर्वजन्मनि ते पित्रा सपत्नीकृतद्वेषतः ॥ कामासक्तेन चैकत्र ऋतुभंगः कृतः स्त्रियाः ॥ ३२ ॥ त्राहि देहीति

वेष्टित वह मुनि दूसरे ब्रह्मा के समान थे, ज्यों ही राजा ने उसे इस भांति देखा ।। २६ ।। नत मस्तक हो भूमिमें पड़कर प्रणाम किया, मुनि ने राज्य के सांतों अंगों की कुशल पूंछी ।।२७।। राजा बोला महाराज ! मेरा राज्य सर्व सुखों से युक्त और सब प्रकार निष्कंटक है, आप मुनि-जनों की कृपा से सातों अंग सकुशल हैं ।। २८ ।। समस्त ऐश्वर्यों के अनुकूल होने पर भी कुछ विघ्न उपस्थित हो गया है । उसके विषय में कुछ संदेह है वह मैं आपसे पूछनेके लिये आया हूँ ।।२९।। राजा की यह बात सुनकर पर्वत मुनि ध्यान से भूत और भविष्य का चिंतन करने लगे ।। ३० ।। क्षणभर ध्यान करनेके बाद राजा से बोले—कि, हे राजेन्द्र ! मैंने तुम्हारे पिताके दुष्कर्म जनित पाप को जान लिया ।।३१।। पूर्वजन्ममें तुम्हारे पिताने काममें आसक्त होकर सौतिके द्वेषोंस एक समय एक स्त्रीका ऋतुभंग किये अर्थात् ऋतुसमय में उसके समीप

जल्पंत्या ऋतुदानं नराधिप ॥ तेन वै तव पित्रा तु न दत्तो ऋतुराग्रहात् ॥३३॥ कर्मणा तेन सततं नरके पतितो ह्ययम् ॥ राजोवाच ॥ केन वै व्रतदानेन मोक्षस्तस्य भवेन्मुने ॥३४॥ निरयात्पापसंयुक्तात्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ मुनिरुवाच ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे मोक्षा नाम्नी हरेस्तिथिः ॥३५॥ सर्वैस्तु तद्व्रतं कृत्वा पित्रे पुण्यं प्रदीयताम् ॥ तस्या पुण्यप्रभावेण मोक्षस्तस्य भविष्यति ॥ ३६ ॥ मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा नृपः स्वगृहमागतः ॥ आग्रहायणिकीं कृच्छ्रात्प्राप्तो भरतसत्तम ॥ ३७ ॥ अन्तःपुरचरैस्सर्वैः पुत्रदारैस्तथा नृपः ॥ व्रतं कृत्वा विधानेन पुण्यं दत्त्वा नृपाय तत् ॥३८॥ तस्मिन्दत्ते तदा पुण्ये पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥ वैखानसपिता तेन गतः स्वर्गं स्तुतो

न गये ।। ३२ ।। हे नराधिप ! रक्षा करो, ऋतुदान दो, वह ऐसा कहती रही, किन्तु तुम्हारे पिताने आग्रह करने पर भी ऋतुदान न किया ।। ३३ ।। इसी कारण से तुम्हारे पिता नरकगामी हुये हैं। राजा बोले—कि हे मुनि ! वह कौन-सा व्रत या दान है जिससे उन्ह मोक्ष प्राप्त हो ।। ३४ ।। पापयुक्त इस नरकसे कैसे मुक्त हों यह आप मुझे बतलाइये। मुनि बोले—कि, मार्गशिर महीनेके शुक्लक्षमें मोक्षा नामक हरिकी तिथि है ।। ३५ ।। तुम सब उस एकादशीके व्रत करके अर्ध-पुण्य पिताको दान करो उस पुण्य प्रभाव से तुम्हारे पिता मोक्ष को प्राप्त करेंगे ।। ३६ ।। तदनन्तर मुनिके इस वचनको सुनकर राजा अपने घरको आया ! हे भरतवंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! वह बड़े कष्टसे अगहनकी एकादशीको प्राप्त कर ।। ३७ ।। रनिवास, सेवक और पुत्र स्त्रीसमेत राजाने विधिसे व्रत करके उसका पुण्य अपने पिताको दिया ।। ३८ ।। पुण्य देते समय आकाश से फूल की वर्षा हुई और देवगण स्तुति करने लगे। तदनन्तर वैखानस राजा के पिता स्वर्ग को

गणैः ॥३९॥ राजानमंतरिक्षाच्च शुद्धां गिरमभाषत ॥ स्वस्त्यस्तु ते पुत्रसदेत्युक्त्वा स त्रिदिवं गतः ॥४०॥ एवं यः कुरुते राजन्मोक्षदैकादशीमिमाम् ॥ तस्य पापं क्षयं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥४१॥ नातः परतरा काचिन्मोक्षदा विमला शुभा ॥ पुण्यसंख्यां तु राजेन्द्र न जानेऽहं तु यैः कृताः ॥४२॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा स्वर्गमोक्षप्रदायिनी ॥ ४३ ॥ इति श्रीब्रह्मांडपुराणे मार्गशीर्षशुक्लेकादश्या मोक्षदानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥२॥

गये ।। ३९ ।। स्वर्ग जाते समय आकाशसे राजाने पुत्रको आशीर्वाद दिया—कि, हे पुत्र ! तुम्हारा सदा कल्याण हो, ऐसा कहकर स्वर्गको गया ।। ४० ।। हे राजन् ! इस प्रकार जो इस मोक्षदा नामक एकादशी व्रतको करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें वह मोक्ष प्राप्त करता है ।। ४१ ।। इससे परे अन्य कोई मोक्ष देनेवाला व्रत नहीं है । जिन्होंने इस व्रतको किया उनके पुण्य असंख्य हैं ।। ४२ ।। स्वर्ग और मोक्षको देनेवाली यह एकादशी चिन्तामणिके समान है ।। ४३ ।। इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यटीकायां दीपिकासमाख्यायां मार्गशीर्षशुक्लेकादशीभाषाव्याख्या समाप्ता ।। २ ।।

अथ पौष कृष्णसफलैकादशीकथा॥ युधिष्ठिर उवाच॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु केयमेकादशी भवेत्॥ किं नामको विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते॥१॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण जनार्दन॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेहकारणात्॥२॥ तथा तुष्टिर्न मे राजन् क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः॥ यथातुष्टिर्भवेन्मह्यमेकादश्या व्रतेन वै॥३॥ तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कर्तव्यो हरिवासरः॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु द्वादशी या भवेन्नृप॥४॥ तस्याश्चैव च माहात्म्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ गदिता याश्च वै राजन्नेकादश्यो भवंति हि॥५॥ तासामपि हि सर्वासां विकल्पं नैव कारयेत्॥ एकादश्यास्तथाप्यस्याः शृणु राजन् कथान्तरम्॥६॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि

पौषस्यासितपक्षे या सफलैकादशी स्मृता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायांटीकां कुर्वे सुदीपिकाम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि, हे कृष्ण महाराज ! पौषके कृष्णपक्ष में कौनसी एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, क्या विधि है और उसमें किस देवताकी पूजा करनी चाहिये ।। १ ।। हे स्वामी जनार्दन ! वह सब मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये। श्रीकृष्ण बोले कि, हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारे स्नेहके कारण कहता हूँ।। २ ।। अधिक दक्षिणा युक्त यज्ञोंसे मैं उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ जितना एकादशी व्रतके करनेसे प्रसन्न होता हूँ।। ३ ।। अतः पूर्ण यत्नसे हरिवासर व्रतको करना चाहिये। पौषके कृष्णपक्षमें जो द्वादशीसंयुक्त एकादशी होती है।। ४ ।। उसके माहात्म्यको तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। संपूर्ण महीनेमें जो एकादशी होती हैं।। ५ ।। उनमें भेद नहीं मानना चाहिये।

पौषस्यैकादशीं तव ॥ लोकानां च हितार्थाय कथयिष्ये विधिं तव ॥७॥ पौषस्य कृष्णपक्षे या सफला नाम नामतः ॥ नारायणोऽधिदेवोऽस्याः पूजयेत्तं प्रयत्नतः ॥८॥

पूर्वेण विधिना राजन् कर्तव्यै कादशी जनैः ॥ नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुडो यथा ॥९॥ यथाश्वमेधो यज्ञानां नदीनां जाह्नवी यथा ॥ व्रतानां च तथा राजन् प्रवरैकादशी तिथिः ॥ १० ॥ ते जना भरतश्रेष्ठ मम पूज्याश्च सर्वशः ॥ हरिवासरसंयुक्ता वर्तन्ते ये जना भृशम् ॥११॥ सफला नाम या प्रोक्ता तस्याः पूजाविधिं शृणु॥ फलैर्मां पूजयेत्तत्र कालदेशोद्भवैः शुभैः ॥ १२ ॥ नारिकेलफलैः शुद्धैस्तथा वै बीजपूरकैः ॥ जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा पूंगीफलैरपि ॥१३॥ लवंगैर्विविधैश्चान्यैस्तथा चाम्रफलादिभिः ॥ पूजयेद्देवदेवेशं धूपैर्दीपैर्यथा-

हे राजन् ! ॥६॥ तो भी मैं लोक कल्याणार्थ उनकी विधियों और विभिन्न कथाओं को कहता हूँ ॥७॥ पौषके कृष्णपक्षमें सफला नाम की एकादशी होती है इसके अधिदेवता नारायण हैं। उनका यत्नसे पूजन करे ॥८॥ हे राजन् ! यह विधिपूर्वक मनुष्योंको एकादशी व्रत करनी चाहिये। सर्पों में जैसे शेष, और पक्षियोंमें जैसे गरुड़ श्रेष्ठ हैं। ॥९॥ यज्ञोंमें जैसे अश्वमेध श्रेष्ठ है, और नदियोंमें जैसे गंगाजी श्रेष्ठ हैं। हे राजन् ! वैसेही सब तिथियोंमें एकादशी श्रेष्ठ है ॥१०॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! वे लोग सर्वथा मेरे पूज्य हैं। जो सदैव हरिवासर और एकादशी व्रत करते हैं ॥११॥ सफला नामक एकादशी व्रतमें समय और देशके अनुसार सुंदर फलसे मेरा विधिपूर्वक पूजन करे ॥१२॥ शुद्ध नारियलके फलोंसे, बिजोरनसे, जंभीरी नींबुओं और अनार तथा सुपारियोंसे मेरी पूजा करे ॥१३॥ लौंग तथा आम आदि

क्रमम् ॥१४॥ सफलायां दीपदानं विशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ रात्रौ जागरणं तत्र कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ यावदुन्मीलयेन्नेत्रं तावज्जागर्ति यो निशि ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा तस्य पुण्यं शृणुष्व तत् ॥ १६ ॥ तत्समो नास्ति वै यज्ञस्तीर्थं तत्सदृशं न हि ॥ तत्समं न व्रतं किंचिदिह लोके नराधिप ॥१७॥ पञ्चवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा च यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सफलाया व्रतेन वै ॥१८॥ श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथानकम् ॥ चम्पावतीति विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च ॥१९॥ माहिष्मतस्य राजर्षेश्चत्वारश्चाभवन्सुताः ॥ तेषां मध्ये तु यो ज्येष्ठः स महापापसंयुतः ॥२०॥

परदाराभिगामी च वेश्यासंगरतः सदा ॥ पितुर्द्रव्यं स पापिष्ठो गमयामास सर्वशः ॥ २१ ॥ असद्वृत्तिरतो

और अनेक प्रकारके फल-फूलों, धूप-दीपोंसे यथाक्रम भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये ।। १४ ।। सफलामें विशेष करके दीपदान कहा है । और रात्रिमें यत्नसे जागरण करना चाहिये ।।१५।। जब तक नेत्र खुले रहें तब तक एकाग्र मन होकर जागरण करनेके पुण्यको सुनिये ।।१६।। उसके समान न यज्ञ हैं और न तीर्थ हैं । हे राजन् ! उसके समान इस लोकमें कोई व्रत नहीं है ।।१७।। पांच हजार वर्ष तक तप करनेसे जो फल मिलता है वह फल सफला एकादशीके व्रत करने वालेको प्राप्त होता है ।।१८।। हे राजशार्दूल ! सफलाकी कथा सुनिये—माहिष्मत राजाकी चम्पावती नाम पुरी विख्यात है ।।१९।। माहिष्मत राजर्षिके चार पुत्र थे उनमें जो ज्येष्ठ था वह बड़ा पापी था ।।२०।। परस्त्री गमन और वेश्यासंग रत होकर उस पापात्माने पिताकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दिया ।। २१ ।। वह हमेशा

नित्यं देवताद्विजनिन्दकः ॥ वैष्णवानां च देवानां नित्यं निंदारतः स वै ॥ २२ ॥ इद्दग्विधं तदा दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः ॥ नाम्ना स वै लुंपकं तु कृतवानत्यमर्षितः ॥२३॥ राजान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैवापि बन्धुभिः ॥ परिवारजनैः सर्वैस्त्यक्तो राज्ञो भयादिति ॥२४॥ लुंपकोऽपि तदा त्यक्तश्चिन्तयामास एकलः ॥ मयाऽत्र किं प्रकर्त्तव्यं त्यक्तः पित्रा च बांधवैः ॥२५॥ इति चिंतापरो भूत्वा मतिं पापे तदाकरोत् ॥ मया तु गमनं कार्यं वनं त्यक्त्वा पुरीं पितुः ॥ ॥२६॥ दिवा वने चरिष्यामि रात्रावपि पितुः पुरः ॥ तस्माद्वनात्पितु सर्वं व्यापयिष्ये पुरं निशि ॥२७॥ इत्येवं स मतिं कृत्वा लुंपको दैवपातितः ॥ निर्जगाम पुरातस्माद्गतोऽसौ

देवता, ब्राह्मण, और वैष्णवोंकी निन्दा करता था तथा निम्नवृत्तिमें ही मनको लगाये रखता था ।। २२ ।। माहिष्मत राजाने ऐसे पुत्रको देखकर बहुत क्रोधित होकर उसका लुंपक नाम रख दिया ।। २३ ।। वह पिता और भाइयों द्वारा राज्यसे निकाल दिया गया राजाके भयसे कुटुंबके सब लोग उसे त्याग दिये ।। २४ ।। परिवारके लोगोंसे परित्यक्त लुंपक अकेला होकर विचार करने लगा कि पिता और बान्धवोंसे परित्यक्त अब मैं क्या करूँ ? ।।२५।। इस प्रकार चिन्तामें डूबा हुआ पापमें रत वह पिताके नगरको छोड़कर गहन-जंगलमें चला जानेका विचार किया ।।२६।। और सोचने लगा कि दिनमें वनमे विचरण करूँगा तथा रात्रिमे पिताके नगरमें वनसे आकर चोरी आदि उपद्रव करूँगा ।। २७ ।। इस प्रकार सोचकर भाग्यहीन वह लुंपक पुरसे निकल गया और एक घने जंगलमें जाकर रहने लगा ।। २८ ।।

गहनम् वनम् ॥२८॥ जीवघातकरो नित्यं नित्यं स्तेयपरायणः ॥ सर्वं वनचरं तेन मुषितं पापकर्मणा ॥२९॥ गृहीतश्च परित्यक्तो राज्ञो माहिष्मतेर्भयात् ॥ जन्मांतरीयपापेन राजभ्रष्टः स पापकृत् ॥३०॥ आमिषाभिरतो नित्यं नित्यं वै फलभक्षकः ॥ आश्रमस्तस्य दुष्टस्य वासुदेवस्य संमतः ॥ ३१ ॥ अश्वत्थो वर्तते तत्र जीर्णो बहुलवार्षिकः ॥ देवत्वं तस्य वृक्षस्य वर्तते तद्वने महत् ॥३२॥

तत्रैव निवसंश्चासौ लुंपकः पापबुद्धिमान् ॥ एवं कालक्रमेणैव वसतस्तस्य पापिनः ॥३३॥ दुष्कर्मनिरतस्यास्य कुर्वतः कर्म निन्दितम् ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु संप्राप्तं सफलादिनम् ॥ ३४ ॥ दशमीदिवसे राजन् निशायां शीतपीडितः ॥ लुम्पको वस्त्रहीनो वै निश्चेष्टो ह्यभवत्तदा ॥३५॥ पीडयमानस्तु शीतेन अश्वत्थस्य समीपतः॥

नित्यही जीवोंका बध करता और चोरी करके सभी वनचरोंको ठग लिया ॥२९॥ और यदि पकडा भी जाय तो लोग राजाके भयसे उसे छोड़ देते, वह पापात्मा जन्मांतरके पापसे राज्यसे भ्रष्ट हुआ ॥३०॥ नित्य ही वह फल भक्षक मांस भक्षण करने लगा, किन्तु उसका आश्रम, वासुदेव भगवान् के सन्निकट ही था ॥३१॥ वहां बहुत पुराना एक पीपलका वृक्ष था । उस पीपलका वनमें बड़ा महत्व था अर्थात् सब लोग देवतुल्य ही उसे मानते थे ॥३२॥ वहांही यह पापी लुम्पक निवास करता था । इस प्रकार बहुत दिनों तक वह वहां निवास करता रहा ॥३३॥ बुरे कर्मोंमें रत और निन्दनीय कार्य करनेवाले उस लुम्पकके उद्धारके लिए पौष कृष्णपक्षकी सफला नाम की एकादशीका दिन आया ॥३४॥ हे राजा युधिष्ठिर! दशमीके दिन रात्रिमें वस्त्रोंके बिना जाड़ेसे पीड़ित वह लुम्पक उस समय चेष्टारहित

न निद्रा न सुखं तस्य गतप्राण इवाभवत् ॥३६॥ पीडयन्दशनैर्दन्तानेवं च गमिता निशा ॥ भानूदयेऽपि तस्याथ न संज्ञा समजायत ॥३७॥ लुम्पको गतसंज्ञस्तु सफलादिवसे तदा ॥ मध्याह्नसमये प्राप्ते संज्ञां लेभे स लुम्पकः ॥३८॥ प्राप्तसंज्ञो मुहूर्तेन चोत्थितोऽसौ तदाऽऽसनात् ॥ प्रस्खलंश्च पदन्यासैः पंगुवच्चलितो मुहुः ॥ ३९ ॥ वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्तृषापीडितोऽभवत् ॥ न शक्तिर्जीवघातस्य लुंपकस्य दुरात्मनः ॥४०॥ फलानि भूमौ पतितान्याजहार स लुंपकः ॥ यावत्स चागतस्तत्र तावदस्तमगाद्रविः ॥ ४१ ॥ किं भविष्यति तातेति विललापातिदुःखितः ॥ फलानि तानि सर्वाणि वृक्षमूले न्यवेदयत् ॥४२॥ प्रत्युवाच फलैरेभिः प्रीयतां भग-

अर्थात् जडवत् हो गया ।।३५।। पीपरके समीप जाड़ेसे दुःखी वह लुम्पक नींदके सुखको न प्राप्त कर सका और मरे हुएके समान हो गया ।। ३६ ।। और दांतोंसे दांत बजाते हुए उसने रात बितायी और सूर्यनारायणके उदय होनेपर वह लुम्पक चैतन्य न हो सका ।। ३७ ।। इस प्रकार संज्ञारहित वह लुम्पक सफला एकादशीके दिन मध्याह्नके समय चैतन्यताको प्राप्त किया ।। ३८ ।। चैतन्य होनेपर वह लुम्पक धीरे-धीरे उठा और बारंबार गिरता पडता पंगु की भांति चलने लगा ।। ३९ ।। और भूख-प्याससे पीड़ित वनके मध्यमें गया किन्तु जब उस दुष्ट लुम्पकके जीवोंके बध करनेकी शक्ति न रही ।।४०।। तब वह भूमि पर पड़े फलों को ले आया और जब वह अपने स्थानपर पहुँचा तो सूर्य अस्त हो चुका था ।। ४१ ।। अरे! बाप! क्या होगा —ऐसा कहकर बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगा और उन सब फलों को वृक्ष के जड़ पर रख दिया ।।४२।। और कहने

वान्हरिः ॥ उपविष्टो लुंपकश्च निद्रां लेभे न वै निशि ॥४३॥ तेन जागरणं जातं भगवान्मधुसूदनः ॥ फलानां पूजनं मेने सफलायास्तथा व्रतम् ॥४४॥
कृतमेवं लुंपकेन ह्यकस्माद्व्रतमुत्तमम् ॥ तेन व्रतप्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ४५ ॥ पुण्यांकुरोदयाद्राजन् यथा प्राप्तं तथा शृणु ॥ रवेरुदयवेलायां दिव्योऽश्वश्चाजगाम ह ॥४६॥ दिव्यवस्तुपरीवारो लुंपकस्य समीपतः॥ तस्थौ स तुरगो राजन्वागुवाचाऽशरीरिणी ॥४७॥ प्राप्नुहि त्वंनृपसुतं स्वं राज्यं हतकण्टकम् ॥ वासुदेवप्रसादेन सफलायाः प्रभावतः ॥४८॥ पितुः समीपं गच्छ त्वं भुक्ष्व राज्यमकंटकम् ॥ तथेत्युक्त्वा त्वसौ तत्र दिव्य-

लगा कि, इन फलोंसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों। ऐसा कहकर लुम्पक बैठा हुआ रात्रि-भर जागता रहा ।४३।। उस जागने से उसका जागरण हो गया और भगवान् मधुसूदनने फल द्वारा पूजन तथा सफलाका व्रत मान लिया ।।४४।। इस प्रकार लुम्पक द्वारा अकस्मात् उत्तम व्रत किये जाने के प्रभाव से उसे निष्कंटक राज्य प्राप्त हुआ ।।४५।। हे राजन् ! पुण्य के अंकुर उदय होनेसे जिस प्रकार उसने राज्य पाया वह सुनो, प्रातः काल ही एक दिव्य घोड़ा वहां आया ।।४६।। दिव्य वस्तुओं से सुशोभित वह घोड़ा लुम्पकके समीप आकर खड़ा हुआ और उसी समय आकाशवाणी हुई ।।४७।। कि, हे राजा के पुत्र ! वासुदेव भगवान् की कृपा और सफला एकादशीके प्रभाव से तुम अपने निष्कंटक राज्यको प्राप्त हुये ।।४८।। तुम पिताके समीप जाओ और अपने निष्कंटक राज्य को प्राप्त करो। तथास्तु, ऐसा कहकर वह लुम्पक दिव्यरूप धारण

रूपधरोऽभवत् ॥४९॥ कृष्णे मतिश्च तस्यासीत् परमा वैष्णवी तथा ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यस्तात नत्वा स्थितो गृहे ॥५०॥ वैष्णवाय ततो दत्तं पित्रा राज्यमकण्टकम् ॥ कृतं राज्यं तु तेनैव वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ ॥५१॥ हरिवासरसंलीनो विष्णुभक्तिरतः सदा ॥ मनोज्ञास्तस्य पुत्राः स्युर्दाराः कृष्णप्रसादतः ॥ ५२ ॥ ततः स वार्धके प्राप्ते राज्ये पुत्रं निवेश्य च ॥ वनं गतः संयतात्मा विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ५३ ॥ साधयित्वा तथात्मानं विष्णुलोकं जगाम ह ॥ गतः कृष्णस्य सानिध्ये यत्र गत्वा न शोचति ॥५४॥ एवं ये वै प्रकुर्वन्ति सफलैकादशीव्रतम् ॥ इह लोके यशः प्राप्य मोक्षं यास्यंत्यसंशयम् ॥५५॥

कर लिया।।४९।।और उसकी परम वैष्णवी मति श्रीकृष्णजीमें रत हो गई। दिव्य आभारणकी शोभासे युक्त वह लुम्पक पिताको प्रणाम करके घरमें रहने लगा ।।५०।। तदनन्तर पिताने उस वैष्णवको निष्कंटक राज्य दिया, और उसने बहुत दिनों तक राज्य किया ।।५१।। वह हरि-वासर जो एकादशी है उसमें लीन और सदा विष्णुभक्तिमें रत रहने लगा और कृष्ण भक्तिके प्रसादसे उसे चार सुंदर पुत्र और स्त्री प्राप्त हुई ।।५२।। अन्त में वह अपने पुत्रको राज्य देकर तपस्या करने के लिए जितेन्द्रिय और कृष्ण भक्तिमें परायण होकर वन में चला गया ।।।५३।। वहां रहकर आत्मसिद्धि करके बैकुण्ठ धाम को गया। कृष्ण के सानिध्य में पहुँचने पर जीव शोच रहित हो जाता है ।। ५४।। इस प्रकार जो लोग

धन्यास्ते मानवा लोके सफला व्रतकारिणः।। तस्मिञ्जन्मनि ते मोक्षं लभन्ते नात्र संशयः ।।५६।। सफलायाश्च माहात्म्यश्रवणाद्धि विशांपते ॥ राजसूयफलं प्राप्य वसेत्स्वर्गे च मानवः ।।५७।। इति श्रीपौषकृष्णैकादश्याः सफलानाम्न्या माहात्म्यं सम्पूर्णम् ।।३।।

सफला एकादशी व्रत करते हैं वे इस लोक म सुख भोगकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं ।।५५।। संसार में सफला व्रत करने वाले धन्य हैं, निस्संदेह वे इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करते हैं ।।५६।। हे राजन् ! सफला व्रत के माहात्म मात्र सुनने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करक मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है ।। ५७ ।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यटीकायां दीपिकासमाख्यायांपौषकृष्णैकादशीभाषाव्याख्या समाप्ता ।।३।।

अथ पौषशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा ॥ कथयस्व प्रसादेन शुक्ला पौषस्य या भवेत् ॥१॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥ कस्मै तुष्टो हृषीकेशस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत् ॥ तस्या विधिं महाराज लोकानां च हिताय वै ॥३॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥ पुत्रदेति च नाम्नाऽसौ सर्वपापहरा परा ॥ नारायणोऽधिदेवोऽस्याः कामदः सिद्धिदायकः ॥४॥ नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ विद्यावन्तं यशस्वन्तं करोति च नरं हरिः ॥५॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ॥ पुरी

अथ पौषशुक्लैकादशीमाहात्म्यम् ॥ अथ पौषस्य शुक्ले या पुत्रदैकादशी स्मृता ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायांदीपिकां प्रतनोम्यहम् । युधिष्ठिर बोले कि, हे महाराज ! कृष्ण ! आपने शुभ सफलानाम की एकादशी कहा अब कृपाकरके पौषमासके शुक्लपक्षकी जो एकादशी है उसे कहिये ॥ १ ॥ उसका क्या नाम है, और उसकी विधि क्या है तथा उसमें किसकी पूजा होती है और हे हृषीकेश, पुरुषोत्तम ! आप किस पर प्रसन्न होते हैं वह संपूर्ण कथा सुनाइये ॥२॥ श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजन् ! सुनो, पौष शुक्ल पक्षकी एकादशी को मैं तुमसे कहता हूँ । और हे महाराज ! लोगों के कल्याण के लिये उसकी विधि को भी कहूँगा ॥३॥ हे राजन् ! पहले कही गई विधिसे इस व्रत को करना चाहिये । पुत्रदा नामक यह एकादशी सब पापोंको दूर करनेवाली है । कामनाओं के पूर्ण करनेवाले और सिद्धिप्रदातानारायण इसके देवता हैं ॥४॥ त्रिलोकी में इससे पर कोई नहीं है । इंस व्रत के करने वाले को भगवान् विष्णु विद्वान् और यशस्वी बना देते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् !

भद्रावती नाम्नी राजा तत्र सुकेतुमान् ॥६॥
तस्य राज्ञोऽथ राज्ञी च शैब्या नाम्नीति विश्रुता ॥ पुत्रहीनेन राज्ञा च कालो नीतो मनोरथैः ॥ ७ ॥ नैवात्मजं नृपो लेभे वंशकर्त्तारमेव च ॥ तेनैव राज्ञा धर्मेण चिंतितं बहुकालतः ॥८॥ किं करोमि क्व गच्छामि सुतप्राप्तिः कथं भवेत् ॥ न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान् ॥ शैब्यया कांतया सार्द्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवत् ॥९॥ तावुभौ दंपती नित्यं चिंताशोकपरायणौ ॥ पितरस्तु जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥१०॥ राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्मान्सन्तर्पयिष्यति ॥ इत्येवं संस्मरंतोऽस्य पितरो दुःखिनोऽभवन् ॥ तेषां तद्दुःखमूलं च ज्ञात्वा राजाप्यतप्यत ॥११॥ न बांधवा न मित्राणि सुहृदस्तथा ॥ रोचंते तस्य भूपस्य

पापों का नाश करनेवाली इसकी श्रेष्ठ कथा को सुनो भद्रावती नामक नगरी में सुकतुमान् नाम का एक राजा था ॥६॥ उस राजा की स्त्री का नाम शैब्या था। पुत्र हीन उस राजाने मनोरथ न करता हुआ समय व्यतीत किया ॥७॥ वह राजा वंशके चलानेवाले पुत्रको न प्राप्त करके बहुत समय तक धार्मिक चिंतन करता रहा ॥८॥ क्या करूं, कहां जाऊं, पुत्र कैसे प्राप्त हो ऐसा कहता हुआ राजा सुकेतुमान् देश और नगरमें, कहीं भी सुख-शांति न प्राप्त करता हुआ रानी शैब्या समेत सदैव दुःखित रहन लगा ॥९॥ वे दोनों स्त्री पुरुष इस चिंता और शोकमें नित्य मग्न रहने लगे कि, पितर हमारे दिये हुये जलको धीरे-धीरे पान करे हैं ॥१०॥ क्योंकि वे देख रहे हैं कि राजा के बाद इस कुल में हमें तर्पण करनेवाला कोई नहीं है-इससे पितर दुःखित हैं और उनके दुःख का मूल जाननेवाला राजा भी दुःखित है॥११॥ उसे न भाई, न मित्र,

न गजाश्वपदातयः ॥१२॥ नैराश्यं भूपतेस्तस्य मनस्यैवमजायत ॥ नरस्य पुत्रहीनस्य नास्ति वै जन्मनः फलम् ॥१३॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा ॥ पितृदेवमनुष्याणां नानृणत्वं सुतं विना ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः ॥ इह लोके यशस्तेषां परलोके शुभा गतिः ॥१५॥ येषां तु कर्मकर्तॄणां पुण्यं जन्मशतोद्भवम् ॥ आयुरारोग्यसंपच्च तेषां गेहे प्रवर्तते ॥१६॥ पुत्रपौत्राश्च लोकाश्च भवेयुः पुण्यकर्मणाम्॥ पुण्यं विना च न प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना तथा ॥१७॥
पुत्राणां संपदो वापि विद्यायाश्चेति मे मतिः ॥ एवं विचिंत्यमानोऽसौ राजा शर्म न लब्धवान् ॥ १८ ॥

न मंत्री, और सुहृद्, न हाथी, घोड़े, प्यादे, कोई भी अच्छे नहीं लगते ।।१२।। इस प्रकार उस राजा का मन निराश हो गया कि, पुत्ररहित मनुष्य का जन्म निष्फल है ।।१३।। पुत्रहीन मनुष्यका घर सूना लगता है और उसका हृदय सदा दुःखी रहता है तथा पुत्र बिना पितृ-देव और मनुष्यका ऋण दूर नहीं होता ।।१४।। अतः मनुष्य को सब प्रकार के यत्न करके पुत्र उत्पन्न करना चाहिये । जिसस इस लोक में सुख और परलोक में शुभगति प्राप्त हो ।।१५।। जिस शुभ कर्म करनेवाले मनुष्य के सैकड़ों जन्म के पुण्य उदय होते हैं उन्हींके घरमें आयु, आरोग्य और संपत्ति सदा रहती है ।।१६।। पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्य को ही पुत्र-पौत्र और लोकमें यश प्राप्त होता है, पुण्य कर्म और विष्णु भक्ति बिना इनका सर्वथा अभाव रहता है ।।१७।। पुत्ररूपी और विद्यारूपी संपत्ति पूर्वजन्मके पुण्य बिना नहीं प्राप्त होती, इस विचार में मग्न

प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽचिन्तयत्तथा ॥ ततश्चात्मविनाशं वै विचार्याथ सुकेतुमान् ॥ १९ ॥ आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मदेहं प्रक्षीणमपुत्रत्वं तथैव च ॥ २० ॥ पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या ह्यात्मनो हितकारणम् ॥ अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम् ॥ २१ ॥ पुरोहितादयःसर्वे न जानंति गतं नृपम् ॥ गंभीरे विपिने राजा मृगपक्षि निषेविते ॥२२॥ विचचार तदा तस्मिन्वने वृक्षान्विलोकयन् ॥ वटा-नश्वत्थबिल्वांश्च खर्जूरान् पनसांस्तथा ॥२३॥ बकुलान् शप्तपर्णांश्च तिंदुकांस्तिलकानपि ॥ शालांस्तालांस्त-मालांश्च ददर्श सरलान्नृपः ॥२४॥ इंगुदीककुभांश्चैव श्लेष्मातक विभीतकान् ॥ शल्लकीकरमर्दांश्च पाटलान् खदिरानपि ॥२५॥ शाखांश्चैव पलाशांश्च शोभितान्ददृशे नृपः ॥ मृगव्याघ्रवराहांश्च सिंहान्छाखानृगानपि ॥

वह राजा सदैव दुःखी रहने लगा ।।१८।। प्रातःकाल तथा अर्द्धरात्रिके समय वह राजा चिंता करता रहा और उसके बाद आत्मघात करने का निश्चय किया ।।१९।। किन्तु आत्मघात से दुर्गति होगी यह विचारकर पुत्ररहित और अपनी क्षीण शरीर को देखा ।।२०।। तदनन्तर अपनी बुद्धि से निजहित विचार कर घोड़े पर चढ़कर घने वन में चला गया ।।२१।। मृग-पक्षी आदि से व्याप्त घनेवन में राजा चला गया है, यह बात पुरोहितादि नहीं जान सके ।।२२।। वहां जाकर वट, पीपर, बेल, खजूर, और कटहलके वृक्षोंको देखकर विचार करने लगा ।। २३ ।। और मौलसरी, सप्तपर्ण, तेंदू, तिलक, शाल, तमाल और सरल इन वृक्षोंको देखा ।।२४।। और हिंगोट, अर्जुन, बभेरा, शल्लकी, करोंदा, पाटल,

॥२६॥ ददर्श भुजगान् राजा वाल्मीकादभिनिस्सृतान् तथा वनगजान्मत्तान्कलभैः सह संगतान् ॥ २७ ॥
गवयान्कृष्णसारान् गाः सृगालाञ्छशकानपि ॥ वनमार्जारकान्क्रूराञ्झल्लकांश्चमरानपि ॥ २८ ॥ यूथपांश्च
चतुर्दन्तान्करिणीगणमध्यगान् ॥ तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास ह्यात्मनस्स गजान्नृपः ॥२९॥
तेषां स विचरन्मध्ये राजा शोकमवाप ह ॥ महदाश्चर्यसंयुक्तं ददर्श विपिनं नृपः ॥ ३० ॥ क्वचिच्छिवारुतं
शृण्वन्नुलूकविरुतं तथा ॥ तांस्तान्पक्षिगणान्पश्यन्बभ्राम वनमध्यगः ॥ ३१ ॥ एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यंगते
रवौ ॥ क्षुतृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति ॥३२॥ चिंतयामास नृपतिः संशुष्कगलकन्धरः ॥ मया

खैर, और वैर इन सब वृक्षोंको भी देखा ॥ २५ ॥ शाखा और ढाक आदि शोभायमान वन को देखा तथा मृग, वाघ, सुअर, सिह तथा वानरों को देखा ॥२६॥ बाँबीसे निकले हुये सांपोंको देखा । अपने बच्चों के साथ घूमते हुये मतवाले हाथियों को देखा ॥२७॥ नील, गवय, काले मृग, गौ, स्यार, शशक, बिलाव, शल्लक, सुरा गौ इन सबको देखा ॥२८॥ चार दांतवाले यूथप हाथियों को हाथिनियोंके समूहमें स्थित देखकर राजाने अपने हाथी को स्मरण किया ॥२९॥ उस वन में उन सबके मध्य शोक संतप्त होकर राजा बड़े आश्चर्यसे उस वनको देखता रहा ॥३०॥ कहीं शृगाल और कहीं उलूक पक्षी के शब्द सुनाई पड़ते हैं । अनेक प्रकार के पक्षी-समूह के मध्य में विचरण करने लगा ॥३१॥ इस प्रकार राजा बनमें भूख-प्यास से व्याकुल होकर इधर-उधर विचरण करता हुआ दोपहर बिता दिये ॥३२॥ प्यास से कण्ठ सूख गया.

तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम् ॥३३॥ मया च तोषिता देवा यज्ञैः पूजाभिरेव च ॥ तथैव ब्राह्मणा दानैस्तोषिता मिष्टभोजनैः ॥३४॥ प्रजाश्चैव यथाकालं पुत्रवत्परिपालिताः ॥ कस्माद्दुःखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणं महत् ॥३५॥ इति चिन्तापरो राजा जगामाथाग्रतो वनम् ॥ सुकृतस्य प्रभावेण सरो दृष्टं मनोरमम् ॥ ॥३६॥ मानसं स्पर्धमानं च पद्मिनीपरिशोभितम् ॥ कारंडवैश्चक्रवाकै राजहंसैश्च नादितम् ॥३७॥ मकरैर्बहुभिर्युक्तं मत्स्यैर्जलचरैर्युतम् ॥ समीपे सरसस्तत्र मुनीनामाश्रमान्बहून ॥३८॥ ददर्श राजा लक्ष्मीवान्निमित्तैः शुभशंसिभिः ॥ सव्यात्परतरं चक्षुः प्रास्फुरच्च तथा करः ॥३९॥ स्फुरितस्तस्य राज्ञश्च शंसितशुभलक्षणम् ॥

राजाने सोचा कि मैंने ऐसा कौन-सा कर्म किया है जिससे मुझे इस प्रकार दुःख प्राप्त हो रहा है ।।३३।। मैंने यज्ञ और पूजा से देवताओं को तथा मधुर भोजन और दक्षिणा से ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया ।।३४।। पुत्र के समान सदैव प्रजा का पालन किया है । न जाने क्यों मुझे ऐसा दारुण-दुःख मिल रहा है ।।३५।। इस प्रकार विचार मग्न वह राजा वनमें और आगे जाकर पुण्य के प्रभाव से एक मनोहर तालाब देखा ।।३६।। मान सरोवर के सदृश कुमुदिनी के पुष्पों से सुशोभित उस तालाब में जल-कुक्कुट और चक्रवाक तथा राजहंसों की पंक्तियां कलरव कर रही थीं ।।३७।। बहुत से मगरमच्छ और मछलियों से युक्त उस सरके समीप मुनियों के बहुत से आश्रम थे।।३८।।सदुपदेशक मुनिजनों के आश्रम को देखते ही उस राजा का दाहिन नेत्र और भुजा फड़कने लगी।।३९।। उनके स्फुरण से राजा को शुभ लक्षण परतीत हुआ और उस तालाबके

तस्य तीरे मुनीन् दृष्ट्वा कुर्वाणान्नैगम जपम् ॥४०॥ अवतीर्य हतात्तस्मान्मुनीनामग्रतः स्थितः ॥ पृथक् पृथक् ववंदे स मुनींस्ताञ्शंसितव्रतान् ॥४१॥

कृतांजलिपुटो भूत्वा दण्डवच्च प्रणम्य सः ॥ हर्षेण महताविष्टो बभूव नृपसत्तमः ॥४२॥ तमूचुस्तेऽपि मुनयः प्रसन्नाः स्मो वयं तव ॥ कथयस्वाद्य वै राजन् यत्ते मनसि वर्तते ॥४३॥ राजोवाच ॥ के यूयमग्रतपसः किमाख्याभवतामपि ॥ किमर्थमागता यूयं वदंतु मम तत्त्वतः ॥४४॥ मुनय ऊचुः ॥ विश्वेदेवा वयं राजन्स्नानार्थमिह चागताः ॥ माघो निकटमायात एतस्मात्पंचमेऽहनि ॥४५॥ अद्य ह्येकादशी राजन्पुत्रदा नाम नामतः ॥

तट पर वेदोच्चारण करते हुये मुनिजनों को देखा ॥४०॥ तदनंतर घोड़े से उतर कर राजा व्रतशील उन मुनीश्वरों को अलग-अलग नमस्कार करने लगा ॥ ४१ ॥ वह श्रेष्ठ राजा मुनीश्वरोंको हाथ जोड़कर दण्डवत्-प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ४२ ॥ वे मुनीश्वर उस राजासे बोले–कि, हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। हे राजन्! जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान हो वह हमसे कहो ॥४३॥ राजा बोला–कि, हे श्रेष्ठ तपस्विन्! आप लोगों के क्या नाम हैं और यहां किस लिये आये हैं? यह स्पष्ट तया मुझे बतलाइये ॥ ४४ ॥ मुनीश्वर बोले– कि, हे राजन्! हम विश्वदेवा हैं और यहां स्नान करने के लिए आये हैं। आजके पांचवें दिन से माघका महीना प्रारंभ हो जायगा ॥४५॥ हे राजन्! आज पुत्रदा नामकी एकादशी है, यह शुक्लपक्षकी पुत्रदा एकादशी

पुत्रं ददात्यसौ शुक्ला पुत्रदा पुत्रमिच्छताम् ॥४६॥ राजोवाच ॥ एष वै संशयो मह्यं सुतस्योत्पादने महान् ॥ यदि तुष्टा भवन्तो मे पुत्रो वै दीयतां तदा ॥ ४७ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अस्मिन्नेव दिने राजन्पुत्रदा नाम वर्तते ॥ एकादशीति विख्याता क्रियतां व्रतमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ आशीर्वादेन चास्माकं केशवस्य प्रसादतः ॥ अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति ॥४९॥ इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतं शुभम् ॥ द्वादश्यां पारणं कृत्वा मुनीन्नत्वापुनः पुनः ॥५०॥ आजगाम गृहं राजा राज्ञी गर्भं समादधौ ॥ मुनीनांवचनेनैव पुत्रदायाः प्रभावतः ॥५१॥ पुत्रो जातस्तथा काले तेजस्वी पुण्यकर्मकृत् ॥ पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः ॥५२॥

पुत्रकी कामना करनेवाले मनुष्योंको पुत्र देती है ।।४६।। राजा बोले—इससे पुत्र उत्पन्न होने में मुझे संदेह है। यदि आप लोग मुझ पर प्रसन्न हो तो मुझे पुत्र प्रदान करें ।।४७।। मुनि बोले—कि, हे राजन्! आजही पुत्रदा नामसे विख्यात एकादशी है अतः इस उत्तम व्रत को कीजिये ।।४८।। हमारे, आशीर्वाद और केशव भगवान् के प्रसादसे हे राजन्! तुम्हें अवश्य पुत्रकी प्राप्ति होगी ।। ४९ ।। इस प्रकार उन मुनीश्वरोंके कहने पर राजाने एकादशी का व्रत करके द्वादशी क दिन पारण करके मुनीश्वरों को बारंबार प्रणाम करने लगा ।।५०।। तत्पश्चात् राजा घर आया। मुनीश्वरोंकी कृपा और व्रत के पुण्य से रानी गर्भवती हुई ।। ५१ ।। और समय आने पर तेजस्वी तथा पुण्यशील पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पिताको संतुष्ट करता और प्रजा-

एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यं पुत्रदाव्रतम् ॥ लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥ ५३ ॥ एतद्व्रतं तु ये मर्त्याः कुर्वंति पुत्रदाभिधम् ॥ तेषां चैव भवेत्पुत्रो ह्यवश्यं मोक्षभागिनाम् ॥५४॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेध-फलं लभेत् ॥५५॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे पौषशुक्लैकादश्याः पुत्रदानाम्न्या माहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥४॥

पालनमें तत्पर रहता था ।। ५२ ।। हे राजन्! अतः पुत्रदा एकादशी का व्रत करना चाहिये। लोगों के लिये मैंने तुमसे कहा। ।। ५३ ।। जो लोग पुत्रदा व्रत करते हैं उन मोक्षभागियों को अवश्य पुत्र प्राप्त होता है ।।५४।। इसे पढ़ने और सुनने से अश्व-मेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।। ५५ ।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्य-भाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां पौष शुक्लैकादशीव्याख्या समाप्ता ।।४।।

अथ माघकृष्णैकादशीकथा॥ दाल्भ्य उवाच॥ मर्त्यलोके तु संप्राप्ताः पापं कुर्वंति जन्तवः॥ ब्रह्महत्यादिपापैश्च ह्यन्यैश्च विविधैर्युताः॥१॥ परद्रव्यापहाराश्च परव्यसनमोहिताः॥ कथं न यांति नरकान् ब्रह्मस्तद ब्रूहि तत्त्वतः ॥२॥ अनायासेन भगवन्दानेनाल्पेन केनचित् ॥ पापं प्रशममायाति येन तद्वक्तुमर्हसि॥३॥ पुलस्त्य उवाच॥ साधु साधु महाभाग गुह्यमेतदुदाहृतम् ॥ यन्न कस्य चिदाख्यातं ब्रह्मविष्णिवन्द्रदेवतैः ॥ ४ ॥ तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम ॥ ततो माघे तु संप्राप्ते शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ कामक्रोधाभिमानेर्ष्यालोभपैशुन्यवर्जितः ॥ देवदेवं च संस्मृत्य पादौ प्रक्षाल्य वारिणा ॥६॥

अथ माघकृष्णैकादशीकथा ॥ अथ माघस्य कृष्णे या षट्तिलैकादशी स्मृता ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां विवृतिं संतनोम्यहम् ॥ १ ॥ दाल्भ्य ऋषि बोले कि, मर्त्यलोकमें जन्म प्राप्त कर जीव ब्रह्महत्या आदि तथा नाना प्रकारके अन्य पापों को करता रहता है ॥ १ ॥ दूसरे के धनको हरण करनेवाले और व्यसनों में लिप्त पुरुष नरक से किस प्रकार छुटकारा पायें, हे ब्रह्मन् ! उस तत्त्व को कहो ॥२॥ हे भगवन् ! किस छोटे-से दानसे अनायास पाप शांत होता है वह कृपया कहिये ॥३॥ पुलस्त्य बोले कि, हे महाभाग ! साधु साधु अर्थात् बहुत अच्छी बात तुमने कही जिसे कभी ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि देवताओंने भी किसी से नहीं कहा है ॥४॥ हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे पूछनेसे वह गुप्त वस्तु मैं तुम्हें बतलाता हूँ । माघ महीना के आने पर स्नानसे शुद्ध हो करके संयम से रहे ॥५॥ काम, क्रोध, अभिमान, ईर्षा, लोभ और चुगली से आदि दुर्गुणों से दूर रहे और हाथ-पाँव

भूमावपतितं ग्र ह्यं गोमयं तत्र मानवः ॥ तिलान् प्रक्षिप्य कार्पासं पिण्डकांश्चैव कारयेत् ॥ ७ ॥ अष्टोत्तरशतं चैव नात्र कार्या विचारणा ॥ ततो माघे च संप्राप्ते ह्यादौ चैव भवेद्यदि ॥ ८ ॥ मूले वा कृष्णपक्षस्यैकादश्यां नियमं ततः ॥ गृह्णीयात्पुत्रफलदं विधानं तत्र मे शृणु ॥९॥ देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः ॥ कृष्ण-नामानि संकीर्त्य क्षुज्जृंभासु च सर्वदा ॥१०॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्रात्रौ होमं च कारयेत् ॥ अर्चयेद्देवदेवेशं शंख-चक्रगदाधरम् ॥ ११ ॥ चन्दनागरुकर्पूरैर्नैवेद्यैः शर्करादिभिः ॥ संस्मृत्य नाम्ना च ततः कृष्णाख्येन पुनः पुनः ॥१२॥ कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः ॥ सर्वाभावेऽपि विप्रेन्द्र शस्तं पूगीफलं तदा ॥ १३ ॥ अर्घ्यं

धोकर एकाग्रचित्त से आसन लगाकर विष्णु भगवान् को स्मरण करे ॥६॥ भूमिमें न गिरे हुये गोबर को लेकर उसमें तिल और कपास मिलाकर पिंड बनावे ॥७॥ आहुति के लिये १०८ पिंड बनाये इसमें किसी प्रकार के विचार करने की आवश्यकता नहीं है, माघ मासके प्रारंभ से ही नियम करे ॥८॥ अथवा कृष्णपक्षके प्रारंभ में। तदनन्तर पुत्र-प्रदान करने वाली एकादशी व्रत को करे। उसकी विधि मुझसे सुनिये ॥ ९ ॥ स्नान करके शुद्ध और सावधान मन से भगवान् का विधिवत पूजन करे और छींक तथा जम्हाई आने पर सदा कृष्ण नाम का संकीर्तन करे ॥१०॥ रात्रिमें जागरण करे और रात्रिहीमें उन एकसौ आठ पिण्डोंसे होम करे। शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले देवदेवेश भगवान् का ध्यान करे ॥११॥ चंदन, अगर, कपूर तथा शर्करा आदि का नैवेद्य अर्पित करे बारंबार कृष्णनाम कहता हुआ भगवान्की पूजा करे ॥१२॥ कुम्हड़ा से अथवा नारियलों से या बिजौरों

दत्त्वा विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ कृष्ण कृष्ण कृपालो त्वमगतीनांगतिप्रद ॥ १४ ॥ संसारार्णवमग्नानां प्रसीद परमेश्वर ॥ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥१५॥ सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ॥ १६ ॥ ततस्तु पूजयेद्विप्रमुदकुंभं प्रदापयेत् ॥ छत्रोपानहवस्त्रैश्च कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥१७॥

कृष्णा धेनुः प्रदातव्या यथाशक्त्या द्विजोत्तम ॥ तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठं दद्यात्तत्र विचक्षणः ॥१८॥ स्नानप्राशनयोः शस्ताः श्वेताः कृष्णस्तिला मुने ॥ तान् प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्त्या द्विजोत्तम ॥ १९ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि

से पूजन करे। (इनके अभाव में सुपारी सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है ।।१३।। विधिवत अर्घ्य दे पूजन करके प्रार्थना करे, कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे कृपालो! हे गतिरहितोंको गति देनेवाले! ।। १४ ।। संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुये मनुष्यों पर कृपा करो! हे पुण्डरीकाक्ष! हे विश्वभावन! आपको नमस्कार है ।। १५ ।। हे सुब्रह्मण्य! हे महापुरुष! हे पूर्वज! हे जगत्पते! मेरे दिये हुये अर्घ्यंको लक्ष्मी सहित ग्रहण करें ।।१६।। तदनन्तर छत्र, उपानह और वस्त्रों से ब्राह्मणोंका पूजन करके जल से भरे घड़े दान करे और प्रार्थना करे कि आप मुझ पर प्रसन्न हों ।।१७।। और हे ब्राह्मण! यथाशक्ति कृष्ण गौका दान करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठ! उस दिन चतुर मनुष्य तिलसे भरे पात्रको दान करे ।।१८।। हे मुनि! नहाने तथा खानेमें सफेद और काले दोनों प्रकारके तिल श्रेष्ठ हैं। अथवा स्नानमें स्वेत और भोजनमें काले तिल उत्तम कहे गये है। हे द्विजोत्तम! तिलोंका

स्वर्गलोके महीयते ॥ तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥ २० ॥ तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशकाः ॥ नारद उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते भक्तभावन ॥२१॥ षट्तिलैकादशीभूतं कीदृशं फलमश्नुते ॥ सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि यादव ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु ब्रह्मन्यथावृत्तं दृष्टं तत्कथयामि ते ॥ मृत्युलोके पुरा ह्यासीद्ब्राह्मणी तत्र नारद ॥ २३ ॥ व्रतचर्यरता नित्यं देवपूजारता तदा ॥ मासोपवासनिरता मम भक्ता च सर्वदा ॥ २४ ॥ कृष्णोपवाससंयुक्ता मम पूजापरायणा ॥ शरीरं क्लेशितं

यथाशक्ति दान करना चाहिये ।।१९।। जितने तिलोंका दान करे उतने हजार वर्षों तक स्वर्ग में निवास करे। १ तिलयुक्त जलसे स्नान, २-तिल पीसकर उबटन लगाये, ३-तिल से हवन करे, ४-तिल युक्त जल पिये, ५-तिल भक्षण करे और, ६-तिल का ही-दान करे-ये छः प्रकारके तिल पापोंका नाश करते हैं।। नारद मुनि बोले–कि हे कृष्ण, हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे भक्त-भावन! आप को नमस्कार है ।।२०।।२१।। षट्तिला एकादशीसे उत्पन्न फल किसे प्राप्त हुआ, हे यादव! यदि आप प्रसन्न हैं तो उपाख्यान सहित उस मुझसे कहें ।।२२।। श्रीकृष्ण बोले–कि, हे ब्रह्मन्! जिस भांति मैंने वह वृत्तान्त देखा है वह तुमसे कहता हूँ–हे नारद ! पहले मृत्यु लोक में एक ब्राह्मणी थी ।।२३।। वह सदैव व्रत करती और देव पूजन में रत रहती। मास भरके व्रतों को करती और मेरी बड़ी भक्त थी ।।२४।। कृष्ण के व्रत करती हुई मेरी पूजा में तत्पर रहने लगी।

नित्यमुपवासैर्द्विजोत्तम ॥२५॥ दीनानां ब्राह्मणानां च कुमारीणां च भक्तितः ॥ गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महामतिः ॥२६॥ अतिकृच्छरता सा तु सर्व कालेषु वै द्विज ॥ शुद्धमस्याः शरीरं हि व्रतैः कृच्छैर्न संशयः॥२७॥ अर्थिनं वैष्णवं लोकं कायक्लेशेन वै तया॥ नदत्तमन्नदानं हि येन तृप्तिः परा भवेत्॥२८॥ एतज्जिज्ञासया ब्रह्मन्मृत्युलोकमुपागतः ॥ कापिलंरूपमास्थाय भिक्षापात्रेण याचिता ॥२९॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन्वद यस्मात्समागतः ॥ पुनरेव मया प्रोक्तं देहि भिक्षां च सुन्दरि ॥३०॥ तया कोपेन महता मृत्पिडस्ताम्रभाजने॥ क्षिप्तो यावत्तया देव्या पुनः स्वर्गं गतो द्विजः ॥३१॥ ततः कालेन महता तापसी सुमहाव्रता ॥ कदाचित्स्वर्ग-

हे द्विजोत्तम ! सदा व्रत करने से उसका शरीर क्लेशित हो गया ॥२५॥ वह अति बुद्धिमती स्त्री दीन ब्राह्मणों को और कुमारियोंको भक्ति पूर्वक सदा घर आदिक दान करती ॥२६॥ हे द्विज ! वह अति कठिन व्रत में तत्पर हुई। व्रतों और कृच्छ्रों द्वारा उसका शरीर शुद्ध हो गया इसमें संदेह नहीं है ॥ २७ ॥ किन्तु उसने भूखसे पीड़ित किसी भिखारी ब्राह्मण को अन्नदान नहीं दिया जिससे मैं प्रसन्न होता हूँ ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! इस बातको जानने की इच्छा से मैं मृत्युलोकमें आया और कपिलब्राह्मणका रूप धारण कर मैंने उससे केवल भिक्षा मांगी ॥२९॥ ब्राह्मणी बोली–कि, हे ब्रह्मन् ! तुम कहां से आये हो ॥ जहाँसे आये हो वह मुझे बताओ। परंतु मैंने फिर यही कहा कि, हे सुंदरि ! भिक्षा दे ॥३०॥ हे द्विज ! उसने बड़ा क्रोध करके हमारे ताम्र पात्र में मिट्टी का एक पिंड डाल दिया फिर मैं स्वर्ग को चला गया ॥ ३१ ॥ बहुत दिनों बाद वह व्रत करनेवाली तापसी व्रत करनेके प्रसाद से स्वर्ग

मायाता व्रतचर्याप्रसादतः ॥३२॥ मृत्पिण्डस्य प्रभावेण गृहं प्राप्तं मनोरमम् ॥ संजातं चैव विप्रर्षे धान्यकोशा-
दिवर्जितम् ॥३३॥ गृहं यावन्निरीक्षेत न किंचित्तत्र पश्यती ॥ तावद्गृहाद्विनिष्क्रांता ममान्ते चागता द्विज ॥३४॥
क्रोधेन महताविष्टा त्विदं वचनमब्रवीत् ॥ मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च उपवासैरनेकशः ॥३५॥ पूजयाऽऽराधितो देवः
सर्वलोकस्य भावनः ॥ न धनं दृश्यते किंचिद्गृहे मम जनार्दन ॥३६॥ ततश्चोक्ता मया सा तु गृहं गच्छ यथागतम् ॥
आगमिष्यंति सुतरां कौतूहलसमन्विताः ॥३७॥ देवपत्न्यस्तु त्वां द्रष्टुं विस्मयेन समन्विताः ॥ द्वारं नोद्घाटनीयं हि
षट्तिलापुण्यवाचनात् ॥३८॥ एवमुक्ता गता सा तु यदा वै मानुषी तदा ॥ अत्रांतरे समायाता देवपत्न्यश्च नारद ॥३९

लोकमें आई ॥ ३२ ॥ मिट्टीके पिंडदान करने से उसे सुंदर-मनोहर घर प्राप्त हुआ, हे विप्रर्षे ! वह घर धान्यके भण्डारसे रहित हो गया ॥३३॥ जब घरको देखा तो उसमें कुछ भी न था। -हे ब्राह्मण ! तब वह घरसे निकल कर हमारे समीप आई ॥ ३४ ॥ और बड़े क्रोधसे भरी वह यह वचन कहने लगी कि, मैंने अनेक व्रत और चन्द्रायण कृच्छ्र किये तथा उपवास करके अनेक बार ॥ ३५ ॥ सर्व लोक-भावन जो भगवान् विष्णु हैं उनका आराधना किया है। हे जनार्दन ! किन्तु मेरे घरमें थोड़ा भी धन नहीं दिखाई दता है ॥३६॥ तब मैंने उससे कहा कि, तू बहुत शीघ्र अपने घर जा, शीघ्र ही देवांगनाएं तेरे पास आयेंगी ॥३७॥ जिस समय वे विस्मय युक्त होकर तुझे देखने के लिए आयें तो द्वार मत खोलना किन्तु षट्तिला एकादशी का पुण्य मांगना ॥३८॥ भगवान् के इस प्रकार कहने पर वह ब्राह्मणी अपने घर गई। हे नारद ! उसी समय देव-पत्नियां आईं ॥ ३९ ॥

ताभिश्च कथितं तत्र त्वां द्रष्टुं हि समागताः ॥ द्वारमुद्घाटय त्वं च पश्यामस्त्वां शुभानने ॥ ४० ॥ मानुष्युवाच ॥ यदि द्रष्टुं मया कार्यं सत्यं वाच्यं विशेषतः ॥ ददन्तु षट्तिलापुण्यं द्वारोद्घाटनकारणात् ॥४१॥ एकापि तत्र नावादीत्षट्तिलाव्रतनामतः ॥ अन्यया कथितं तत्र द्रष्टव्या मानुषी मया ॥ ४२ ॥ ततो द्वारं समुद्घाट्य दृष्टा ताभिश्च मानुषी ॥ न देवी न च गंधर्वी नासुरी न च पन्नगी ॥ दृष्टा पूर्वं मया नारी ईदृशी सा द्विजर्षभ ॥ ४३ ॥ रूपकांतिसमायुक्ता क्षणेन समपद्यत ॥ धनं धान्यं च वस्त्रादि सुवर्णं रौप्यमेव च ॥४४॥ सर्वं गृहं सुसंपन्नं षट्तिलायाः प्रसादतः ॥ अतितृष्णा न कर्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

वे उससे कहने लगीं कि हम तुम्हें देखने आई हैं तुम द्वार खोलो । हे सुंदरी ! हम तुमको देखेंगी ।। ४० ।। मानुषी बोली–कि, यदि तुम मुझे देखना चाहती हो तो षट्तिलाका पुण्य मुझे दो तब मैं द्वार खोलूंगी ।।४१।। षट्तिला व्रतके पुण्य देने के नाम पर सब चुप हो गयीं । तदनन्तर उनमें से एक ने कहा कि हमें मानुषी देखनी है अतः मैं षट्तिला व्रतका पुण्य दूंगी ।।४२।। उसके बाद उन्होंने द्वार खोलकर मानुषी को देखा किन्तु वह न गंधर्वी है, न आसुरी है और न पन्नगी है । हे द्विजश्रेष्ठ ! पहले मैंने उस नारीको ऐसीही देखा ।।४३।। बाद में वह क्षणमात्र में ही रूप और कांति से युक्त हो गई उसका घर धन-धान्य वस्त्र, सुवर्ण, चांदी आदि भरपूर हो गया ।।४४।। षट्तिलाके प्रभावसे उसका घर सब वस्तुओंसे सम्पन्न हो गया । अतितृष्णा नहीं करनी चाहिये, धनकी शठता का भी परित्याग करना चाहिये ।।४५।। अपनी शक्तिके अनुसार

आत्मवित्तानुसारेण तिलान्वस्त्रादि दापयेत् ॥ लभते चैवमारोग्यं ततो जन्मनि जन्मनि ॥४६॥ दारिद्र्यं न च कष्टं वै न च दौर्भाग्यमेवच ॥ न भवेद्वै द्विजश्रेष्ठ षट्तिलाया उपोषणात् ॥४७॥ अनेन विधिना राजंस्तिलदानान्न संशयः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ॥४८॥ दानं च विधिना सम्यक् सर्वपापप्रणाशनम् ॥ नानर्थभूतो नायासः शरीरे मुनिसत्तम ॥४९॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराण माघकृष्णैकादशीषट्तिलामाहात्म्यं समाप्तम् ॥५॥

तिल, वस्त्र आदि दान करे । उससे जन्म-जन्मांतर में आरोग्यता प्राप्त होती है ।।४६।। दरिद्रता, किसी प्रकार का कष्ट और दुर्भाग्य नहीं होता हे द्विजश्रेष्ठ ! षट्तिलाका व्रत करने से ये कोई भी बातें नहीं होती हैं।।४७।। हे राजन् इस प्रकार तिल दान करनेसे सब प्रकार के पातकों से जीव छुटकारा पा जाता है, इसमें संदेह नहीं है ।।४८।। हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि विधिपूर्वक दान दिया जाय तो सब प्रकार के पापों का नाश हो जाता है । न कोई अनर्थ होता है और न किसी प्रकार का शारीरिक खेद होता है ।।४९।। इति श्रीपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म-द्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां माघकृष्णैकादशीषट्तिलामाहात्म्यं समाप्तम् ।।५।।

अथ माघशुक्लैकादशीकथा॥ युधिष्ठिर उवाच॥ साधु कृष्ण त्वया प्रोक्ता आदिदेव जगत्पते॥ स्वेदजा अंडजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥१॥ तेषां कर्त्ता विकर्त्ता च पालकः क्षयकारकः॥ माघस्य कृष्णपक्षे तु षट्तिला कथिता त्वया ॥२॥ शुक्ले चैकादशी या च कथयस्व प्रसादतः॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते॥३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र शुक्ले माघस्य या भवेत् ॥ जयानाम्नीति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ ४ ॥ पवित्रा पापहंत्री च पिशाचत्वविनाशिनी ॥ नैव तस्या व्रते जीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम् ॥ ५ ॥ नातः परतरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्येयं प्रयत्नतः ॥६॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथां

अथ माघशुक्लैकादशीमाहात्म्य ॥ माघस्यापरपक्षे या जयाख्यैकादशी स्मृता ॥ तन्माहात्म्यस्य विवृतिं केशवाख्यस्तनोम्यहम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले–कि, हे आदिदेव ! हे जगत्पते ! हे कृष्ण ! आपने बहुत सुंदर उपदेश दिया। स्वेदज, अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, ये चार प्रकारके जीव हैं ॥ १ ॥ उनके कर्त्ता, पालक और क्षय करने वाले आपही हैं। माघके कृष्ण पक्ष की षट्तिला एकादशी आपने कहा ॥२॥ अब शुक्ल पक्ष की एकादशी का प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करें। उसका नाम क्या है, विधि क्या है और उसमें किस देव का पूजन करना चाहिये ॥३॥ श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजेंद्र ! माघ महीनाके शुक्लपक्षमें सब पापोंको हरनेवाली जया नामसे प्रसिद्ध एकादशी होती है, उसे कहता हूँ ॥४॥ वह पवित्र और पापों को दूर करनेवाली और पिशाच योनिसे छुड़ानेवाली है उसे करनेसे मनुष्य प्रत नहीं बनता है ॥ ५ ॥ इसस बढ़कर अन्य कोई पापोंका नाश करनेवाली तथा मोक्ष देने

पौराणिकीं शुभाम्॥ पङ्कजे च पुराणेऽस्या महिमा कथितो मया॥७॥ एकदा नागलोके वै इन्द्रो राज्यं चकार ह॥ देवाश्च तत्र संख्येन निवसंति मनोरमे ॥८॥ पीयूषपाननिरता ह्यप्सरोगणसेविताः ॥ नन्दनं तु वनं तत्र पारिजातोपशोभितम् ॥ ९ ॥ रमयन्ति रमंत्यत्र ह्यप्सरोभिर्दिवौकसः ॥ एकदा रममाणोऽसौ देवेन्द्रः स्वेच्छया नृप ॥ १० ॥

नर्तयामास हर्षात्स पञ्चाशत्कोटिनायिकाः ॥ गन्धर्वास्तत्र गायन्ति गन्धर्वः पुष्पदन्तकः ॥११॥ चित्रसेनश्च तत्रैव चित्रसेन सुतास्तथा ॥ मालिनीति च नाम्ना तु चित्रसेनस्य कामिनी ॥१२॥ मालिन्यां तु समुत्पन्नः

वाली नहीं है।। हे राजन्।। इस कारण इस व्रत को यत्न से करना चाहिये।।६।। हे राजशार्दूल! श्रेष्ठ पौराणिक कथा सुनिये। इसकी महिमा मैंने पद्म पुराण में कहा है।।७।। एक वार स्वर्गलोकमें इन्द्र राज्य कर रहा था और उस मनोहर स्थानमें देवता सुखपूर्वक वास करते थे ।। ८ ।। अमृतपान करनेमें तत्पर, अप्सराओं से सुसेवित था और पारिजात वृक्षोंसे शोभित वहां नन्दनवन था ।। ९ ।। जहां देवता अप्सराओंके साथ विहार करते हैं। हे राजन्! एकबार इन्द्र अपनी इच्छासे विहार कर रहा था ।।१०।। और बड़े हर्ष से पचास करोड़ नायिकाओंको नचा रहा था और पुष्पदंत आदि सब गंधर्व वहां गानकर रहे थे ।।११।। वहां चित्रसेन पुत्रों सहित और मालिनी नामकी चित्रसेनकी स्त्री भी थी ।।१२।। और मालिनीसे उत्पन्न पुष्पवान् नाम

पुष्पवानिति नामतः ॥ पुष्पदन्तस्य पुत्रो वै माल्यवान्नाम नामतः ॥१३॥ गन्धर्वी पुष्पवत्याख्या माल्यवत्यतिमोहिता ॥ कामस्य च शरैस्तीक्ष्णैर्विद्धांगी सा बभूव है ॥१४॥ तया भावैः कटाक्षैश्च माल्यवांश्च वशीकृतः ॥ लावण्यरूपसंपन्ना तस्या रूपं नृप शृणु ॥१५॥ बाहू तस्यास्तु कामेन कण्ठपाशौ कृताविव ॥ चन्द्रवद्वदनं तस्या नयने श्रवणायते ॥१६॥ कर्णौ तु शोभितौ तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम ॥ कंबुग्रीवायुता चैव दिव्याभरणभूषिता ॥१७॥ पीनोन्नतौ कुचौ तस्याः मुष्टिमात्रं च मध्यमम् ॥ नितम्बौ विपुलौ तस्या विस्तीर्णं जघनस्थलम् ॥१८॥ चरणौ शोभमानौ तौ रक्तोत्पलसमद्युती ॥ ईदृश्या पुष्पवत्या च माल्यवानतिमोहितः ॥ १९ ॥ शक्रस्य परितोषाय

का चित्रसेनका पुत्र तथा माल्यवान् नामक पुष्पदंतका पुत्र भी था ॥१३॥ पुष्पवान् गंधर्वकी कन्या पुष्पवती माल्यवान् को देखकर मोहित हो गई और कामके तीक्ष्ण-बाणों से उसका शरीर बिंध गया ॥ १४ ॥ उसके भावपूर्ण तिरछीचितवन से माल्यवान् वशी भूत हो गया। हे राजन्! रूप-लावण्य युक्त उसके सुंदर रूप को सुनिय ॥ १५ ॥ उसकी बाहें काम द्वारा निर्मित कण्ठ पाश तुल्य हैं, और चन्द्रमा के सदृश उसका सुंदर मुख है। कर्ण पर्यन्त बड़ी बड़ी उसकी आंखे हैं ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम! कुण्डलयुक्त सुंदर कान हैं,दिव्याभूषणों से भूषित शंखके समान उसका कण्ठ है ॥१७॥ कठोर और उभरे हुये कुचके युग हैं और बहुत ही पतली मुट्ठीभर कमर है और विशाल नितंबवाली है और जघनस्थल विस्तृत है ॥ १८ ॥ लाल रंग के कमलों के सदृश सुंदर चरणवाली उस पुष्पवती के सौन्दर्यको देखकर माल्यवन्त मोहित हो गया ॥१९॥ इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये वे दोनों

नृत्यार्थं तौ समागतौ ॥ गायमानौ च तौ तत्र ह्यप्सरोगणसंगतौ ॥२०॥ शुद्धगानं न गायेतां चित्तभ्रम समन्वितौ ॥ बद्धदृष्टी तथाऽन्योन्यं कामबाणवशं गतौ ॥२१॥ ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः ॥ तालकालक्रिया मानलोपाद्गीतावभुञ्जनात् ॥२२॥

चिन्तयित्वा तु मघवा ह्यवज्ञानं तथाऽऽत्मनः ॥ कुपितश्च तयोरित्थं शापंदास्यन्निदं जगौ ॥२३॥ धिग्वां पापरतौ मूढावाज्ञाभंगकरौ मम ॥ युवां पिशाचौ भवतां दम्पतीरूपधारिणौ ॥२४॥ मृत्युलोकमनुप्राप्तौभुञ्जानौ कर्मणःफलम् ॥ एवं मघवता शप्तावुभौ दुःखितमानसौ ॥२५॥ हिमवन्तमनुप्राप्ताविन्द्रशापविमोहितौ ॥ उभौ

नाचने आये और अप्सराओं के साथ मिलकर दोनों गाने लगे ॥२०॥ भ्रमित चित्त के कारण उनका जो गाना था वह शुद्ध न हुआ। कामके बाण से आहत वे परस्पर एक-दूसरे को देखते रहे ॥२१॥ इन्द्र उन दोनों के मनको परस्पर उत्कंठित जानकर ताल, काल और क्रियामानके लोपसे गीत का बिगड़ना समझ गये ॥२२॥ और अपना तिरस्कार जानकर उन दोनों पर क्रोधित होकर शाप देनेको उद्यत हो यह कहने लगे ॥ २३ ॥ मेरी आज्ञाभंग करने वाले तुम दोनों पापी और मूर्ख हो, तुम्हें धिक्कार है। स्त्रीपुरुषके रूप में तुम दोनों पिशाच हो जाओ ॥२४॥ और मृत्युलोकमें जाकर अपने कर्मके फलको भोगो। इस प्रकार इन्द्रद्वारा शापित वे दोनों मन में बहुत दुःखित हुये ॥ २५ ॥ इन्द्रके शापसे मोहित वे दोनों हिमालय पर्वतमें चले गये

पिशाचतां प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च ॥२६॥ सन्तप्तमानसौ तत्र महाकृच्छ्रगताबुभौ ॥ गन्धं रसं च स्पर्शं च न जानन्तौ विमोहितौ ॥२७॥ पीडयमानौ तु दाहेन देहपातकरेण च ॥ तौ न निद्रासुखं प्राप्तौ कर्मणा तेन पीडितौ ॥२८॥ परस्परं वादमानौ चेरतुर्गिरिगह्वरम् ॥ पीडयमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ ॥२९॥ दन्त-वर्षं प्रकुर्वाणौ रोमांचितवपुर्धरौ ॥ ऊचे पिशाचः शीतार्त्तः स्वपत्नीं तां पिशाचिकाम् ॥३०॥ किमावाभ्यां कृतं पापमत्यन्तं दुःखदायकम् ॥ येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृतकर्मणा ॥३१॥ नरकं दारुणं मन्ये पिशाचत्वं च गर्हितम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैव समाचरेत् ॥३२॥ इति चिन्तापरौ तत्र ह्यास्तां दुःखेन कर्शितौ ॥

और दोनों पिशाच बनकर दारुण दुःखपाने लग गये ॥ २६ ॥ दुःखित मनवाले वे दोनों बड़े कष्ट झेलने लगे और विमोहित भी हो गये। अब उन्हें गंध, रस, स्पर्श इत्यादिका ज्ञान न रहा ॥ २७ ॥ देहान्त करनेवाले कर्म को करने से पीड़ित वे दोनों निद्रा सुख से भी रहित हो गये ॥२८॥ परस्पर वाद-विवाद करते हुये वे दोनों घने वनमें विचरण करने लगे, वहां तुषार से उत्पन्न शीत से व्याकुल हो गये ॥२९॥ शीत से उनके दांत बजने लगे। और उन दोनों के शरीर के रोम खड़े हो गये। शीत से पीड़ित पिशाच अपनी स्त्री पिशाचिनी से कहने लगा ॥३०॥ अत्यन्त दुःख देनेवाला कौनसा पाप हम दोनोंने किया है, जिसके फल स्वरूप हमें पिशाचयोनि प्राप्त हुई ॥३१॥ निन्दित पिशाच योनिको घोर नरक मानकर सब भांति पापकर्म से दूर रहना

दैवयोगात्तयोः प्राप्ता माघस्यैकादशी सिता ॥३३॥
जया नाम्नीति विख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥ तस्मिन्दिने तु संप्राप्ते तावाहारविवर्जितौ ॥३४॥ आसाते तत्र नृपते जलपान विवर्जितौ ॥ न कृतौ जीवघातश्च न पत्रफलभक्षणम् ॥३५॥ अश्वत्थस्य समीपे तु पतितौ दुःखसंयुतौ ॥ रविरस्तं गतो राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः ॥३६॥ प्राप्ता चैव निशा घोरा दारुणा शीतकारिणी ॥ वेपमानौ तु तौ तत्र हिमेन च जडीकृतौ ॥३७॥ परस्परेण संलग्नौ गात्रयोर्भुजयोरपि ॥ न निद्रां न रतिं तत्र न तौ सौख्यमविन्दताम् ॥ ३८ ॥ एवं तौ राजशार्दूल शापेनेन्द्रस्य पीडितौ ॥ इत्थं तयोर्दुःखितयोर्निर्जगाम तदा निशा ॥३९॥ जयायास्तु व्रते चीर्णे रात्रौ जागरणे कृते ॥ तयोर्व्रतप्रभावेण यथा ह्यासीत्तथा शृणु ॥४०॥

चाहिये ।।३२।। इस प्रकार के विचारोंमें दोनों मग्न हो गये, दैवयोग से उन्हें माघ शुक्लपक्षकी एकादशी प्राप्त हुई ।। ३३ ।। जया नामसे विख्यात वह तिथि तिथियोंमें उत्तम है। उस दिन वे दोनों बिना आहार रहे ।।३४।। ह राजन् ! वे दोनों उस दिन किसी जीव का वध नहीं किये और पत्र, फल-जल कुछ न खाये ।।३५।। दुःखयुक्त हो वे दोनों पीपलके नीचे पड़े रहे। हे राजन् ! वैसेही पड़े हुये उन दोनों के सम्मुख सूर्य अस्त हो गये ।।३६।। ठंड लगने वाली कठोर घोर रात्रि में वे दोनों वहां कांपते रहे और ठंढ से जड़वत प्रतीत होने लगे ।।३७।। शीत के कारण वे परस्पर चिमटे हुये सारी रात सोये नहीं और न तो नींद उन्हें प्राप्त हुई तथा सुख भी न प्राप्त हुआ ।।३८।। हे राजशार्दूल! इस प्रकार वे इन्द्रके शापसे पीड़ित उस पीपल के नीचे शीत कारिणी रात्रि को बिताया ।।३९।। जयाके व्रतका जो प्रभाव पड़ा वह सुनिये

द्वादशीदिवसे प्राप्ते ताभ्यां चीर्णे जयाव्रते ॥ विष्णोः प्रभावान्नृपते पिशाचत्वं तयोर्गतम् ॥ ४१ ॥ पुष्पवती माल्यवांश्च पूर्वरूपौ बभूवतुः ॥ पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालंकारसंयुतौ ॥४२॥ विमानमधिरूढौताावप्सरोगणसेवितौ ॥ स्तूयमानौ तु गंधर्वैस्तुम्बुरुप्रमुखैस्तथा ॥४३॥ हावभावसमायुक्तौ गतौ नाके मनोरमे ॥ देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रणामं चक्रतुर्मुदा ॥ ४४ ॥ तथाविधौतुतौ दृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत् ॥ इन्द्र उवाच ॥ वदतं केन पुण्येन पिशाचत्वं विनिर्गतम् ॥४५॥ मम शापवशं प्राप्तौ के देवेन मोचितौ॥ माल्यवानुवाच॥ वासुदेवप्रसादेन जयायाः सुव्रतेन च ॥४६॥

पिशाचत्वं गतं स्वामिन् सत्यं भक्तिप्रसादतः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्युवाच सुरेश्वरः ॥४७॥ इन्द्र उवाच॥

।।४०।। जब वे जयाका व्रत कर गये तब हे राजन् ! विष्णुके प्रतापसे द्वादशीके दिन उनकी पिशाच योनि छूट गई ।।४१।। पुष्पवती और माल्यवान्को पहलेकाही रूप प्राप्त हो गया । पुरानी प्रीतियुक्त वे दोनों पूर्व अलंकारों से सुशोभित हो गये ।।४२।। विमानमें बैठे वे दोनों अप्सराओं से घिरे हुये तुंबुरु आदि गन्धर्वों द्वारा स्तूयमान ।।४३।। हाव-भाव से युक्त मनोहर स्वर्ग लोकमें गये और इन्द्रके सन्मुख जाकर आनंदसे प्रणाम किये ।।४४।। इस प्रकार उन दोनोंको देखकर इन्द्र विस्मित होकर बोले—कि, तुम दोनों यह बतलाओ कि, किस पुण्य से तुम्हारी पिशाचयोनि दूर हुई ।।४५।। मेरे द्वारा शापित तुम दोनों को किस देवताने शापमुक्त किया ! माल्यवान् बोला—कि वासुदेवके प्रसाद और जयाके व्रत करने से ।।४६।। हे स्वामी ! भक्तिके प्रसादसे हमारा पिशाचत्व दूर हुआ यह सत्य है । उसकी बात सुनकर इन्द्र फिर बोले

पवित्रौ पावनौ जातौ वन्दनीयौ ममापि च॥ हरिवासर कर्त्तारौ विष्णुभक्तिपरायणौ ॥४८॥ हरिभक्तिरता ये च शिवभक्तिरतास्तथा ॥ अस्माकमपि ते मर्त्याः पूज्या वंद्या न संशयः ॥४९॥ विहरस्व यथासौख्यं पुष्पवत्या सुरालये ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यो हरिवासरः ॥५०॥ जयाव्रतं तु राजेन्द्र ब्रह्महत्यापहारकम् ॥ सर्वदानानि दत्तानि यज्ञास्तेन कृता नृप ॥५१॥ सर्वतीर्थेषु स स्नातः कृतं येन जयाव्रतम् ॥ यःकरोति नरो भक्त्या श्रद्धायुक्ता जयाव्रतम् ॥५२॥ कल्पकोटिशतं यावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ॥५३॥ इति भविष्योत्तरपुराणे माघशुक्लैकादशीजयामाहात्म्यं समाप्तम् ॥६॥

॥४७॥ इन्द्र बोले–कि, हरिवासरके करनेवाले, विष्णुभक्तिमें परायण, स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करने वाले तुम दोनों हमारे भी पूज्य हो ॥४८॥ जो मनुष्य हरिभक्ति और शिवभक्तिमें रत हैं वे मनुष्य हमारे भी पूज्य और नमस्कार करने योग्य हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥४९॥ पुष्पवतीके साथ आनंदपूर्वक स्वर्ग में विहार करो। हे राजन्! इसीलिये हरिवासर व्रतको करना चाहिये ॥५०॥ हे राजेन्द्र! जयाका व्रत ब्रह्महत्या के पाप का नाश करनेवाला है। हे राजन्! उसने सब प्रकार के दान और यज्ञ कर लिये ॥५१॥ और उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया जिसने जया व्रत कर लिया। जो श्रद्धापूर्वक भक्ति से इस व्रतको करता है ॥५२॥ वह निश्चय ही करोड़ों कल्प तक वैकुण्ठ में निवास करता है हे राजन्! इस माहात्म्य के पढ़ने-सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥५३॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशी माहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां माघशुक्लैकादशीकथा समाप्ता॥६॥

अथ फाल्गुनकृष्णैकादशी कथा ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ वासुदेवप्रसादेनकथयस्व ममाग्रतः ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ कथयिष्यामि राजेंद्र कृष्णे या फाल्गुने भवेत् ॥ विजयेति च साप्रोक्ता कर्तृणां जयदासदा ॥२॥ तस्याश्च व्रतमाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ॥ नारदः परिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमलासनम् ॥३॥

फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजया नाम या तिथिः ॥ तस्या व्रतं सुरश्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ॥४॥ इति पृष्ठो नारदेन प्रत्युवाच पितामहः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ॥५॥ पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम् ॥ यन्न कस्यचिदाख्यातं मयैतद्विजयाव्रतम् ॥६॥ जयं ददाति विजया नृणां चैव न संशयः ॥ रामस्त-

अथ फाल्गुनकृष्णैकादशीकथा ।।अथ फाल्गुनकृष्णे या विजयैकादशी स्मृता ।।

तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां कुर्वे प्रदीपिकाम् ।।१।। युधिष्ठिर बोले–कि, फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो एकादशी आती है उसका क्या नाम है, हे वासुदेव ! कृपा करके मुझसे कहिये ।।१।। श्रीकृष्ण बोले–कि हे राजेंद्र ! फाल्गुनके कृष्णपक्ष की एकादशी का विजया नाम है व्रत करने वाले मनुष्योंको यह सदाजयप्रदान करनेवाली है, वह कथा मैं कहता हूँ ।।२।। उसके व्रतका माहात्म्य सब पापों को हरनेवाला है । एक समय नारदजी कमल से उत्पन्न ब्रह्मासे पूछने लगे ।। ३ ।। हे सुरश्रेष्ठ ! फाल्गुन कृष्ण पक्ष की विजया नामक जो एकादशी तिथि है, उसके व्रतका मुझे उपदेश करें ।।४।। नारद के इस प्रकार पूछने पर पितामह बोले हे नारद ! सुनो, वह बड़े-बड़े पापों को नष्ट

पोवनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश ॥७॥ न्यवसत्पञ्चवट्यां तु ससीतश्च सलक्ष्मणः॥ तत्रैव वसतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥८॥ रावणेन हृता भार्या सीतानाम्नी तपस्विनी॥ तेन दुःखेन रामोऽसौ मोहमभ्यागतस्तदा ॥९॥ भ्रमञ्जटायुषं तत्र ददर्श विगतायुषम्॥ कबन्धो निहतः पश्चाद्भ्रमतोऽरण्यमध्यतः॥१०॥ राज्ञे विज्ञाप्य तत्सर्वं सोऽपि मृत्युवशं गतः॥ सुग्रीवेण समं सख्यं रामस्य समजायत ॥११॥ वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि वै ॥ ततो हनुमता दृष्टा लंकोद्याने तु जानकी॥१२॥ रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम्॥ समेत्य रामेण पुनः सर्वं तत्र निवेदितम्॥ १३ ॥ अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यं चैव हनूमतः॥ सुग्रीवानुमतेनैव प्रस्थानं समरोचयत ॥

करनेवाली है ।।५।। यह पुरातन-पवित्र व्रत है और पापों का नाश करनेवाला है। इस विजया व्रत को मैंने किसी से न कहकर तुम्हें ही सुनाता हूँ ।।६।। यह विजया व्रत लोगों को निस्संदेह जय देता है। चौदह वर्षों के लिए रामचंद्र तपोवन में जाते हैं ।।७।। और सीता लक्ष्मण समेत पंचवटीमें निवास करते हुये वहां से महातमा रामजी की ।।८।। सीता नाम तपस्विनी स्त्री को रावणने, हरण कर लिया। उस दुःख से दुःखित श्री रामचंद्रजी ।।९।। उस वन में भ्रमण करते हुये मृतप्राय जटायु को देखा। आगे चलकर कबंध का वध करते हैं ।।१०।। रामचंद्रजीसे उसने संपूर्ण अपना वृत्तांत कहकर प्राण त्याग दिया और सुग्रीवके साथ रामचंद्रकी मित्रता हुई ।।११।। और रामचंद्रके लिये वानरी सेना इकट्ठी हुई तदनन्तर लंकाकी अशोक वाटिका में हनुमान्‌जी ने जानकीको देखा ।।१२।। रामजी द्वारा प्रदत्त चिन्ह स्वरूप मुद्रिका सीताजी को दिया, लंकादाहादि कार्य करके रामजी से

॥१४॥ स गत्वा वानरैः सार्धं तीरं नदनदीपतेः ॥ दृष्ट्वाऽब्धिं दुस्तरं रामो विस्मितोऽभूत्कपिप्रियः ॥१५॥ प्रोत्फुल्ललोचने भूत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ सौमित्रे केनपुण्येन तीर्यते वरुणालयः ॥१६॥ अगाधसलिलैः पूर्णो नक्रैर्मीनैः समाकुलः ॥ उपायं नैवपश्यामि येनायं सुतरो भवेत् ॥१७॥ लक्ष्मण उवाच ॥ आदिदेवस्त्व-मेवासि पुराणपुरुषोत्तमः बकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्त्तते द्वीपमध्यतः ॥१८॥ अस्मात्स्थानाद्योजनार्धमाश्रमस्त-स्य राघव ॥ अनेन दृष्ट्वा बहवो ब्रह्माणो रघुनंदन ॥१९॥ तं पृच्छ गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषिपुङ्गवम् ॥ इति वाक्यं ततःश्रुत्वा लक्ष्मणस्यातिशोभनम् ॥२०॥ जगाम राघवो द्रष्टुं बकदाल्भ्यं महामुनिम् ॥ प्रणनाम मुनिं

संपूर्ण वृत्तांत आकर कहा ॥ १३ ॥ तदनन्तर रामचंद्र जी हनुमान् से समाचार पाकर सुग्रीवकी सम्मतिसे लंकाको प्रस्थान किया ॥ १४ ॥ वानर जिनको प्यारे हैं ऐसे रामचंद्रजी वानरों समेत समुद्रके तटपर पहुँच कर दुस्तर समुद्र को देखकर आश्चर्य में पड़ गये ॥ १५ ॥ फिर उत्फुल्ल नेत्र होकर लक्ष्मणसे कहने लगे कि, हे सौमित्रे! अर्थात् सुमित्रापुत्र लक्ष्मण! कौन-सा पुण्य करके समुद्र पार किया जाय ॥१६॥ अगाध जलसे पूर्ण, मीन तथा भयानक मगरों से व्याप्त इस समुद्र को सरलता से पार होनेका कोई उपाय नहीं दिखाई पडता ॥१७॥ लक्ष्मण बोले–कि महाराज! आदि देव और पुराण पुरुषोत्तम आपही हो। इस द्वीपके मध्यमें बक दाल्भ्य नामके मुनि निवास करते हैं ॥१८॥ हे राघव! इस स्थानसे दो कोशपर उनका आश्रम है। हे रघुनन्दन! इस मुनिने बहुतसे ब्रह्मा देखे हैं ॥१९॥ हे राजेंद्र! वहां जाकर उन श्रेष्ठ मुनिसे उपाय पूछिये। इस प्रकार

मूर्ध्नां रामो विष्णुमिवामराः ॥ २१ ॥ मुनिर्ज्ञात्वा ततो रामं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥ उवाच स ऋषिस्तत्र कुतो रामस्तवागमः ॥२२॥ राम उवाच ॥ त्वत्प्रसादादहो विप्र वरुणालयसन्निधिम् ॥ आगतोऽत्र ससैन्योऽस्मि लंकां जेतुं सराक्षसाम् ॥२३॥ भवतश्चानुकूल्येन तीर्यतेऽब्धिर्यथा मया ॥ तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ ॥२४॥ मुनिरुवाच ॥ कथयिष्याम्यहं राम व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥ कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति ॥२५॥ लङ्कां जित्वा राक्षसांश्च दीर्घां कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा व्रतमेतत् समाचर ॥२६॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशी भवेत् ॥ तस्या व्रते कृते राम विजयस्ते भविष्यति ॥२७॥ निस्संशयं समुद्रं

लक्ष्मण के अतिसुंदर वचन सुनकर ॥ २० ॥ रामचंद्रजी बकदाल्भ्य मुनिके दर्शनके के लिए गये और दूसरे विष्णुके समान बैठे हुये मुनिको प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥ तदनन्तर मुनिवर रामको पुराणपुरुषोत्तम जानकर कहने लगे कि हे राम ! तुम्हारा कहां से आगमन हुआ ॥२२॥ रामचन्द्र बोले–कि हे विप्र ! आपके प्रसादसे मैं राक्षस समेत लंका जीतनेके लिए सेना सहित समुद्रके तट पर आया हुआ हूँ ॥२३॥ हे मुने ! आपकी अनुकूलतासे जिस प्रकार मैं समुद्र को पार कर सकूं, वह उपाय मुझे बतलाइये हे सुव्रत ! प्रसन्न होइये ॥ २४ ॥ मुनि बोले–कि, हे रामचन्द्र ! मैं सब व्रतोंसे उत्तम व्रत कहता। हूं जिसे करने से शीघ्रही तुम्हारी विजय होगी ॥ २५ ॥ और राक्षस समेत लंकाको जीतकर तुम बड़ी कीर्ति प्राप्त करोगे। एकाग्र मन से उस व्रत को करो ॥ २६ ॥ फाल्गुनके कृष्णपक्षमें विजया नाम एकादशी होती है। हे राम ! उस व्रतको करनेसे तुम्हारी

च तरिष्यसि सवानरः ॥ विधिश्च श्रूयतां राम व्रतस्यास्य फलप्रदः ॥२८॥ दशमीदिवसे प्राप्ते कुम्भमेकं च कारयेत् ॥ हैमं वा राजतं वापि ताम्रं वाप्यथ मृन्मयम् ॥ २९ ॥ स्थापयेच्छोभितं कुम्भं जल पूर्णं सपल्लवम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं नारायणं प्रभुम् ॥३०॥ एकादशीदिने प्राप्ते प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥ निश्चले स्थापिते कुम्भे गन्धमाल्यानुलेपिते ॥३१॥ दाडिमैर्नारिकेलैश्च पूजयेच्च विशेषतः ॥ सप्तधान्यान्यधस्तस्य यवानुपरि विन्यसेत् ॥३२॥ गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ कुम्भाग्रे तद्दिने राम नीयते भक्तिभावतः ॥३३॥ रात्रौ जागरणं चैव तस्याग्रे कारयेद्बुधः ॥ द्वादशे दिवसे प्राप्ते मार्तण्डस्योदये सति ॥३४॥ नीत्वा कुम्भं जलोद्देशे

विजय होगी ॥२७॥ और निस्संदेह वानर समेत समुद्रको पार करोगे, हे राम! अब उसकी विधि को सुनिये ॥२८॥ दशमीके दिन। सोने चांदी, तांबे अथवा मिट्टीका ही एक घट निर्माण करवाये ॥२९॥ उस घड़े को पत्तों और जल से पूर्ण कर उसकी स्थापना करे। उसके ऊपर प्रभु नारायण की एक स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करे ॥३०॥ और एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करके फिर चन्दन पुष्प आदि से पूजन कर उस कुंभको निश्चल स्थापित करे ॥३१॥ अनार तथा नारियलसे विशेष रूप से उसका पूजन करे और उसके नीचे सतनजा बिछाय और ऊपर सरवामें जौ भरकर रक्खे ॥३२॥ हे राम! गंध, धूप, दीप और नाना प्रकारके नैवेद्य से कुंभके ऊपर स्थापित नारायणकी मूर्ति की भक्तिपूर्वक पूजा कर ॥३३॥ और मूर्तिके सम्मुख रात्रिमें जागरण कर। द्वादशीके दिन सूर्यके उदय होने पर ॥३४॥ कुंभको नदी, झरने अथवा तालाबके जलमें स्थापित करके यथाविधि

नद्यां प्रस्रवणे तथा ॥ तडागे स्थापयित्वा वा पूजयित्वा यथाविधि ॥३५॥ दद्यात्सदैवतं कुम्भं ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ कुम्भेन सह राजेन्द्र महादानानि दापयेत् ॥३६॥ अनेन विधिना राम यूथपैस्सह संगतः॥ कुरु व्रतं प्रयत्नेन विजयस्ते भविष्यति ॥३७॥ इति श्रुत्वा वचो रामो यथोक्तमकरोद्व्रतम् ॥ कृते व्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः ॥३८॥ अनेन विधिना राजन् ये कुर्वन्ति नरा व्रतम् ॥ इह लोके जयस्तेषां परलोके सदा जयः ॥३९॥ एतस्मात्कारणात्पुत्र कर्तव्य विजयाव्रतम् ॥ पठनाच्छ्रवणात्तस्य वाजपेयफलं लभेत् ॥४०॥ इति श्रीस्कंदपुराणे फाल्गुनकृष्णैकादश्या विजयानाम्न्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥७॥

पूजन करे ॥ ३५ ॥ फिर उस कुंभको देव-प्रतिमा समेत वेदपाठी ब्राह्मणको दान करदे। हे राजेन्द्र ! कुम्भके साथ महादान भी करे ॥३६॥ हे राम ! इस प्रकार अपने यूथप और सेनाके अधिकारियों समेत यत्नपूर्वक व्रत करो तुम्हारी विजय होगी ॥३७॥ ऐसे वचनको सुनकर उस समय मुनिके कथनानुसार जया नामक एकादशीका व्रत किया गया और व्रतके प्रभाव से रामचंद्रजी विजयी हुये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो लोग इस प्रकार इस व्रत को करेंगे वे इस लोक और परलोकमें विजय प्राप्त करेंगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजीने नारदमुनिसे कहा कि, हे पुत्र ! इसीलिये इस व्रतको करना चाहिये। उसके पढ़ने अथवा श्रवण करने से वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीमत्पण्डितसुखतनयपण्डितसुतकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायामेकादशीमहात्म्यटीकायां दीपिकासमाख्यायां फाल्गुनकृष्णैकादशीकथा समाप्ता ॥७॥

अथ फाल्गुनशुक्लैकादशीकथा॥ मान्धातोवाच ॥ वद ब्रह्मन्महाभाग येन श्रेयो भवेन्मम॥ ईदृग्व्रतं ब्रह्मयोने तेऽनुकम्पाऽस्ति चेन्मयि ॥१॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सरहस्यं सेतिहासं व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥ कथयाम्यधुना तुभ्यं सर्वभूतफलप्रदम् ॥२॥ आमलक्या व्रतं राजन् महापातकनाशनम् ॥ मोक्षदं सर्वलोकानां गोसहस्रफलप्रदम् ॥३॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ यथा मुक्तिमनुप्राप्तो व्याधो हिंसासमन्वितः ॥४ ॥ वैदिशं नाम नगरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च समलंकृतम् ॥५॥ रुचिरं नृपशार्दूल ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ न नास्तिको न दुस्कृतिकस्तस्मिन् पुरवरे सदा ॥ ६ ॥

अथ फाल्गुनशुक्लैकादशीकथा ।। फाल्गुनस्य सिते पक्षे प्रसिद्धाऽऽमलकीति या ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां व्याख्यां कुर्वे सुदीपिकाम् ।।१।। मांधाता बोले–कि, हे ब्रह्मयोने ! अर्थात् ब्रह्माके पुत्र, हे महाभाग ! यदि हम पर आपकी कृपा है तो ऐसे व्रतको कहें जिससे हमारा कल्याण हो ।।१।। वसिष्ठ मुनि बोले–कि, सब फलोंके देनेवाले सब व्रतोंसे उत्तम रहस्य और इतिहास समेत व्रत मैं कहता हूँ ।।२।। हे राजन् ! आमलकी नामक एकादशीका व्रत महापातकका नाश करनेवाली, सब मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाली और सहस्र गोदानके फलको देनेवाली है ।।३।। अब मैं उस पुराने इतिहासका वर्णन करता हूँ जिसमें हिंसामें रत व्याधको भी मोक्ष प्राप्त हुआ है ।।४।। हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरा हुआ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चतुर्वर्णसे सुशोभित वैदिश नाम का नगर था ।।५।। हे नृपशार्दूल अर्थात् राजाओंमें श्रेष्ठ ! वह नगर बहुत सुंदर और वेदध्वनिसे शब्दायमान रहता था और उस पुरमें नास्तिक तथा कुचाली कोई मनुष्य नहीं रहता था ।।६।।

तत्र सोमान्वये राजा विख्यातश्शशबिन्दुकः ॥ राजा चैत्ररथो नाम धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥७॥ नागायुतबलः श्रीमान् शस्त्रशास्त्रार्थपारगः॥ तस्मिन् शासति धर्मज्ञे धर्मात्मनि धरां प्रभो॥८॥ कृपणो नैव कुत्रापि दृश्यते नैव निर्धनः ॥ सुकालः क्षेममारोग्यं तस्मिन् राज्यं प्रशासति ॥९॥ विष्णुभक्तिरता लोकास्तस्मिन् पुरवरे सदा ॥ हरपूजारताश्चैव राजाचापि विशेषतः॥१०॥ न कृष्णायां न शुक्लायां द्वादश्यां भुञ्जते जनाः॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य हरिभक्तिपरायणाः॥११॥ एवं संवत्सरा जग्मुर्बहवो राजसत्तम॥ जनस्य सौख्ययुक्तस्य हरिभक्तिरतस्य च॥१२॥ अथ कालेन संप्राप्ता द्वादशी पुण्यसंयुता ॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे नाम्ना ह्यामलकीस्मृता ॥ १३ ॥ तामवाप्य

उस पुरमें चन्द्रवंशी शशविन्दु नाम विख्यात राजा हुआ उसक वंशमें सत्यप्रतिज्ञ चैत्ररथ नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥७॥ उस राजामें दश हजार हाथियोंका बल, शस्त्र, शास्त्र-विद्यामें पारंगत वह लक्ष्मीवान था । हे प्रभो ! उसके शासन कालमें ॥८॥ कृपण और कुचाली मनुष्य नहीं दिखाई देते थे और उसके राज्यमें सदा सुकाल क्षेम और आरोग्यता विद्यमान रहती ॥९॥ सब लोग विष्णुभक्तिमें तथा शिवकी पूजामें रत रहते थे। वह स्वयं विशेष पूजामें तत्पर रहता ॥१०॥ शुक्लपक्षकी द्वादशीयुक्त एकादशीके दिन कोई भोजन नहीं करता था और अन्य सब धर्मोंको त्याग केवल हरि-भक्तिमें सभी तत्पर रहते ॥ ११ ॥ हे राजसत्तम ! हरि-भक्तिमें रत सुख युक्त सब लोगोंके इस प्रकार बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥१२॥ तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद फाल्गुनके शुक्लपक्षकी द्वादशीयुक्त

जनाः सर्वे बालकास्स्थविरा नृप ॥ नियमं चोपवासं च सर्वे चक्रुर्नरा विभो ॥१४॥ महाफलं व्रतं ज्ञात्वा स्नानं कृत्वा नदीजले ॥ तत्र देवालये राजा लोकयुक्तो महाप्रभुः ॥ १५ ॥ पूर्णकुम्भमवस्थाप्य छत्रोपानहसंयुतम् ॥ पंचरत्नसमायुक्तं दिव्यगंधादिवासितम् ॥१६॥ धात्रि धातृसमुद्भूते सर्वपातकनाशिनि ॥ आमलकि नमस्तुभ्यं गृहाणार्घोदकं मम ॥१७॥ धात्रि ब्रह्मस्वरूपाऽसि त्वं तु रामेण पूजिता ॥ प्रदक्षिणविधानेन सर्वपापहरा भव॥१८॥ तत्र जागरणं चक्रुर्जनाः सर्वे स्वभक्तितः ॥ एतस्मिन्नेव काले तु व्याधस्तत्र समागतः ॥१९॥ क्षुधाश्रमपरिश्रान्तो महाभारेण पीडितः ॥ कुटुम्बार्थं जीवघाती सर्वधर्मबहिस्कृतः ॥२०॥ जागरणं तत्र सोऽपश्यदामलक्यां क्षुधा-

आमलकी नामक एकादशी आई ।।१३।। हे राजन्! हे विभो! उस दिन बच्चे-बूढ़े सभी लोग नियमसे उस व्रतको किये ।। १४ ।। महाफलप्रद व्रतको जानकर नदीमें जाकर स्नान किया और वहां स्थित एक देवालयमें सबके साथ ही राजा गया ।।१५।। छत्र और उपानहयुक्त तथा पञ्चरत्नोंसे पूर्ण तथा दिव्य गंधसे सुगंधित घटको स्थापित किया ।।१६।। हे ब्रह्मासे उत्पन्न धात्री अर्थात् आमलके वृक्ष ! हे सब पापोंके नाश करनेवाली आमलकी ! तुम्हें नमस्कार है। मेरा अर्घ्य-जल ग्रहण करो ।।१७।। हे धात्री ! तुम ब्रह्मस्वरूप हो और भगवान् रामचंद्र द्वारा पूजित हो, मेरी प्रदक्षिणासे हमारे सब पापोंको दूर करो ।।१८।। वहां सब लोग भक्तिपूर्वक जागरण कर रहे थे उसी समय एक व्याध आया ।।१९।। वह भूंख और श्रमसे व्याकुल तथा भारी बोझसे पीड़ित था। कुटुंबके लिये जीवोंका बध करनेवाला

न्वितः ॥ दीपमालाकुलं दृष्ट्वा तत्रैव निषसाद सः ॥ २१ ॥ किमेतदिति संचिन्त्य प्राप्तो विस्मियतां भृशम् ॥ ददर्श कुम्भं तत्रस्थं देवं दामोदरं तथा ॥२२॥ ददर्शामलकीवृक्षं तत्रस्थांश्चैव दीपकान् ॥ वैष्णवं च तथाऽऽख्यानं शुश्राव पठतां नृणाम् ॥२३॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं शुश्राव क्षुधितोऽपि सन् ॥ जाग्रतस्तस्य सा रात्रिर्गता विस्मितचेतसः ॥२४॥ ततः प्रभातसमये विविशुर्नगरं जनः ॥ व्याधोऽपि गृहमागत्य बुभुजे प्रीतमानसः ॥२५॥ ततः कालेन महता व्याधः पंचत्वमागतः ॥ एकादश्याः प्रभावेण रात्रौ जागरणेन च ॥२६॥ राज्यं प्रपेदे सुमहच्चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ जयन्ती नाम नगरी तत्र राजा विदूरथः ॥२७॥ तस्मात्स तनयो जज्ञे

वह धर्मोंसे बहिष्कृत था ।।२०।। क्षुधासे पीड़ित वह वहां आमलकीका जागरण और दीपोंसे जग-मगाते उस स्थानको देखकर वहां जाकर बैठ गया ।।२१।। यह क्या है ऐसा सोचकर अत्यंत विस्मयको प्राप्त हुआ और वहां कुंभ देखा जिसके ऊपर दामोदर भगवान्को देखा ।।२२।। और आंवलेके वृक्षको तथा वहां रक्खे हुये दीपोंको देखा और लोगों द्वारा कही जा रही विष्णुकी कथाको सुना ।।२३।। और भूखे ही एकादशीके माहात्म्यको सुनता हुआ आश्चर्य युक्त हो रात-भर जागरण किया ।।२४।। तदनन्तर प्रातःकाल सब लोग नगरमें गये और वह भी घर जाकर प्रसन्न मनसे भोजन किया ।।२५।। अन्तमें जब उसकी मृत्यु हुई तो वह एकादशीके प्रभाव तथा रात्रिके जागरणसे ।।२६।। चतुरंगिणी सेनासे युक्त राज्यको प्राप्त किया । जयंती नाम नगरीका वह विदूरथ नामक राजा हुआ ।।२७।। उसे

नाम्ना वसुरथो बली ॥ चतुरङ्गबलोपेतो धनधान्यसमन्वितः ॥२८॥ दशायुतानि ग्रामाणां बुभुजे भयवर्जितः ॥ तेजसाऽऽदित्यसङ्काशः कांत्या चन्द्रसमप्रभः ॥ २९ ॥ पराक्रमे विष्णुसमः क्षमया पृथिवीसमः ॥ धार्मिकः सत्यवादी च विष्णुभक्तिपरायणः ॥३०॥

ब्रह्मज्ञः कर्मशीलश्च प्रजापालनतत्परः ॥ यजते विविधान्यज्ञान्स राजा परदर्पहा ॥३१॥ दानानि विविधान्येव प्रददाति च सर्वदा ॥ एकदा मृगयां यातो दैवान्मार्गपरिच्युतः ॥३२॥ न दिशो नैव विदिशो वेत्ति तत्र महीपतिः ॥ उपधाय च दोर्मूलमेकाकी गहने वने ॥३३॥ श्रांतश्च क्षुधितोऽत्यन्तं संविवेश महीपतिः ॥ अत्रान्तरे म्लेच्छगणःपर्वतान्तरवासभाक् ॥३४॥ आययौ तत्र यत्रास्ते राजा परबलार्दनः ॥ कृतवैरास्तु ते राज्ञा सर्वदे-

चतुरंगिणी सेना युक्त बलवान् धन धान्य संपन्न वसुरथ नामक पुत्र प्राप्त हुआ ॥२८॥ वह निर्भय दश हजार ग्रामोंका शासन करता हुआ सूर्यके समान तेज वाला तथा चन्द्रमाके समान शीतल कान्ति युक्त था ॥२९॥ और पराक्रममें विष्णुके समान तथा क्षमा करनेमें पृथ्वीके समान था और धर्मातमा, सत्यवक्ता तथा विष्णुभक्तिमें परायण रहता था ॥३०॥ ब्रह्मज्ञानी और कर्मशील वह राजा प्रजापालनमें तत्पर और शत्रुके गर्वको मिटानेवाला हुआ। नाना प्रकारके राजसूय आदि यज्ञ किये ॥३१॥ वह सदा नाना प्रकारके दान किया करता था। वह एक बार शिकार खेलने गया तो दैवयोगसे मार्ग भूल गया ॥ ३२ ॥ वहां उसे जब दिशा-विदिशाका ज्ञान न रहा तब वह अपनी दोनों बाहोंको सिरहना बनाकर उस वनमें अकेला ही विश्राम करने लगा ॥ ३३ ॥ अत्यन्त

वोपतापिताः ॥३५॥ परिवार्य ततस्तस्थू राजानं भूरिदक्षिणम् ॥ हन्यतां हन्यतां चायं पूर्ववैरविरुद्धधीः ३६॥ अनेन निहताः पूर्वं पितरो भ्रातरः सुताः ॥ पौत्राश्च भागिनेयाश्च मातुलाश्च निपातिताः ॥३७॥ निष्कासिताश्च स्वस्थानाद्विक्षिप्ताश्च दिशो दश ॥ एतावदुक्त्वा ते सर्वे तत्रैनं हंतुमुद्यताः ॥३८॥ पाशैश्च पट्टिशैः खड्गैर्बाणै-र्धनुषि संस्थितैः ॥ सर्वतोऽरिगणास्ते च राजानं हन्तुमुद्यताः ॥३९॥ सर्वाणि शस्त्राणि समाद्रवन्ति न वै शरीरे प्रविशंति तस्य॥ ते चापि सर्वे हतशस्त्रसंघा म्लेच्छा बभूवुर्गतदेहजीवाः ॥४०॥ पदापि चलितुं तत्र न शेकुस्ते-ऽरयो भृशम् ॥ शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुः सर्वेषां हतचेतसाम् ॥४१॥

थका हुआ वह राजा भूखा ही सो रहा था कि उसी समय पर्वतवासी म्लेच्छोंका समूह ।। ३४ ।। वहां आया जहां शत्रुके बलको नाश करनेवाला वह राजा पड़ा था। राजासे वैर करके वे सदा दुःखी हैं ।।३५।। तदनन्तर वे सब भूरिदक्षिण राजाको घेरकर खड़े हो गये। पुराने वैरसे विरुद्ध बुद्धि वाले वे सब 'राजाको मारो मारो' ऐसा कहने लगे ।। ३६ ।। पहिले इसने हमारे पिता, भाई पुत्र, पौत्र, भानजे, तथा मामा आदि सबको मार डाले हैं ।। ३७ ।। और अपने स्थानसे निकाले गये हम लोग दशों दिशाओंमें फैले हुये हैं इतना कहकर वे वहां पर राजाके मारनेके लिए उद्यत हो गये ।।३८।। पाश, पट्टिश, खड्ग और धनुष पर बाण चढ़ाये हुये वह शत्रु-समूह राजाको मारनेके लिये उद्यत हुआ ।।३९।। वे शस्त्र-प्रहार करते हैं किन्तु वे राजाके शरीरमें प्रवेश नहीं करते बल्कि नष्ट हो जाते हैं। ऐसा होने पर म्लेच्छ गण गत चेत अर्थात् निर्जीव-से हो गये ।।४०।। वे वहांसे एक पग-भर भी आगे चलनेमें समर्थ

दीनाबभूवुस्ते सर्वे यं ते हन्तुं समागताः ॥ एतस्मिनेव काले तु तस्य राज्ञः शरीरतः ॥४२॥ निःसृता प्रमदा ह्येका सर्वावयशोभना ॥ दिव्यगन्ध समायुक्ता दिव्याभरणभूषिता ॥४३॥ दिव्यमाल्यांबरधरा भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ सस्फुलिंगं च नेत्राभ्यां वमन्तं पावकं बहु ॥४४॥ चक्रोद्यतकरा चैव कालरात्रिरिवापरा ॥ अभ्यधावत संक्रुद्धा म्लेच्छानत्यन्तदुःखितान् ॥४५॥ निहताश्च यदा म्लेच्छास्ते विकर्मरतास्तया ॥ ततो राजा निबुद्धः सन् ददर्श महदद्भुतम् ॥४६॥ हतान् म्लेच्छगणान्दृष्ट्वा राजा हर्षमवाप सः ॥ इह केन हता म्लेच्छा अत्यन्तं वैरिणो मम ॥४७॥ केन चेदं महत्कर्म कृतमस्मद्धितार्थिना ॥ एतस्मिन्नेव काले तु वाग्गुवाचाशरीरिणी ॥४८॥ तं स्थितं नृपतिं दृष्ट्वा

न थे गत चेतन उन म्लेच्छ-समूहोंके सारे शस्त्र कुण्ठित हो गये ॥४१॥ जो राजाको मारने आये थे वे सब दीन हो गये। उसी समय उस राजाके शरीरसे ॥४२॥ सम्पूर्ण अंगोंसे शोभायमान एक स्त्री प्रगट हुई। वह दिव्यगन्धोंसे सुशोभित और दिव्य आभरणोंसे भूषित थी ॥४३॥ दिव्य माला तथा दिव्य वस्त्रोंको धारण किये हुये क्रोधसे उसकी भौंहं टेढ़ी हो रही थीं और नेत्रसे चिनगारियां और बहुतसी अग्नि उगल रही थी ॥४४॥ दूसरी काल रात्रिके समान क्रोधित हो हाथमें चक्र लेकर अति दुःखित म्लेच्छों पर टूट पड़ी ॥४५॥ जब अधम कर्म करनेवाले वे म्लेच्छ उसके द्वारा मारे गये तब राजाने जागकर इस अद्भुत कार्यको देखा ॥४६॥ राजा मलेच्छोंको मरा हुआ देखकर प्रसन्नतासे कहने लगा—कि, हमारे म्लेच्छ दुश्मनोंको किसने मारा ॥४७॥ हमारा हितैषी कौन है

निष्कामं विस्मयान्वितम्॥ शरणं केशवादन्योनास्तिकोऽपि द्वितीयकः॥४९॥ वनात्तस्मात्स कुशली समायातोऽपि भूमिभुक्॥ राज्यं चकार धर्मात्मा धरायां देवतेशवत्॥५०॥ वशिष्ठ उवाच॥ तस्मादामलकीं राजन् ये कुर्वंति नरोत्तमाः॥ ते यांति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा॥५१॥ इति श्रीब्रह्मांडपुराणे फाल्गुनशुक्लैकादश्यामलकी माहात्म्यं समाप्तम् ॥८॥

जिसने इस बड़े कार्यको किया। उसी समय आकाशवाणी हुई ।।४८।। विस्मययुक्त बैठे हुये उस राजाको देखकर आकाशवाणीमें सुनाई पड़ा कि, केशव भगवान्को छोड़कर दूसरा कोई शरण अर्थात् रक्षक नहीं है ।।४९।। उस वनसे कुशलपूर्वक घर आकर वह धर्मात्मा राजा पृथ्वी पर इन्द्रके समान राज्य करने लगा ।।५०।। वसिष्ठ मुनि बोले–कि, हे राजन्! जो उत्तम मनुष्य इस आमलकी व्रतको करते हैं वे विष्णुलोकको जाते हैं इसमें किसी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये ।।५१।। इति श्रीमतपण्डित परमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां फाल्गुनशुक्लैकादशीकथा समाप्ता ।।८।।

अथ चैत्रकृष्णैकादशी॥ युधिष्ठिर उवाच॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे श्रुता साऽऽमलकी मया॥ चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि पापमोचनिका व्रतम् ॥ यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥२॥ मान्धातोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया ॥ चैत्रमासासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥३॥ को विधिः किं फलं तस्याः कथयस्व प्रसादतः ॥ लोमश उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कामदा सिद्धिदा तथा ॥ कथा विचित्रा शुभदा पापहा धर्मदायिनी ॥४॥ पुरा चैत्ररथोद्देशेह्यप्सरोगणसेविते ॥ वसन्तसमये प्राप्ते पुष्पैराकुलिते वने ॥ ५ ॥ गन्धर्वकन्यास्तत्रैव रमंते सह किन्नरैः॥

अथ चैत्रकृष्णैकादशीकथा ।। मधुमास्यसिते पक्षे पापमोचनिकेति या ।। एकादशी भवेत्तस्या माहात्म्यं विवृणोम्यहम् ।।१।। युधिष्ठिर बोले–कि फाल्गुनके शुक्लपक्षकी आमलकी नामवाली एकादशीका माहात्म्य मैंने सुना । चैत्र महीनेके कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है, वह कहिये ।।१।। श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजेंद्र ! पापोंके नाश करनेवाली यह एकादशी है, जो चक्रवर्ती मान्धाता राजाके पूंछने पर लोमस ऋषिने कहा वही मैं तुमसे कहता हूँ ।। २ ।। मान्धाता बोले–कि, हे भगवन्! चैत्रके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है उसका क्या नाम है वह मैं लोगोंके हितार्थ सुनना चाहता हूँ ।।३।। उसकी विधि क्या है और फल क्या है वह आप प्रसन्नतापूर्वक कहें। लोमश ऋषि बोले–कि, हे राजन् ! कामनाको पूर्ण करनेवाली, सिद्धि देनेवाली, कल्याणकी देनेवाली पापोंका नाश करनेवाली और धर्मदायिनी जो विचित्र कथा है वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।। ४ ।। बसन्त ऋतुके आने पर विकसित पुष्पोंसे सुशोभित कुबेरके चैत्ररथ नामक

पाकशासन मुख्याश्च क्रीडन्ते च दिवौकसः ॥६॥ नापरं सुंदरं किंचिद्वनाच्चैत्ररथाद्वनम् ॥ तस्मिन्वने तु मुनयस्तपंति बहुलं तपः ॥७॥ सह देवैस्तु मघवा रमते मधुमाधवे ॥ एको मुनिवरस्तत्र मेधावी नाम नामतः ॥८॥ अप्सरास्तं मुनिवरं मोहनायोपचक्रमे ॥ मंजुघोषेति विख्याताभावं तस्य विचिन्वती ॥ ९ ॥ क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयादाश्रमसन्निधौ ॥ गायंती मधुरं साधु पीडयन्ती विपञ्चिकाम् ॥१०॥

गायन्तीं तामथालोक्य पुष्पचंदनवेष्टिताम् ॥ कामोऽपि विजयाकांक्षी शिवभक्तं मुनीश्वरम् ॥११॥ तस्याशरीरसंसर्गं शिववैरमनुस्मरन् ॥ कृत्वा भ्रुवोर्धनुः कोटी गुणं कृत्वा कटाक्षकम् ॥ १२ ॥ मार्गणौ नयने कृत्वा

वनमें अप्सराएं विहार करती हैं ॥५॥ गंधर्व-कन्यायें उस वनमें किन्नरोंके साथ विहार करती हैं। इन्द्र आदि देवता उसमें क्रीडा करते हैं ॥६॥ उस चैत्ररथ वनसे सुंदर कोई वन नहीं है, उसम बहुतसे मुनीश्वर तप कर रहे हैं ॥७॥ और देवताओं सहित इन्द्र चैत-वैशाखमें वहां विहार करता है। मेधावी नामक एक मुनि वहां रहते हैं ॥८॥ अप्सरायें उस मुनिवरके मोहित करनेका उपाय करती हैं उनमें मंजुघोषा नामसे विख्यात एक अप्सरा उस मुनिका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे ॥९॥ उनके भयसे आश्रमके समीप कोशभर की दूरी पर स्थित होकर मीठे स्वरसे मधुर स्वरमें गाती हुई वीणाको बजाने लगी ॥१०॥ तदनंतर फूल और चंदनसे सुशोभित उस अप्सराको गाती हुई देखकर काम भी शिवके भक्त मुनीश्वरको जीतनेकी इच्छा करने लगा ॥११॥ कामदेवने भी शिवके वैरको स्मरण करके उस शिवभक्त मुनिको काममें आसक्त करनेकी इच्छासे उस अप्सराकी भौंहको धनुष बनाकर उस पर

पक्षयुक्तौ यथाक्रमम्॥ कुचौ कृत्वा पटकुटीं विजयायोपसंस्थितः॥१३॥ मंजुघोषाऽभवत्तत्र कामस्येव वरूथिनी॥ मेधाविनं मुनिं दृष्ट्वा साऽपि कामेन पीडिता॥१४॥ यौवनोद्भिन्नदेहोऽसौ मेधाव्यतिविराजते॥ सितोपवीतसंवीतो दण्डी स्मर इवापरः॥१५॥ मेधावी वसति स्मासौ च्यवनस्याश्रमे शुभे॥ मंजुघोषा स्थिता तत्र दृष्ट्वा ते मुनिपुंगवम्॥१६॥ मदनस्य वशं प्राप्ता मंदं मंदमगायत॥ रणद्वलयसंयुक्ता शिंजन्नूपुरमेखला॥१७॥ गायन्तीं भावसंयुक्तां विलोक्य मुनिपुंगवः॥ मदनेन ससैन्येन नीतो मोहवशंबलात्॥१८॥ मंजुघोषा समागम्य मुनिं दृष्ट्वा तथाविधम्॥ हास्यभावकटाक्षैस्तु मोहयामास चांगना॥१९॥ अधः संस्थाप्य वीणां सा सस्वजे तं मुनीश्वरम्॥ वल्ली-

कटाक्षकी प्रत्यंचाको चढ़ाया ।।१२।। और दोनों नेत्रोंको पक्षयुत बाण बनाकर तथा कुच-युगको पटकुटी मानकर विजयके लिए उपस्थित हुआ ।।१३।। वहां मंजुघोषा ही कामकी सेनाके समान हुई और मेधावी मुनिको देखकर वह अप्सरा भी कामसे पीड़ित हो गई ।।१४।। यौवन सम्पन्न वह मेधावी मुनि अत्यंत सुशोभित हो रहे थे। और सफेद जनेऊ पहने हुये दूसरे कामदेवके समान शोभित वे दंडी मेधावी मुनि च्यवनऋषिके सुंदर आश्रममें निवास करते थे ।।१५।। मंजुघोषा उन मुनि श्रेष्ठको देखकर वहां ठहर गई ।।१६।। कंकड़ और नूपुरोंको बजाती हुई कामदेवके वशीभूत वह मंजुघोषा नामक अप्सरा वहां पर धीरे-धीरे गाने लगी ।।१७।। भावसमेत गाती हुई उस अप्सराको देखकर वह श्रेष्ठ मुनि सेनायुक्त कामदेव द्वारा वशमें कर लिया गया ।।१८।। मंजुघोषाने आकर मुनिको कामके वशमें देखकर हास्य-भाव एवं कटाक्ष द्वारा मोहित कर लिया ।।१९।। उसने वीणाको नीचे रखकर मुनिका इस प्रकार आलिंगन

वाकुलिता वृक्षं वातवेगेन वेपिता ॥२०॥ सोऽपि रेमेतया सार्द्धं मेधावी मुनिपुंगवः॥ तस्मिन्नेव वनोद्देशेदृष्ट्वा तद्देह-मुत्तमम् ॥२१॥ शिवतत्त्वं गतं तस्य कामतत्त्ववशं गतः॥ न निशां न दिनं सोऽपि रमञ्जानाति कामुकः ॥२२॥ बहुलश्च गतः कालोमुनेराचारलोपकः ॥ मंजुघोषा देवलोकगमनायोपचक्रमे ॥ २३ ॥ गच्छन्ती प्रत्युवाचाथ रमन्तं मुनिपुंगवम् ॥ आदेशो दीयतां मह्यं स्वधामगमनाय मे ॥२४॥ मेधाव्युवाच ॥ अद्यैव त्वं समायाता प्रदोषादौ वरानने ॥ यावत्प्रभातसंध्या स्यात्तावत्तिष्ठ ममांतिके ॥२५॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भयभीता बभूव सा ॥ पुनर्वैरमयामास तं मुनिं मुनिसत्तमम् ॥ २६ ॥ मुनेः शापभयाद्भीता बहुलान्परिवत्सरान् ॥ वर्षाणां

करने लगी जैसे पवन द्वारा कंपित लतायें वृक्षसे लिपट जाती हैं ।।२०।। वह मेधावी मुनि भी उस वनमें उसकी देहको उत्तम देखकर उसके साथ विहार करने लगे ।।२१।। वह मुनि कामतत्वके वशमें हो गया उसे शिवतत्व भूल गया। वह विहार करते हुये रात-दिनको ही भूल बैठा ।।२२।। मुनिके आचारको भ्रष्ट करनेवाली बहुत समय व्यतीत होने पर मंजुघोषा स्वर्गलोकमें जानेके लिए उद्यत हुई ।।२३।। रमण करते हुये उस मुनिसे कहने लगी कि, हे मुनि! मुझे अपने स्थानमें जानेकी आज्ञा दीजिये ।।२४।। तब मेधावी बोले–कि, हे वरानने! तू अभी तो संध्यासमय आई हो अतः जब तक प्रातःकाल हो तब तक तो मेरे समीप ठहरो ।।२५।। इस प्रकार उस मुनिके वचन सुनकर भयभीत हुई और उनके साथ आलिंगन करनेमें तत्पर हो गई ।।२६।। मुनिके

पंचपंचाशन्नवमासान् दिनत्रयम् ॥२७॥ सा रेमे मुनिना तेन निशार्द्धमिव चाभवत् ॥ सा च तं प्रत्युवाचाथ तस्मिन् काले गते मुनि॥ आदेशो दीयतां ब्रह्मन् गंतव्यं स्वगृहं मया ॥ २८ ॥ मेधाव्युवाच ॥ प्रातःकालोऽधुनैवास्ते श्रूयतां वचनं मम ॥ कुर्वे संध्यामहं यावत्तावत्त्वं वै स्थिरा भव॥२९॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा भयेन च समाकुला॥ स्मितं कृत्वा तु सा किञ्चित् प्रत्युवाच सुविस्मिता ॥३०॥ अप्सरा उवाच ॥ कियत्प्रमाणी विप्रेन्द्र तव संध्या गता न वा ॥ मयि प्रसादं कृत्वा तु गतः कालो विचार्यताम् ॥ ३१ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ स ध्यात्वा हृदिविप्रेंद्र प्रमाणमकरोत्तदा ॥३२॥

शापके भयसे डरी हुई वह अप्सरा बहुत वर्षों तक अर्थात् पचपन वर्ष नौ महीने और तीन दिन पर्यन्त ॥२७॥ वह मुनिके साथ विहार करती रही। यह समय मुनिके लिए आधी रातके समान ही हुआ। इतना समय बीत जाने पर वह मुनिसे फिर कहने लगी कि, आज्ञा दीजिये, मुझे अपने घर जाना है ॥२८॥ मेधावी मुनि बोले–कि, मेरे वचन सुनिये, प्रातःकाल तो अभी है जब तक मैं संध्या करूँ तब तक तो ठहरो ॥२९॥ मुनिके यह वचन सुनकर वह भयसे व्याकुल होकर पुनः मंद-मंद मुस्कराती हुई हँसकर मुनिसे कहने लगी ॥३०॥ अप्सरा बोली–कि, हे मुने! तुम्हारी संध्याका कितना प्रमाण है अभी हुई कि नहीं। मेरे ऊपर कृपा करके जरा बीते हुये समयको ध्यान करिये ॥ ३१ ॥ उसके इस प्रकार कहने पर आश्चर्यचकित वह मुनि अपने हृदयमें

समाश्च सप्तपंचाशद्गता मम तया सह ॥ नेत्राभ्यां विस्फुलिंगान्स मुंचमानोऽतिकोपनः ॥३३॥ कालरूपां च तां दृष्ट्वा तपसः क्षयकारिणीम् ॥ दुःखार्जितं मम तपो नीतं तदनया क्षयम् ॥३४॥ सकंपोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचाकुलेन्द्रियः ॥ स तां शशाप मेधावी त्वं पिशाची भवेति च ॥३५॥ धिक्त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये ॥ तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनता स्थिता ॥३६॥ उवाच वचनं सुभ्रूः प्रसादं वांछती मुनिम् ॥ प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र शापस्यानुग्रहं कुरु ॥ सतां संगो हि फलति वचोभिः सप्तमे पदे ॥ ३७ ॥ त्वया सह मम ब्रह्मन् गताः सुबह्वः समाः ॥ एतस्मात् कारणात्स्वामिन्प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ ३८॥ मुनिरुवाच ॥ शृणुमद्वचनं भद्रे

ध्यान करके समयका लेखा करने लगे ॥ ३२ ॥ कि, उसके साथ मेरे सत्तावन वर्ष व्यतीत हो गये, क्रोधके कारण आँखोंसे चिनगारी निकलने लगी ॥ ३३ ॥ तपका क्षय करनेवाली उस अप्सराको कालके समान देखने लगे कि, बड़े दुःखसे अर्जित किये हुये मेरे तपको इसने नष्ट कर दिया ॥३४॥ व्याकुल इंद्रियों वाला वह मेधावी मुनि काँपते ओठोंसे उसे श्राप दिया कि तू पिशाची हो जा ॥३५॥ अरे पापिनी ! अरे दुराचारिणी ! तुझे धिक्कार है अरे कुलटे ! पाप करनेवाली ! तुझे धिक्कार है। मुनि द्वारा शापित वह विनयशील बन स्थित हुई ॥ ३६ ॥ मुनिकी कृपा चाहनेवाली वह सुंदर भौंह वाली अप्सरा कहने लगी कि, हे विप्रेन्द्र ! प्रसन्न होइये और शापको अनुग्रह करें। सज्जनोंकी संगति वचनों द्वारा सातवें पदमें ही फल देनेवाली होती है ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे साथ मेरे तो बहुतसे वर्ष बीत गये अतः हे स्वामिन् ! मुझ पर प्रसन्न होइये ॥ ३८ ॥ मुनि बोले–कि, हे

शापानुग्रहकारणम् ।। किं करोमि त्वया पापे क्षयं नीतं महत्तपः ।। ३९ ।। चैत्रस्य कृष्णपक्षे या भवत्येकादशी शुभा ।। पापमोचनिका नाम सर्वपापक्षयंकरी ।।४०।। तस्या व्रते कृते सुभ्रु पिशाचत्वं प्रयास्यति ।। इत्युक्त्वा तां स मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ।। ४१ ।। तमागतं समालोक्य च्यवनः प्रत्युवाच ह ।। किमेतद्विहितं पुत्र त्वया पुण्यक्षयः कृतः ।।४२।। मेधाव्युवाच ।। पापं कृतं महत्तात रमिता चाप्सरा मया ।। प्रायश्चित्तं ब्रूहि तात येन पापक्षयो भवेत् ।।४३।।

च्यवन उवाच ।। चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी ।। यस्या व्रते कृते पुत्र पापराशिः क्षयं व्रजेत् ।।४४।।

भद्रे ! शापको अनुग्रह करनेवाले मेरे वचनको सुनो, मैं क्या करूँ, अरे पापिनी ! तूने मेरा महान् तप नष्ट कर दिया ।।३९।। चैत्रके कृष्णपक्षमें जो शुभ एकादशी होती है उसका नाम पापमोचनी है वह सब पापोंको दूर करती है ।। ४० ।। हे सुभ्रु ! उसको करनेसे तेरी पिशाचयोनि छूट जायगी ऐसा कहकर वह मेधावी पिताके आश्रमको चला गया ।। ४१ ।। उस मेधावीको आया हुआ देखकर च्यवन ऋषिने कहा कि, हे पुत्र ! तुमने यह क्या किया जो पुण्योंको नष्ट कर दिया ।।४२।। मेधावी बोले–कि, हे पिता ! मैंने बड़ा पाप किया जो एक अप्सराके साथ विहार किया । हे तात ! इस पाप नाशका प्रायश्चित्त बतलाइये ।।४३।। च्यवनऋषि बोले–कि, चैत्रके कृष्णपक्षमें पापमोचनी नामक एकादशी होती है । हे पुत्र ! उस व्रतके करनेसे समस्त पाप नष्ट

इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम् ॥ गतं पापं क्षयं तस्य पुण्ययुक्तो बभूव सः ॥ ४५ ॥ सोऽप्येव मंजु-घोषा च कृत्वा तद्व्रतमुत्तमम् ॥ पिशाचत्वविनिर्मुक्ता पापमोचनिकाव्रतात् ॥४६॥ दिव्यरूपधरा साऽपि गता नाकं वराऽप्सराः ॥ लोमश उवाच ॥ इत्थं भूतप्रभावं हि पापमोचनिकाव्रतात् ॥४७॥ पापमोचनिकां राजन्ये कुर्वंति च मानवाः ॥ तेषां पापं च यत्किंचित्तत्सर्वं क्षयमाव्रजेत् ॥ ४८ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफल-प्रदा ॥ ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापो गुरुतल्पगः ॥४९॥ व्रतस्य चास्य करणात्पापमुक्ता भवंति ते ॥ बहुपुण्यप्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम् ॥५०॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे चैत्रकृष्णे पापमोचनिकानामैकादशीमाहात्म्य समा-

हो जाते हैं ।।४४।। पिताके वचनानुसार उसने इस उत्तम व्रतको किया और उसके प्रभावसे पाप नष्ट हो गये तथा वह पुण्यवान हो गया ।।४५।। वह मंजुघोषा भी इस प्रकार इस उत्तम पापमोचनीके व्रतको करके पिशाचयोनिसे छूट गई ।। ४६ ।। वह श्रेष्ट अप्सरा दिव्यरूप धारण करके स्वर्गलोकको गई। लोमश बोले–कि, पापमोचनी एकादशीके व्रतका ऐसा प्रभाव है ।।४७।। हे राजन् ! जो मनुष्य या पापमोचनीके व्रतको करता है उनका जो भी पाप हो वह सब नष्ट हो जाता है ।। ४८ ।। पढ़ने और सुननेसे हजार गौओंके दानका फल होता है। ब्रह्महत्या, भ्रूणहा, सुरापी और गुरुतल्पगामी ।।४९।। इस व्रतके करनेसे सब पापोंसे मुक्ति पा जाते हैं। यह उत्तम व्रत बहुतसे पुण्योंको देता है ।। ५० ।। इतिश्रीमत्पंडितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशी-

त्तम् ॥९॥ अथ चैत्रशुक्लैकादशीकथा ॥ सूत उवाच॥ देवकीनन्दनं कृष्णं वसुदेवात्मजं हरिम् ॥ नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिराय कृष्णेन कथितानि महात्मना ॥ एकादशीमहात्म्यानि नानापापहराणि च ॥२॥

अष्टादश पुराणेभ्यो विविच्य सुमहात्मना ॥ चतुर्विंशतिसंख्यानि नानाख्यानैर्युतानि च ॥३॥ तानि वक्ष्यामि भो विप्राः शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वासुदेवनमस्तुभ्यं कथयस्वममाग्रतः ॥४॥ चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वैकमना राजन् कथामेतां पुरातनीम् ॥ ५ ॥ वसिष्ठो

माहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां चैत्रकृष्णैकादशीपापमोचनीकथा समाप्ता ॥९॥ अथ चैत्रशुक्लैकादशी कथा ॥ मधुमासस्य शुक्लै या कामदैकादशी भवेत् ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां रम्यां करोम्यहम् ॥१॥ सूतजी बोले–कि देवकीनंदन वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण (हरि) उनको नमस्कार करके मैं महापातकको नाश करनेवाले व्रतको कहता हूँ ॥ १ ॥ महात्मा श्रीकृष्ण द्वारा अनेकानेक पापोंको नष्ट करने वाली एकादशीका माहात्म्य युधिष्ठिरके लिये कहा गया है ॥२॥

उन अठारह महापुराणोंमे से छांट कर नाना प्रकारकी कथाओंसे युक्त चौबीस माहात्म्य कहे गये हैं ॥ ३ ॥ उन्हींको मैं कहता हूँ। हे ब्राह्मणो ! सावधान होकर सुनो, युधिष्ठिर बोले–कि, हे वासुदेव ! तुमको नमस्कार है, कृपया मुझे ॥४॥ चैत्रके शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम वर्णन कीजिये। श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजन् ! इस पुरानी कथाको तुम एकाग्र मनसे सुनो ॥५॥ वसिष्ठ मुनिने

यामकथयत्प्राग् दिलीपाय पृच्छते ॥ दिलीप उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतु मिच्छामि कथयस्व प्रसादतः ॥ ६ ॥ चैत्रमासे सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ साधु पृष्टं नृपश्रेष्ठ कथयामितवाग्रतः ॥७॥ एकादशी पुण्यतमा पापेन्धनदावानलः ॥ शृणु राजन् कथामेतां पापघ्नी पुत्रदायिनीम् ॥८॥ पुरा रत्नपुरे रम्ये हेमरत्नविभूषिते ॥ पुण्डरीकप्रमुखा नागा निवसंति मदोत्कटाः ॥९॥ तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं करोति च ॥ गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव ह्यप्सरोभिः सुसेव्यते ॥ १० ॥ वराऽप्सरा तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा ॥ उभौ रागेण संयुक्तौ दम्पती कामपीडितौ ॥११॥ रेमाते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते सदा ॥ ललितायास्तु हृदये पतिर्वसति

यह कथा महाराज दिलीपको सुनाया है। दिलीप बोले–कि, हे भगवन् ! मैं सुनना चाहता हूँ आप प्रसन्न होकर वर्णन करें ॥६॥ कि, चैत्रके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? वसिष्ठ बोले–कि, हे नृपश्रेष्ठ ! आपने अच्छा प्रश्न किया मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ७ ॥ यह एकादशी अति पवित्र हैं और पापरूपी ईंधनके लिये दावानल है। हे राजन् ! पापको नष्ट करनेवाली और पुत्रको देनेवाली इस कथाको सुनो ॥८॥ पहले मनोहर सुवर्ण और रत्नोंसे भूषित रत्नपुर नाम नगरमें मदसे उद्यत पुंडरीक नाम नाग रहता है। ऐसे श्रेष्ठ नागोंसे युक्त ॥९॥ उस पुरमें पुंडरीक नाम राजा राज्य करता हैं और वह नगर गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराओं द्वारा सेवित है ॥१०॥ ललिता नामक एक श्रेष्ठ अप्सरा और ललित नामक एक गंधर्व, ये दोनों स्त्री-पुरुष प्रीतियुक्त होकर कामसे पीड़ित हुये ॥ ११ ॥ धनधान्यसे युक्त अपने घरमें वे दोनों सदा विहार करते, ललिताके हृदयमें सदा पति निवास करता है

सर्वदा ॥१२॥ हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी॥ एकदा पुण्डरीकाद्याः क्रीडंति सदसि स्थिताः॥१३॥ गीतगानं प्रकुरुते ललितो दयितां विना॥ पदबंधे स्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन्॥१४॥मनोभावं विदित्त्वाऽस्य कर्कोटो नागसत्तमः॥ पदबन्धच्युतिं तस्य पुण्डरीके न्यवेदयत् ॥१५॥ शशाप ललितं तत्र मदनातुरचेतसम् ॥ राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः ॥ १६ ॥ यतः पत्नीवशो जातो गायमानो ममाग्रतः ॥ वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षोरूपः बभूव ह ॥१७॥ रौद्राननो विरूपाक्षो दृष्टमात्रो भयंकरः ॥ बाहू योजनविस्तीर्णौ मुखं कन्दर-सन्निभम् ॥१८॥ चन्द्रसूर्यनिभे नेत्रे ग्रीवा पर्वतसन्निभा ॥ नासारन्ध्रे तु विवरे अधरौ योजनार्धकौ ॥१९॥

॥१२॥ और ललितके मनमें सदा ललिता स्त्री बसती । एक बार पुंडरीक आदि गन्धर्व सभामें स्थित होकर क्रीडा कर रहे थे ॥१३॥ और वह ललित स्त्रीके विना उस समय गान कर रहा था किन्तु ललिताके विना उसकी जीभ ललिताकी यादमें पदबंधसे स्खलित हो गई ॥१४॥ नागोंमें कर्कोटक इसके भावको जानकर उसके पदबंधके बिगड़ने की बात पुंडरीकसे कह दिया ॥ १५ ॥ कामसे व्याकुल चित्त-वाले उस ललितको पुंडरीकने शाप दे दिया कि, हे दुर्बुद्धे ! तू कच्चे मांसको और पुरुषोंको खानेवाला राक्षस हो जा ॥१६॥ क्योंकि मेरे सन्मुख गाता हुआ तू स्त्रीके वश हो गया । हे राजद्र ! उसके वचनसे वह राक्षसरूप हो गया ॥१७॥ उसका मुख भयानक हो गया, नेत्र बिगड़ गये, देखनेहीसे भय लगे और चार कोश लम्बी बाह और बड़ा भयानक मुख कन्दराके समान हो गया ॥१८॥ सूर्य चन्द्रमा के समान नेत्र,

शरीरं तस्य राजेन्द्र उच्छ्रितं योजनाष्टकम् ॥ ईदृशौ राक्षसः सोऽभूद्भुंजानः कर्मणः फलम् ॥२०॥ ललिता तमथालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम्॥ चिन्तयामास मनसा दुःखेन महताऽर्दिता॥२१॥ किं करोमि क्व गच्छामि पतिः पापेन पीडितः ॥ इति सस्मृत्यमनसा न शर्म लभते तु सा ॥२२॥ चचार पतिना सार्द्धं ललिता गहने वने॥ बभ्राम विपिने दुर्गे कामरूपः स राक्षसः ॥२३॥ निर्घृणः पापनिरतो विरूपःपुरुषार्दकः ॥ न सुखं लभते रात्रौ न दिवा पापपीडितः॥२४॥ ललिता दुःखिताऽतीव पतिं दृष्ट्वा तथा विधम्॥ भ्रमन्ती तेन सार्धं सा रुदती गहने वने ॥२५॥ कदाचिदगमद्विंध्यशिखरे बहुकौतुके ॥ ऋष्यशृङ्गमुनेस्तत्र दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं शुभम् ॥ २६ ॥

ग्रीवा पर्वतके समान, नाकके छेद गुफाके समान और होंठ दो कोशकी लंबाईके हो गये ।। १९ ।। हे राजन् ! उसका शरीर आठ योजन अर्थात् बत्तीस कोश ऊँचा होगया अपने कर्मके फलको भोगता हुआ वह इस गतिको प्राप्त हुआ ।।२०।। तदनन्तर ललिता अपने पतिका विकृत स्वरूप देखकर बड़े दु:खसे पीडित हो मनमें चिन्ता करने लगी ।।२१।। क्या करूं कहां जाऊं। मेरा पति पापसे पीड़ित है ऐसी मनमें चिन्ता व्याप्त होनेसे वह शांतिसे दूर हो गई ।।२२।। वह ललिता पतिके साथ घने वनमें विचरण कर रही थी तथा कामरूप वह राक्षस भी घने वनमें भ्रमण करता रहा।।२३।।निर्दयी पापमें रत मनुष्योंको खानेवाला वह दुष्ट राक्षस रात-दिन सुखको न प्राप्त करता हुआ ।।२४।। ऐसे पतिको देखकर अति दु:खित ललिता रोती हुई उस वनमें घूम रही थी ।।२५।। एक समय अनेक कौतुकोंसे युक्त विन्ध्याचलके शिखर पर श्रृंगी ऋषि

शीघ्रं जगाम ललिता विनयावनता स्थिता ॥ प्रत्युवाच मुनिर्दृष्ट्वा का त्वं कस्य सुता शुभे ॥२७॥ किमर्थं हि समायात सत्यं वद ममाग्रतः ॥ ललितोवाच ॥ वीरधन्वेति गन्धर्वः सुता तस्य महात्मनः ॥२८॥ ललितां नाम मां विद्धि पत्यर्थमिह चागताम् ॥ भर्त्ता मे शापदोषेण राक्षसोऽभून्महामुने ॥२९॥ रौद्ररूपो दुराचारस्त्वं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम् ॥ सांप्रतं शाधि मां ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं वद प्रभो ॥ ३० ॥ येन पुण्येन विप्रेन्द्र राक्षसत्वाद्विमुच्यते ॥ ऋषिरुवाच ॥ चैत्रमासस्य रंभोरु शुक्लपक्षस्य सांप्रतम् ॥३१॥ कामदैकादशी नाम्नी या कृता कामदा नृणाम् ॥ कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् ॥३२॥ तस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम् ॥ दत्ते

के आश्रम पर पहुँची और देखने लगी ॥२६॥ ललिता उनके निकट शीघ्रही जाकर विनयसे नम्र होकर स्थित हुई और उसे देखकर मुनि बोले–कि, हे शुभे! तू कौन है और किसकी बेटी है ॥ २७ ॥ यहां क्यों आई है सत्य-सत्य कहो! तब ललिता बोली–कि, हे महाराज! वीरधन्वा नामक गंधर्व है उस महात्माकी मैं बेटी हूँ ॥ २८ ॥ ललिता मेरा नाम है मैं यहां पतिप्राप्तिके लिये आयी हूँ, हे महामुने! मेरा पति शापके कारण राक्षस हो गया हैं ॥ २९ ॥ उसके भयानकरूप दुराचार को देखकर मुझे सुख शांति नहीं है, हे प्रभो! अब मुझे प्रायश्चित्त का उपदेश दीजिये ॥३०॥ हे विप्रेन्द्र! जिस पुण्यसे राक्षसयोनिसे छूटे। ऋषि बोले–कि, हे रम्भोरु! चैत्रके शुक्लपक्षकी एकादशी इस समय आयी है ॥ ३१ ॥ इसका नाम कामदा है, जिस व्रत के करने से मनुष्य की कामना पूरी होती है हे भद्रे! उस व्रत को करो, मैं विधिपूर्वक कहता हूँ

पुण्यं क्षणात्तस्य शापदोषः प्रशाम्यति ॥३३॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं ललिता हर्षिताऽभवत् ॥ उपोष्यैकादशीं राजन् द्वादशादिवसे तदा ॥ ३४ ॥ विप्रस्यैव समीपे तु वासुदेवाग्रतः स्थिता ॥ वाक्यमूचे तु ललिता स्वपत्युस्तारणाय वै ॥ ३५ ॥ मया तु यद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम् ॥ तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता ॥३६॥ ललितावचनादेव वर्तमानोऽपि तत्क्षणे ॥ गतपापः स ललितो दिव्यदेहो बभूव ह ॥३७॥ राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्तो गन्धर्वतां पुनः ॥ हेमरत्न समाकीर्णो रेमे ललितया सह ॥३८॥ तौ विमानसमारूढौ पूर्वरूपाधिकावुभौ ॥ दम्पती चापि शोभेतां कामदायाः प्रभावतः ॥ ३९ ॥ इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा

॥३२॥ उस व्रत के पुण्य को तू अपने पतिको दे दे उस पुण्यके प्रभाव से क्षणमात्रमें ही उसका शाप दोष शांत हो जायगा ॥३३॥ मुनिके वचनको सुनकर ललिता हर्षित हुई। हे राजन्! एकादशीका व्रत करके द्वादशीके दिन ॥३४॥ ब्राह्मणके समीप स्थित होकर वासुदेवके सम्मुख अपने पतिके उद्धार के लिये ललिता कहने लगी ॥३५॥ कि, हे भगवन्! मैंने जो कामदा एकादशीका व्रत किया उसके पुण्यके प्रभावसे मेरे पति पिशाचयोनि से मुक्त हो जायें ॥३६॥ उस समय राक्षस देहको प्राप्त वह ललित नामक गन्धर्व पापरहित होकर दिव्य शरीर को प्राप्त हो गया ॥३७॥ उसका राक्षसत्व समाप्त हो गया और वह पुनः गंधर्व शरीर धारण कर रत्नों के आभूषणादि धारण करके ललिताके साथ विहार करने लगा ॥३८॥ वे दोनों स्त्री-

प्रयत्नतः ॥ लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ॥ ४० ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी ॥ नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि वाजपेयफलं लभेत् ॥४१॥ इति श्रीवाराहपुराणे चैत्रशुक्लकामदानामैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १० ॥

पुरुष कामदाके प्रभावसे पहिले से अधिक रूपवान् विमानमें बैठे हुये शोभाको प्राप्त कर रहे थे ।।३९।। हे नृपश्रेष्ठ । अतः इस व्रत को प्रयत्नसे करना चाहिये, संसार के कल्याणार्थ मैंने तुम्हें सुनाया ।।४०।। यह ब्रह्महत्या आदि पापों, और पिशाच योनिसे मुक्त करानेवाली है, त्रिलोकीमें इससे परे और व्रत नहीं है, पढ़ने और सुनने से' वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ।।४१।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां चैत्रशुक्लैकादशीकथा समाप्ता ।।१०।।

अथ वैशाखकृष्णैकादशीकथा॥ युधिष्ठिर उवाच॥ वैशाखस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्॥ महिमानं कथय मे वासुदेव नमोस्तु ते ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ सौभाग्यदायिनी राजन्निहलोके परत्र च ॥ वैशाखकृष्णपक्षे तु नाम्ना चैव वरूथिनी॥२॥ वरूथिन्या व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा॥ पापहानिश्च भवति सौभाग्यप्राप्तिरेव च ॥३॥ दुर्भगाऽपि करोत्येनां स्त्री सौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ लोकानां चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ४ ॥ सर्व-पापहरा नृणां गर्भदासनिकृन्तनी ॥ वरूथिन्या व्रते नैव मांधाता स्वर्गतिं गतः ॥ ५ ॥ धुंधुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा ॥ ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान् भवः ॥ ६ ॥ दशवर्षसहस्राणि

अथ वैशाखकृष्णैकादशी कथा ।। माधवस्याऽसिते पक्षे या च नाम्ना वरूथिनी ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां संरचयाम्यहम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले कि, हे वासुदेव ! वैशाखके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है उसका नाम और उसकी महिमा मुझे सुनायें, आपको नमस्कार है ।।१।। श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजन् ! इस लोक और परलोकमें सौभाग्यके देनेवाली जो वैशाखकी एकादशी है उसका नाम वरूथिनी है ।।२।। वरूथिनी व्रतको जो करते हैं वे सदैव सुखी रहते हैं, पाप रहित होकर सौभाग्यकी प्राप्ति करते हैं ।।३।। दुर्भगा स्त्री भी इस व्रतको करे तो वह सौभाग्यको प्राप्त करती है, यह सभी को भक्ति और मुक्ति देनेवाली है ।।४।। और मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं, वरूथिनी व्रत के करने से ही मांधाता स्वर्ग को प्राप्त किये ।।५।। इस प्रकार दूसरे धुन्धुमार आदि बहुतसे राजा पापों से तथा भगवान् शिव ब्रह्मकपालसे मुक्त हुये ।।६।। दश हजार वर्ष तक तप करने से

तपस्तप्स्यति यो नरः ॥ तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतादपि ॥७॥ श्रद्धावान्यस्तु कुरुते वरूथिन्या व्रतं नरः॥ वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च ॥८॥ पवित्रा पावनी ह्येषा महापातक नाशिनी॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा ह्येषा कर्तॄणां नृपसत्तम॥९॥ अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते॥ गजदानाद्भूमिदानं तिलदानं ततोऽधिकम् ॥१०॥ ततः सुवर्णदानं तु ह्यन्नदानं ततोऽधिकम् ॥ अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥११॥ पितृदेव-मनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते ॥ तत्समं कविभिः प्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम ॥१२॥ धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान्स्वयम्॥ प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते॥१३॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम्॥

मनुष्य जो फल प्राप्त करता है। वह वरूथिनी व्रत से ही मिलता है ।।७।। जो श्रद्धावान् मनुष्य वरूथिनीके व्रतको करता है वह पुरुष इस लोक और परलोकमें वांछित फलको प्राप्त करता है ।।८।। पवित्र और दूसरेको पावन करनेवाली यह वरूथिनी महापातकको नष्ट करती है, हे नृपसत्तम! व्रत करनेवाले मनुष्योंको भुक्ति-मुक्ति दोनों देती है ।।९।। हे नृप-श्रेष्ठ! घोडेके दानसे हाथीका दान विशेष है, गजके दानसे भूमि दान महत्वपूर्ण है । तिलोंका दान उससे भी अधिक है ।।१०।। उससे बढ़कर सुवर्णदान है और अन्नदान उससे भी महत्वपूर्ण है, इससे परे कोई दान न हुआ न होगा ।।११।। पितृ देवता और मनुष्य सब की तृप्ति अन्नसे होती है। हे नृपोत्तम! विद्वानोंने कन्यादान अन्नदानके समान माना है ।।१२।। और भगवान् स्वयं भी कहा है कि, गौ का दान उसके बराबर है, तथा इन कहे हुये सब दानोंसे विद्यादान श्रेष्ठ है ।।१३।। वरूथिनी व्रत को करके मनुष्य उस

कन्या वित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ॥१४॥ ते नरा नरके यान्ति यादवाभूतसंप्लवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ॥१५॥ यश्च गृह्णाति लोभेन कन्यां क्रीत्वा च तद्धनम् ॥ सोऽन्यजन्मनि राजेन्द्र ओतुर्भवति निश्चितम् ॥१६॥ कन्यां वित्तेन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलंकृताम् ॥ तत्पुण्यसंख्यां कर्तुं हि चित्रगुप्तो भवत्यलम् ॥१७॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥१८॥ शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ वैष्णवो व्रतकर्त्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥१९॥ द्यूतं क्रीडां च निद्रां च तांबूलं दन्तधावनम् ॥ परापवादं पैशुन्यं पतितैः सह भाषणम् ॥२०॥ क्रोधं चैवानृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ॥

फलको प्राप्त करता है । जो मनुष्य पापसे मोहित होकर कन्याके धन का उपयोग करते हैं ।।१४।। वे महाप्रलय तक नरक में वास करते हैं अतः सर्वप्रकारेण कन्याका धन त्याज्य समझे ।।१५।। जो लोभ वश कन्या बेचकर धन लेते हैं वे निश्चय ही दूसरे जन्ममें बिलाव होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।।१६।। जो यथा शक्ति आभूषण और धनयुक्त कन्या का दान करते हैं उनके पुण्यकी संख्या करने के लिये चित्रगुप्त भी समर्थ नहीं है ।।१७।। उस फलको मनुष्य वरूथिनी एकादशीके व्रत करनेसे प्राप्त करता है, कांसेके पात्रमें न खाय १, मांस २, मसूरकी दाल ३, चना ४, कोदों ५, ।। १८ ।। शाक ६, शहद ७, पराया अन्न ८, दूसरी वार भोजन ९ और स्त्रीसंग १० व्रतकरनेवाले वैष्णव दशमीके दिन ये ऊपर कही हुई दश वस्तुओं का त्याग करे । ।। १९ ।। जुवा खेलना १, सोना २, पान ३, दंतून ४, पर-निंदा ५, चुगली ६, पतितोंके साथ बात करना ७, ।।२०।। क्रोध ८, और झूँठी बात कहना ९, इन नव बातों से एकादशीके दिन दूर रहे ।

कांस्यं मांसं मसूरांश्च क्षौद्रं वितथभाषणम् ॥२१॥ व्यायामं च प्रयासं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ क्षारं तैलं परान्नं च द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥२२॥ अनेन विधिना राजन्विहितायैर्वरूथिनी ॥ सर्वपापक्षयं कृत्वा दद्याद्यान्तेऽक्षयां गतिम् ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः ॥ क्षपारितनयाद्भीतैर्नरदेव वरूथिनी ॥ २४ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२५॥ इति श्रीभविष्यपुराणे वैशाखकृष्णवरूथिन्येकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ११ ॥

कांसेके पात्रमें भोजन १, मांस २, मसूर ३, शहद ४, झूठ बोलना ५, ॥२१॥ व्यायाम ६, श्रम ७, दूसरीबार भोजन ८, स्त्रीसंग ९ क्षार कहिये नोन आदि १०, तेल ११ और पराया अन्न १२, इन बारह वस्तुओंको द्वादशीके दिन त्याग दे ॥ २२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार से जिन्होंने वरूथिनी व्रत को किया उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यह वरूथिनी अंतमें अक्षय गतिको देती है ॥२३॥ अतः पापों और क्षपारि, अर्थात् सूर्य के पुत्र यमराज से डरता हुआ मनुष्य इनके भय से मुक्त होनेके लिये, हे राजन्! इस व्रत को करे ॥२४॥ हे राजन्! इसके पढने और सुनने से सहस्र गौ के दान का फल प्राप्त होता है और वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२५॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकदशीमाहात्म्य टीकायां दीपिकासमाख्यायां वैशाखकृष्णपक्षस्य वरूथिन्येकादशीकथा समाप्ता ॥११॥

अथ वैशाखशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वैशाखशुक्लपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥ किं फलं को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयामिकथामेतां शृणु त्वं धर्मनन्दन ॥ वसिष्ठो यामकथयत्पुरा रामाय पृच्छते ॥२॥ राम उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ सर्वपापक्षय-करं सर्वदुःखनिकृन्तनम् ॥३॥ मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरहजानि वै ॥ ततोऽहं भयभीतोऽस्मि पृच्छामि त्वां महामुने ॥४॥ वसिष्ठ उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकी मतिः ॥ त्वन्नामग्रहणेनैव पूतो भवति मानवः ॥५॥ तथापि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥ पवित्रं पावनानां च व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ६ ॥

अथ वैशाखशुक्लैकादशीकथा ।। अथ माघशुक्ल या मोहिन्येकादशी स्मृता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां सम्यक् तनोम्यहम् ।।१।। युधिष्ठिर बोले–वैशाखके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है उसका नाम, उसका फल और उसकी विधि क्या है। हे जनार्दन ! वह मुझसे कहिये ।।१।। श्रीकृष्ण बोले–कि; हे धर्मपुत्र ! मैं इस कथाको कहता हूँ तुम मन लगाकर सुनो। रामचंद्रजीके पूंछने पर वसिष्ठजी ने जो उन्हें सुनाया ।।२।। रामचंद्र बोलेकि, हे भगवन् ! सब पापोंको क्षय करने वाला, दुःखनाशक और सब व्रतोंमें उत्तम जो व्रत है उसे मैं सुनना चाहता हूँ ।।३।। मैंने निश्चय ही सीताके विरहसे उत्पन्न दुःख भोग चुका हूँ और उससे मैं भयभीत हूँ। हे महामुने ! कृपापूर्वक कहें ।।४।। वसिष्ठ बोले–कि, हे राम ! तुमने अच्छा प्रश्न किया और तुम्हारी नैष्ठिकी मति है। तुम्हारे नाम मात्र के ग्रहण करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है ।।५।। तो भी संसार के हित के लिए

वैशाखस्य सिते पक्षे द्वादशी राम या भवेत् ॥ मोहिनी नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा ॥७॥ मोहजालात्प्रमुच्येत पातकानां समूहतः ॥ अस्या व्रतप्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥८॥ अतस्तु कारणाद्राम कर्त्तव्यैषा भवादृशैः॥ पातकानां क्षयकरी महादुःखविनाशिनी ॥९॥ शृणुष्वैकमना राम कथां पुण्यप्रदां शुभाम् ॥ अस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥१०॥

सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा॥ द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै ॥११॥ सोमवंशोद्भवो राम धृतिमान्सत्यसंगरः ॥ तत्र वैश्यो निवसति धनधान्यसमृद्धिमान् ॥१२॥ धनपाल इति ख्यातः पुण्यकर्म-

ब्रह्मादि देवताओं को भी पवित्र करने वाले सब व्रतोंमें श्रेष्ठ व्रत को कहता हूँ ॥६॥ हे राम वैशाख शुक्लपक्षमें द्वादशीयुक्त जो एकादशी होती है वह मोहिनी नामसे विख्यात और संपूर्ण पापोंको नष्ट करने वाली है ॥७॥ इस व्रतके प्रभाव से मनुष्य मोहजाल से और पापों से छूट जाता है मैं सत्य कहता हूँ ॥८॥ हे राम ! अतः यह तुम सरीखे मनुष्यों को करनी चाहिये। यह पापोंको क्षय करती है और महादुःखकी नाश करनेवाली है ॥९॥ हे राम ! पुण्यको देने वाली इस शुभ कथाको एकाग्रमन से सुनो, इसके श्रवणमात्रहीसे महापाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ सरस्वती नदीके तट पर एक भद्रावती नामक पुरी है उसमें द्युतिमान् नाम राजा राज्य करता है ॥११॥ हे राम ! चंद्रवंशमें उत्पन्न वह द्युतिमान् राजा सत्यप्रतिज्ञावाला है। वहां धन-धान्य से युक्त समृद्धिशाली एक वैश्य निवास करता है ॥१२॥ धनपाल नाम वाला वह धर्मके कार्य में सदैव संलग्न रहता है

प्रवर्तकः ॥ प्रपासत्राद्यायतनतडागारामकारकः ॥ १३ ॥ विष्णुभक्तिपरः शांतिस्तस्यासन्पञ्च पुत्रकाः सुमना द्युतिमांश्चैव मेधावी सुकृती तथा ॥१४॥ पञ्चमो धृष्टबुद्धिश्च महापापरतः सदा ॥ वारस्त्रीसंगनिरतो विटगोष्ठी विशारदः ॥१५॥ द्यूतादिव्यसनासक्तः परस्त्रीरतिलालसः॥ न देवान्नातिथीन्वृद्धान् पितृंश्चैव द्विजानपि ॥१६॥ अन्यायकर्त्ता दुष्टात्मा पितुर्द्रव्यक्षयंकरः ॥ अभक्ष्यभक्षकः पापः सुरापानरतः सदा ॥१७॥ वेश्याकण्ठक्षिप्तबाहुर्भ्रमन् भ्रष्टश्चतुष्प्रथे ॥ पित्रा निष्कासितोगेहात्परित्यक्तश्चबान्धवैः ॥१८॥ स्वदेहभूषणान्येव क्षयं नीतानि तेन वै ॥ गणिकाभिः परित्यक्तो निन्दितश्च धनक्षयात् ॥१९॥ ततश्चिंतापरो जातो वस्त्रहीनः क्षुधार्दितः ॥ किं

और प्याऊं, यज्ञशाला आदि तथा तालाब बगीचा आदिको बनवानेवाला है ।।१३।। विष्णुभक्ति में रत शांतस्वरूप उस वैश्य के पांच पुत्र उत्पन्न हुये सुमना १, ुतिमान् २, मेधावी ३, तथा सुकृती ४ ।।१४।। और पांचवां महापापमें सदा रत रहनेवाला धृष्टबुद्धि था। वह वेश्याके संगमें रत रहता और दुष्टों की गोष्ठीमें चतुर था ।।१५।। जुवा आदि व्यसनोंमें आसक्त, पराई स्त्रीके भोगमें लंपट और देवता, अतिथि, वृद्ध, पितर तथा ब्राह्मणोंको न मानने वाला था ।।१६।। अन्याय करनेवाला वह दुष्टात्मा पिताके द्रव्यको नष्ट करता, अभक्ष्य वस्तुका भक्षण और सदा म पान करता रहे ।।१७।। वेश्याके गलेमें बाँह डालकर चौराहे पर भ्रमण करता हुआ पिता द्वारा जब देखा गया तब घर से निकाल दिया गया और भाइयोंने भी त्याग दिया। ।।१८।। तदनन्तर वह अपने शरीर के आभूषणों को बेचकर खर्च करने लगा, सबकी निन्दा का पात्र बन गया ।। १९ ।। तब

करोमि क्व गच्छामि केनोपायेन जीव्यते ॥२०॥ तस्करत्वं समारब्धं तत्रैवनगरे पुनः ॥ गृहीतो राजपुरुषैर्मुक्तश्च पितृगौरवात् ॥२१॥ पुनर्बद्धः पुनर्मुक्तः पुनर्मुक्तः ससंभ्रमैः ॥ धृष्टबुद्धिर्दुराचारो निबद्धो निगडैर्दृढैः ॥२२॥ कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः ॥ न स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देशगोचरे ॥२३॥ एवमुक्त्वा ततो राज्ञा मोचितो दृढबन्धनात् ॥ निर्जगाम भयात्तस्य गतोऽसौ गहनं वनम् ॥२४॥ क्षुत्तृषापीडितश्चायमितश्चेतश्च धावति ॥ सिंहवन्निजघानाऽसौ मृगसूकरचित्तलान् ॥ २५ ॥ आमिषाहारनिरतो वनेतिष्ठति सर्वदा ॥ करे शरासनं कृत्वा निषंगं पृष्ठसन्ततम् ॥२६॥ अरण्यचारिणो हन्ति पक्षिणश्च चतुष्पदान् ॥ चकोरांश्च मयूरांश्च

वस्त्रहीन, भूख से पीड़ित अति दु:खित होकर वह अपने मन में सोचने लगा कि, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ कैसे जीऊँ ॥ २० ॥ फिर उस नगरमें वह चोरी करने लगा तब सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया और बाद में राजाके गौरवसे छोड़ दिया गया ॥२१॥ बार-बार पकड़ा और बांधा जाने पर परेशान होकर राजाने उसे मजबूत हथकड़ी-बेड़ीमें बंधवाकर अपने निकट मंगवाया ॥ २२ ॥ और कोडों से खूब मरम्मत करके उससे कहा कि अरे दुष्ट दुराचारी! तू हमारे देशमें मत रह ॥ २३ ॥ फिर ऐसा कहकर राजाने उसे मुक्त कर दिया। राजा के भयसे वह वहां से निकलकर बड़े घने बनमें चला गया ॥२४॥ भूख यासते दु:खी वह उस वनमें इधर-उधर भ्रमण करता हुआ सिंहके समान मृग और शूकरों को तथा चीतों को मारने लगा ॥ २५ ॥ सदा मांस भक्षण करता और वनम निवास करता और हाथमें धनुष बाण लिए, एवं कमर में तूणीर बांधे उस वन में ही सदैव भ्रमण

कङ्कांस्तित्तिरिमूषकान् ॥२७॥ एतानन्यान्हन्ति नित्यं धृष्टधीर्निर्गतघृणः ॥ पूर्वजन्मकृतैः पापैर्निमग्नः पापकर्दमे ॥२८॥ दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्तयन्सोऽप्यहर्निशम् ॥ कौण्डिन्यस्याश्रमपदं प्राप्तः पुण्यवशात्क्वचित् ॥ ॥२९॥ माधवे मासि जाह्नव्यां कृतस्नानं तपोधनम् ॥ आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः ॥ ३० ॥ तद्वस्त्रबिंदुस्पर्शेन गतपाप्मा हताशुभः ॥ कौण्डिन्यस्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृतांजलिः ॥३१॥ धृष्टबुद्धिरुवाच ॥ प्रायश्चित्तं वद ब्रह्मन् विना यत्नेन यद्भवेत् ॥ आजन्मकृतपापस्य नास्ति वित्त ममाधुना ॥ ३२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणुष्वैकमना भूत्वा येन पापक्षयस्तव ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे मोहिनी नाम नामतः ॥ ३३ ॥

करता रहता ॥२६॥ और वन विचरण करनेवाले पक्षी और पशुओं तथा चकोर, मोर, कंक, तीतर और चूहे आदि का वध करता ॥२७॥ क्रूरस्वभाववाला वह धृष्टबुद्धि इन जीवोंका तथा अन्योंका नित्य वध करता, पूर्वजन्म के कर्मवश वह पाप-पंक में फँस गया ॥ २८ ॥ दुःख और शोकसे युक्त वह रात दिन चिन्तामें मग्न रहता। फिर कभी पुण्य वश वह कौण्डिन्यऋषिके आश्रममें जा पहुँचा ॥२९॥ वैशाखके महीनेमें गंगा स्नान करनेवाले उस ऋषिके समीप शोक से पीड़ित वह धृष्टबुद्धि जब पहुँचा ॥३०॥ तो उनके वस्त्र से गिरे हुये जल-बिन्दु के स्पर्श से पाप रहित होकर वह कौंडिन्य ऋषि के सन्मुख हाथ जोड़कर कहने लगा ॥ ३१ ॥ धृष्टबुद्धि बोला कि, हे ब्रह्मन्! ऐसा प्रायश्चित्त बताओ जो यत्नके विनाही हो जाय। क्योंकि इस समय प्रायश्चित्त के योग्य मेरे पास धन नहीं है। जन्मसे ही मैं पापम रत रहा हूँ ॥३२॥ ऋषि बोले–कि जिससे तेरे पाप नष्ट होंगे वह तू एकाग्रचित्त से

एकादशीव्रतं तस्मात्कुरु मद्वाक्यनोदितः ॥ मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं नयति देहिनाम् ॥३४॥ बहुजन्मार्जितान्येषा मोहिनी समुपोषिता ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा धृष्टबुद्धिर्हसन् हृदि ॥३५॥ व्रतं चकार विधिवत्कौण्डिन्यस्योपदेशतः ॥ कृते व्रते नृपश्रेष्ठ हतपापो बभूव सः ॥ ३६ ॥ दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः ॥ जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥३७॥ इतीदृशं रामचन्द्र तमोमोहनिकृन्तनम् ॥ नातः परतरं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥३८॥ यज्ञादितीर्थदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥३९॥ इतिश्रीकूर्मपुराणे वैशाखशुक्लमोहिन्येकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥१२॥

सुन ! वैशाखके शुक्लपक्षमें मोहिनी नामक एकादशी होती है ।। ३३ ।। वह व्रत तू मेरे बचन मानकर करो । वह एकादशी सुमेरुपर्वतके समान बड़े-बड़े पापों को भी नष्ट करने वाली है ।।३४।। यह मोहिनी व्रत अनेक जन्मके पाप क्षीण कर देती है, मुनिके यह बचन सुनकर वह धृष्टबुद्धि मनमें अति प्रसन्न हो गया ।। ३५ ।। कौंडिन्यके उपदेशसे विधिवत् व्रतको किया । हे नृपश्रेष्ठ ! वह व्रतके करनेसे पाप रहित हो गया ।। ३६ ।। तदनन्तर दिव्यदेह धारणकर गरुडपर बैठकर सब प्रकार के उपद्रवों से रहित विष्णु लोक में गया ।।३७।। हे रामचंद्र ! तम और मोहको दूर करनेवाला यह व्रत है। चराचर त्रैलोक्यमें इससे श्रेष्ठ दूसरा व्रत नहीं है ।।३८।। यज्ञादि एवं तीर्थ-दान इसकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। हे राजन् ! पढ़ने और सुनने से हजार गोदानका फल प्राप्त होता है ।। ३९ ।। इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां वैशाखशुक्लैकादशीकथा सम्पूर्णा ।।१२।।

अथज्येष्ठकृष्णैकादशीकथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।। ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ।। श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं तद्वदस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन् लोकानां हितकाम्यया ॥ बहुपुण्यप्रदा ह्येषा महापातक नाशिनी ॥ २ ॥ अपरा नाम राजेन्द्र अपारफलदायिनी ॥ लोके प्रसिद्धतां याति अपरां यस्तु सेवते ॥ ३ ॥ ब्रह्महत्याभिभूतोऽपि गोत्रहा भ्रूणहा तथा ।। परापवादी च परस्त्रीरसिकोऽपि च ॥ ४ ॥ अपरासेवनाद्राजन् विपाप्मा भवति ध्रुवम् ॥ कूटसाक्ष्यं मानकूटं तुलाकूटं करोति यः ॥ ५ ॥ कूटवेदं पठेद्विप्रः कूटशास्त्रं करोति च ।। ज्योतिषी कूटगणकः कूटायुर्वेदको भिषक् ॥ ६ ॥ कूटसाक्षिसमा ह्येते विज्ञेया नरकौकसः ।। अपरासेवनाद्राजन्

अथ ज्येष्ठ कृष्णैकादशीकथा ।। ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे याऽपराख्यैकादशी स्मृता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां दीपिकां संतनोम्यहम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है और उसका माहात्म्य मैं सुनना चाहता हूँ, हे जनार्दन ! वह कहिये ।। १ ।। श्रीकृष्णजी बोले–कि, हे राजन् ! तुमने संसारके हितके लिये अच्छा प्रश्न किया, यह एकादशी बहुतसे पुण्यों को देने वाली और महापातकका नाश करने वाली है ।। २ ।। हे राजेन्द्र ! अपरा इसका नाम है और यह अपार फल देने वाली है, जो इस व्रत को करता है वह लोकमें प्रसिद्ध हो जाता है ।।३।। ब्रह्महत्या, गोत्रहत्या, भ्रूणहत्या, पराई निन्दा करने वाला, तथा पराई स्त्रीसे प्रीति करने वाला भी ।। ४ ।। हे राजन् ! इस अपरा व्रत के करनेसे निश्चय ही पापरहित हो जाता है । जो झूठी गवाही देनेवाले, झूठा प्रमाण देने वाले, कम तौलने वाले ।। ५ ।। और ब्राह्मण झूठा वेदपाठ करने वाला, भ्रष्ट शास्त्र निर्माता, झूंठा ज्योतिषी, बिना आयुर्वेदाध्ययन के औषधि देने वाला, ।। ६ ।। ये सब झूँठी गवाही

पापमुक्ता भवन्ति ते ॥७॥ क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते ॥ स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः ॥८॥ अपरासेवनाद्राजन् पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥ विद्यामधीत्य यः शिष्यो गुरुनिन्दां करोति वै ॥९॥ महापातकयुक्तोहि निरयं याति दारुणम् ॥ अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥ १० ॥ अपरामहिमानं तु शृणु राजन्वदाम्यहम् ॥ पुष्करत्रितये स्नात्वा कार्तिक्यां यत्फलं लभेत् ॥११॥ गंगायां पिण्डदानेन पितॄणां तृप्तिदो यथा ॥ सिंहस्थिते देवगुरौ गौतमीस्नानतो नरः ॥१२॥ यत्फलं समवाप्नोति कुम्भे केदारदर्शनात् ॥ बदर्याश्रमयात्रायां तत्तीर्थसेवनादपि ॥१३॥ यत्फलं समवाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥ गजाश्व हैमदानानि यज्ञे कृत्स्न-

देनेवालेके समान होते हैं और नरकगामी होते हैं। हे राजन्! इस व्रत के करने से ये सब पाप रहित हो जाते हैं ॥ ७ ॥ जो क्षत्रिय अपने क्षात्र धर्मको त्याग कर संग्राम से भाग जाता है। अपने धर्मसे बहिष्कृत क्षत्रिय घोर नरकमें पड़ता है ॥ ८ ॥ वह भी अपराव्रत करनेसे पाप रहित होकर स्वर्ग को जाता है। जो शिष्य विद्या अध्ययन के बाद गुरुकी निंदा करता है ॥ ९ ॥ वह महापातकसे युक्त होकर दारुण नरकमें जाता है। वह भी अपरा व्रत करने से उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ हे राजन्! अपराकी महिमा सुनो मैं कहता हूँ तीनों पुष्करोंमें कार्त्तिकी के दिन स्नान करने से जो फल मिलता है ॥ ११ ॥ पितरों को तृप्तकारक गंगा तट पर पिण्डदान से, सिंह राशि की बृहस्पति में गौतमी में स्नान करनेसे ॥ १२ ॥ और कुम्भ की संक्रान्ति में केदारनाथ के दर्शन से, बदरिकाश्रम के दर्शन और वहाँ निवास करने से, ॥ १३ ॥ सूर्य

सुवर्णदः ॥१४॥ यत्फलं समवाप्नोति ह्यपराया व्रतान्नरः ॥ अर्धप्रसूतां गौं दत्त्वा सुवर्णं वसुधां तथा । १५॥ नरस्तत्फलमाप्नोति अपराव्रतसेवनात् ॥ पापद्रुमकुठारोऽयं पापेन्धनदवानलः ॥ १६ ॥ पापान्धकारसूर्योऽयं पापसारङ्गकेशरी ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ॥१७॥ जायन्ते मरणायैव एकादश्या व्रतं विना॥ अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥१८॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥ लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥१९॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०॥ इति श्रीब्रह्मांडपुराणे ज्येष्ठकृष्णैकादश्यपरामाहात्म्यं समाप्तम् ॥१३॥ अथ ज्येष्ठशुक्लैकादशीकथा ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामह महाबुद्धे शृणु मे

ग्रहण के पर्व पर कुरु क्षेत्र में स्नान करने से, हाथी-घोड़े तथा सुवर्ण दान देने से, यज्ञ में सुवर्ण दान देने से, ॥ १४ ॥ अर्ध-प्रसूता गौ, सुवर्ण और भूमि दान करने से ॥ १५ ॥ मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वही फल इस अपरा नामक एकादशी व्रत से प्राप्त होता है । यह व्रत पाप रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी रूप है और पापेंधन के लिये अग्नि तुल्य है ॥ १६ ॥ और पापरूपी अंधकारके लिए सूर्य है, पापरूपी मृगके लिये सिंह है । पानीमें बुलबुलोंके समान और जीवोंमें भुनगोंके समान ॥ १७ ॥ वे मनुष्य मरने के लिये ही उत्पन्न हुए है जो एकादशी व्रत नहीं करते हैं । अपरा व्रत करनेसे और त्रिविक्रम भगवान्का पूजन करनेके ॥ १८ ॥ मनुष्य सब पापों से रहित होकर विष्णुलोकको जाता है । संसार के कल्याणार्थ मैंने तुम्हें यह कथा सुनायी ॥ १९ ॥ इसके पाठ करनेसे और श्रवण करने से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है । ॥ २० ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां ज्येष्ठकृष्णाऽपरै-

परमं वचः ॥ युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदनंदिनी ॥१॥ अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च ॥ एकादश्यां न भुञ्जन्ति कदाचिदपि सुव्रत ॥ २ ॥ ते मां ब्रुवंति वै नित्यं मा त्वं भुंक्ष्व वृकोदर ॥ अहं तानब्रुवं तात बुभुक्षा दुःसहा मम ॥३॥ दानं दास्यामि विधिवत्पूजयिष्यामि केशवम् ॥ विनोपवासं लभ्येत कथमेकादशीव्रतम् ॥४॥ भीमसेनवचः श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ व्यास उवाच ॥ यदि स्वर्गोऽत्यभीष्टस्ते नरको दुष्ट एव च ॥५॥ एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामहः महाबुद्धे कथयामि तवाग्रतः ॥ ६ ॥

कादशीकथा समाप्ता ।। १३ ।।

अथ ज्येष्ठशुक्लैकादशीकथा ।। शुक्लस्य सितेपक्षे या निर्जलैकादशी स्मृता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां व्याख्यां रम्यां तनोम्यहम ।। १ ।। भीमसेन बोले–कि, हे महाबुद्धि पितामह ! हमारा परम वचन सुनिये कि युधिष्ठिर, कुंती और द्रौपदी ।। १ ।। अर्जुन, नकुल, सहदेव, ये सब एकादशीको कभी भोजन नहीं करते हैं ।। २ ।। वे मुझे सदा कहते हैं कि हे वृकोदर ! तू भी भोजन मत कर, हे तात ! मैं उनसे कहता हूँ कि, मेरी भूख दुःसह है अर्थात् बिना भोजन किये मैं नहीं रह सकता ।। ३ ।। मैं नाना प्रकारके दान विधिपूर्वक करूंगा और भगवान् केशव का पूजन करूंगा, बिना उपवास के ही मुझे एकादशी का फल कैसे प्राप्त हो ।। ४ ।। भीमसेनका यह वचन सुनकर व्यासजी बोले–कि, यदि तुम्हें स्वर्ग अतिप्रिय है और नरक अप्रिय है ।। ५ ।। तो दोनों पक्षोंमें एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये। भीमसेन बोले–कि, हे महाबुद्धि

एकंभुंक्ते न शक्तोऽहमुपवासः कथं मुने ॥ वृकनामाऽपि यो वह्निः स सदा जठरे मम ॥७॥ अतीवान्नं यदाऽश्नामि तदा समुपशाम्यति ॥ एकं शक्तोऽस्म्यहं कर्तुं चोपवासं महामुने ॥८॥ येनैव प्राप्यते स्वर्गस्तत्करोमि यथातथम् ॥ तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥९॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा मे मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया ॥ कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ॥ १० ॥ सुखोपायं चाल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम् ॥ पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामि ते ॥११॥ एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ एकादश्यां न भुङ्क्ते यो न याति नरकं तु सः ॥ १२ ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् ॥ भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत

पितामह ! मैं आप से कह रहा हूं ।। ६ ।। कि, हे मुनि ! एकवार का भोजन भी मैं नहीं त्याग कर सकता उपवास की कौन कहे । वृकनाम जो अग्नि है वह सदा मेरे पेटमें है ।। ७ ।। जब मैं बहुतही अन्न खाता हूं तब शांत होती है । हे महामुने ! मैं एक व्रत करनेमें समर्थ हूँ ।। ८ ।। जिससे स्वर्ग प्राप्त हो और उसे ही मैं यथार्थ विधिसे करूँगा सो आप वह एक व्रत निश्चय करके बतलाइये जिससे मैं कल्याणको प्राप्त करूँ ।। ९ ।। व्यासजी बोले–कि, हे नराधिप ! तुम्हें मैंने वैदिक एवं शास्त्रीय मानव-धर्म सुनाया जो कलियुग के लिये असंभव है ।। १० ।। सरल उपाय, अल्प-धन से ही हो जानेवाला और बिना कष्ट के ही बहुत फल देने वाला जो सब पुराणों का सार है वह तुम्हें सुनाता हूँ । ।। ११ ।। जो दोनों पक्षोंकी एकादशीके दिन भोजन नहीं करता है वह नरकगामी नहीं होता है ।।१२।। व्यासके वचन सुनकर भीमसेन पीपलके पत्तेके समान कांप उठे, फिर महाबाहु भीमसेन भयभीत होकर कहने लगे ।। १३ ।। भीमसेन बोले–कि, हे पितामह ! मैं उपवास करने में असमर्थ

॥१३॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामह न शक्तोऽहमुपवासे करोमि किम् ॥ ततो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकं मम प्रभो ॥१४॥ व्यास उवाच ॥ वृषस्थे मिथुनस्थे वा शुक्ला ह्येकादशी भवेत् ॥ ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥१५॥ स्नाने चाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः ॥ माषमात्रसुवर्णस्य यत्र मज्जति वै मणिः ॥१६॥ एतदाचमनं प्रोक्तं पवित्रं कायशोधनम् ॥ गोकर्णकृतहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् ॥ १७ ॥

तन्न्यूनमधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत् ॥ उपभुञ्जीत नैवान्नं व्रतभंगोऽन्यथा भवेत् ॥१८॥ उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा तथोदकम् ॥ अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥१९॥ प्रभाते विमले जाते द्वादश्यां स्नानमाचरेत् ॥ जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्यो यथाविधि ॥२०॥ भुञ्जीतकृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी ॥ एवं कृते तु

हूँ अतः हे प्रभो ! बहुत फल देनेवाला एक व्रत मुझे बतलाइये ।। १४ ।। व्यासजी बोले—कि, जो वृष और मिथुनके सूर्यमें ज्येष्ठके शुक्लपक्ष की एकादशी होती है उसे निर्जल रहकर करना चाहिये ।।१५।। स्नान और आचमनमें जल वर्जित नहीं है । आचमनके जलका प्रमाण कहते हैं कि मासेभर जल से आचमन करे अर्थात् मासे भर सुवर्ण डूब जाय ।। १६ ।। यह शरीर शुद्ध करनेवाला पवित्र आचमन कहा गया है । गौके कानके समान हाथ को बनाकर उसमें एक मासा जल रखकर पिये ।। १७ ।। उससे न्यून या अधिक हो तो मद्यपानके समान है । अन्नका भोजन न करे अन्यथा व्रत भंग होता है ।। १८ ।। एकादशीके सूर्योदयसे द्वादशीके सूर्योदय तक भोजन न करे और जल भी न पिये तो बिनाश्रम बारहों एकादशीका फल प्राप्त होता है ।। १९ ।। द्वादशीके निर्मल प्रभात होने पर स्नान करके विधिपूर्वक ब्राह्मणको शीतल जल तथा सुवर्ण दान

यत्पुण्यं भीमसेन शृणुष्व तत् ॥२१॥ संवत्सरस्य या मध्ये ह्येकादश्यो भवंति वै ॥ तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ॥२२॥ इति मां केशवः प्राह शंखचक्रगदाधरः ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामकं शरणं व्रज ॥२३॥ एकादश्यां निराहारान्नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ द्रव्यशुद्धिः कलौ नास्ति संस्कारः स्मार्त एव च ॥ २४ ॥ वैदिकश्च कुतश्चास्ते प्राप्ते दुष्टे कलौ युगे ॥ किन्तु ते बहुनोक्तेन वायुपुत्र पुनः पुनः ॥२५॥ एकादश्यां न भुञ्जात पक्षयोरुभयोरपि ॥ एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठस्योदकवर्जितम् ॥२६॥ उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥२७॥ तत्फलं समवाप्नोति इमां कृत्वा वृकोदर ॥ संवत्सरेण याश्च स्युः शुक्लाः कृष्णा

करे ॥ २० ॥ वह वशी पुरुष कृतकृत्य होकर ब्राह्मणके साथ भोजन करे । इस प्रकार करनेसे जो पुण्य मिलता है, हे भीमसेन ! उसे तुम सुनो ॥ २१ ॥ वर्ष में जितनी एकादशी होती हैं उन सबका फल इस एकादशीसे प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ २२ ॥ शंख, चक्र और गदा के धारण करनेवाले भगवान्ने मुझे यह कहा है कि; सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ ॥ २३ ॥ एकादशीके दिन निराहार व्रत करने से मनुष्य पापों से छूट जाता है । कलियुगमें द्रव्यकी शुद्धि नहीं है और स्मार्त्त संस्कार भी नहीं है ॥ २४ ॥ और इस घोर कलियुग में वैदिक क्रियायें तो बिल्कुल लुप्त हो गई । हे वायुपुत्र तुमसे कहां तक वर्णन करें ॥ २५ ॥ दोनों पक्षों में एकादशीके दिन भोजन न करे और ज्येष्ठके शुक्लपक्ष की एकादशीके दिन निर्जल व्रत करे ॥२६॥ इस व्रतको करके जो फल प्राप्त होता है, हे वृकोदर ! वह तुम सुनो, तीर्थों में वास करने से जो पुण्य होता है और सब प्रकारके दान से जो फल मिलता है ॥२७॥ हे वृकोदर ! इस व्रतके करने से वह फल प्राप्त होता है जो वर्ष

वृकोदर ॥२८॥ उपोषितास्ताः सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः॥ धनधान्यबलायुर्दाः पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥२९॥ उपोषिता नरव्याघ्र इतिसत्यं वदामिते॥ यमदूता महाकायाः करालाः कृष्णपिंगला॥३०॥ दण्डपाशधरा रौद्रा नोपसर्पन्ति तं नरम् ॥ पीतांबरधरः सौम्याश्चक्रहस्ता मनोजवाः ॥३१॥ अन्तकाले नयन्त्येनं मानवं वैष्णवीं पुरीम्॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सोपोष्योदकवर्जिता॥३२॥ जलधेनुं ततो दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ इति श्रुत्वा तदा चक्रुः पाण्डवा जनमेजय॥३३॥ तथा त्वमपि भूपाल सोपवासार्चनं हरेः॥ कुरु त्वं च प्रयत्नेन सर्वपापप्रशान्तये ॥३४॥ करिष्याम्यद्य देवेश जलवर्जमुपोषणम् ॥ भोक्ष्ये परेऽह्नि देवेश ह्यनन्त तव वासरात् ॥३५॥ इत्युच्चार्य

भर की कृष्णपक्ष की और शुक्ल पक्ष की एकादशियों से प्राप्त होता है ।।२८।। इस एक एकादशी व्रत करनेसे धन, धान्य, बल, आयु, पुत्र तथा आरोग्य आदि समस्त फलोंको देनेवाली जो वे सब एकादशी हैं वह फल प्राप्त होता है ।।२९।। हे नरव्याघ्र ! यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ कि बड़े भयंकर काले-पीले शरीर धारण किये यम के दूत ।। ३० ।। दण्ड पासको लिये उसके समीप नहीं आते पीतांबर धारण किये हुये सौम्यस्वरूपचक्र हाथमें लिये हुये जिनका वेग मनके समान है ।। ३१ ।। ऐसे विष्णुके दूत अंतकालमें इस व्रतके करनेवाले मनुष्यको विष्णुपुरी में ले जाते हैं अतः सब भांति यह निर्जल उपवास करना चाहिये ।।३२।। तदनन्तर जल-धेनुका दान करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, हे जनमेजय ! यह सुनकर पांडवों ने उस व्रत को किया ।।३३।। हे राजन् ! तुम भी समस्त पापों की शांतिके लिये उपवास सहित हरिका पूजन कीजिये ।।३४।। हे देवदेवेश ! आज मैं निर्जल व्रत करूँगा हे अनंत देवेश ! तुम्हारे वासरसे दूसरे दिन भोजन करूँगा ।।३५।। तदनन्तर इस प्रकार संकल्पकर समस्त पापों के नाश के लिए श्रद्धापूर्वक इन्द्रियों को वश में करके इस व्रत को करना चाहिये ।।३६।। सुमेरु और मंदराचल

ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् ॥ सर्वपापविनाशाय श्रद्धादमसमन्वितः ॥३६॥ मेरुमन्दरमानं तु स्त्रियोऽथ पुरुषस्य वा ॥ सर्वं तद्भस्मतां याति एकादश्याः प्रभावतः ॥३७॥ सकाञ्चनः प्रदातव्यो घटो वस्त्रेण संवृतः ॥ तोयस्य नियमं तस्यां कुरुते वै स पुण्यभाक् ॥३८॥ पलकोटिसुवर्णस्य यामे यामेऽश्नुते फलम् ॥ स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः ॥ ३९ ॥ तत्सर्वं चाक्षयं प्रोक्तमेतत्कृष्णस्य भाषितम् ॥ किंवाऽपरेण धर्मेण निर्जलैकादशी नृप ॥ ४० ॥ उपोषिता च विधिवद्वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ सुवर्णमन्नं वासांसि यदस्यां संप्रदीयते ॥ ४१ ॥ तस्यैव च कुरुश्रेष्ठ सर्वं चाप्यक्षयं भवेत् ॥ एकादशीदिने योऽन्नं भुंक्ते पापं भुनक्ति सः ॥ ४२ ॥ इह लोके स चांडालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ॥ ये प्रदास्यन्ति दानानि द्वादशीं समुपोष्य च ॥४३॥ ज्येष्ठमासि सिते पक्षे

के समान पाप भी इस व्रत के करने से भस्म हो जाता है ।।३७।। वस्त्र में लपेटकर कनक-घट दान करना चाहिये और जो इस निर्जला एकादशीमें जलका नियम करता है वही पुण्यका भागी है ।। ३८ ।। जो मनुष्य एकादशीके दिन प्रत्येक पहरमें स्नान, दान, जप, होम करता है वह करोड़ों पल सुवर्ण दानके बराबरा फल प्राप्त करता है ।। ३९ ।। वह सब अक्षय कहा गया है यह कृष्णका वचन है ! हे नृप ! जिसने निर्जला एकादशीका व्रत कर लिया उसे अन्य व्रत करने अपेक्षित नहीं है ।। ४० ।। विधिवत् उपवास करने वाला मनुष्य विष्णुधामको प्राप्त करता है और इसमें जो सुवर्ण, अन्न, वस्त्र दिया जाता है ।।४१।। हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ ! वह सब अक्षय हो जाता है और जो एकादशीको भोजन करता है वह पाप युक्त हो जाता है ।।४२।। इस लोकमें वह चांडाल बनता है और मरने पर परलोकमें दुर्गतिको प्राप्त होता है और जो द्वादशी युक्त

प्राप्स्यन्ति परमं पदम् ॥ ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेष्टा सदाऽनृती ॥४४॥ मुच्यते पातकैः सर्वैर्द्वादशी यैरुपोषिता ॥ विशेषं शृणु कौन्तेय निर्जलैकादशीदिने ॥४५॥ तत्कर्तव्यं नरैस्त्रीभिः श्रद्धादमसमन्वितैः ॥ जलशायी तु सम्पूज्यो देया धेनुश्च तन्मयी ॥४६॥ प्रत्यक्षं वा नृपश्रेष्ठ घृतधेनुरथापि वा ॥ दक्षिणाभिश्च श्रेष्ठाभिर्मिष्ठान्नैश्च पृथग्विधैः ॥४७॥ तोषणीयाः प्रयत्नेन द्विजा धर्मभृतां वर ॥ तुष्टो भवति वै क्षिप्रं तैस्तुष्टैर्मोक्षदो हरिः ॥४८॥ आत्मद्रोहः कृतस्तैस्तु यैर्नैषा समुपोषिता ॥ पापात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते नात्र संशयः ॥४९॥ कुलानां च शतं साग्रमनाचाररतं सदा ॥ आत्मना सह सन्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम् ॥ ५० ॥ शान्तैर्दानपरैश्चैव अर्चद्भिश्च तथा हरिम् ॥ कुर्वद्भिर्जागरं

एकादशीका व्रत करके दान करेंगे ।। ४३ ।। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें वे परमपद अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं। ब्रह्महत्या करने वाला, मद्यप, चोर, गुरुसे द्वेष करनेवाला, सदा झूठ बोलनेवाला ।। ४४ ।। कैसा भी पापी क्यों न हो, यदि इस व्रत को करे तो सब पापों से छूट जाता है । हे कुंतीके पुत्र ! निर्जला एकादशीके दिन जो विशेष है उसे सुनो ।। ४५ ।। श्रद्धा तथा दम से युक्त हो स्त्री-पुरुषों को यह करना चाहिये कि, जलशायी भगवान्का पूजन करें और जलमयी धेनुका दान करें ।। ४६ ।। हे नृपश्रेष्ठ ! अथवा प्रत्यक्ष गौको दान करे अथवा घृतकी धेनुका दान करे और उसके साथ नाना प्रकारके मिष्ठान्न और दक्षिणासे ब्राह्मणको सतुष्ट करे ।। ४७ ।। हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! यत्न-पूर्वक ब्राह्मण संतुष्ट करने चाहिये उनके संतुष्ट होनेसे मोक्षको देनवाले हरि प्रसन्न होते हैं ।। ४८ ।। जिन्होंने इस एकादशी व्रतको नहीं किया वह आत्मघाती, पापात्मा और दुराचारी है इसमें संदेह नहीं ।।४९।। जिस मनुष्यने एकादशीका व्रत किया उसने अनाचार किये हुये कुलके

रात्रौ यैर्नरैः समुपोषिता ॥५१॥ अन्नं पानं तथा गावो वस्त्रं शय्याऽऽसनं शुभम् ॥ कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ॥५२॥ उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे ॥ स सौवर्णेन यानेन स्वर्गलोकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥५३॥ यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्त्तयेत् ॥ उभौ तौ स्वर्गतौ स्यातां नात्र कार्या विचारणा ॥५४॥ यत्फलं तु सिनीवाल्यां राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्यस्तदस्य श्रवणादपि ॥ ५५ ॥ नियमं च प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥ एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम् ॥५६॥ केशवप्रीणनार्थाय अन्यदाचमनादृते ॥ द्वादश्यां देवदेवेशः पूजनीयस्त्रिविक्रमः ॥५७॥ गन्धपुष्पैस्तथा दीपैर्वारिभिः प्रीणयेद्धरिम् ॥ पूजयित्वा विधानेन

एकसौ एक पुरुष पीछेके और सौ आगेके आप समेत वासुदेव भगवान्के मंदिरमें पहुँचा दिया ।। ५० ।। और जिन लोगोंने सदा शांत और दानमें रत होकर रात्रिमें जागरण और हरिका पूजन करता हुआ एकादशीका व्रत किया उनके पिछले सौ पुरुष तथा आगेके सौ और वह स्वयं विष्णु लोकको जाता है।।५१।।अन्न, जल, गौ, वस्त्र, शय्या, सुन्दर आशन, कमण्डलु और छत्र ये सब निर्जला, एकादशीके दिन देना चाहिये।।५२।। और जो श्रेष्ठ ब्राह्मणको उपानह अर्थात् जूतों को दान करता है वह सुवर्णके विमानमें चढ़कर निश्चय ही विष्णुलोक को जाता है ।।५३ ।। जो मनुष्य भक्तिसे इस कथाको सुनता है जो पढ़ता है, दोनों ही स्वर्गको जाते हैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ।। ५४ ।। सिनीवाली अमावास्यामें सूर्य ग्रहणके समय श्राद्ध करनेसे मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वही फल इस कथा के सुनेसे प्राप्त होता है ।। ५५ ।। दातून करके संकल्प करे कि आज एकादशीका निराहार व्रत करूँगा और जल भी नहीं पिऊँगा ।।५६।।केशव भगवान्की प्रसन्नताके लिये आचमनको छोड़कर और

मंत्रमेतमुदीरयेत् ॥५८॥ देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक ॥ उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम् ॥५९॥ ततः कुम्भाः प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः स्वशक्तितः ॥ सान्ना वस्त्रयुता भीम छत्रोपानत्फलान्विताः ॥६०॥ दानान्यन्यानि देयानि जलधेनुर्विशेषतः ॥ भोजयित्वा ततो विप्रान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥६१॥ एवं यः कुरुते पूर्णां द्वादशीं पापनाशिनीम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं गच्छत्यनामयम् ॥६२॥ ततः प्रभृति भीमेन कृता ह्येकादशी शुभा ॥ पाण्डवद्वादशी नाम्ना लोके ख्याता बभूव ह ॥६३॥ इति श्रीब्रह्मांडपुराणे ज्येष्ठशुक्लनिर्जलैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥ १४ ॥

जल न पिये और द्वादशीके दिन त्रिविक्रमका पूजन करे।।५७।।गंध, पुष्प तथा दीपसे और जल द्वारा हरिको प्रसन्न करे और विधानसे पूजन करके इस मंत्रका उच्चारण करे ।। ५८ ।। कि हे देवदेव ! हे हृषिकेश ! संसार समुद्रसे पार करनेवाले ! इस जलकुम्भके दानसे मुझे परम गति प्राप्त हो ।। ५९ ।। तदनन्तर हे भीम ! यथाशक्ति ब्राह्मणों को अन्न, वस्त्र, छत्र, उपानह और फलस युक्त घड़े का दान करे ।। ६० ।। और भी दान देने चाहिये, जल और धेनु तो विशेष रूप से देना चाहिये और बाद में ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे ।। ६१ ।। इस प्रकार से पापनाशिनी द्वादशी को पूर्ण करे तो मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर निर्दोष पद को प्राप्त करता है ।। ६२ ।। उस समय से भीमने एकादशी व्रत प्रारम्भ किया पांडवद्वादशी नामसे वह लोकमें प्रसिद्ध हुई ।। ६३ ।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनय पण्डित-केशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्य भाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां जेष्ठशुक्लैकादशीनिर्जलामाहात्म्यं समाप्तम् ।। १४ ।।

अथाषाढ़कृष्णैकादशीकथा॥ युधिष्ठिर उवाच॥ ज्येष्ठशुक्ले निर्जलाया माहात्म्यं वै श्रुतं मया॥ आषाढ़कृष्णपक्षेतु किंनामैकादशी भवेत्॥१॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ व्रतानामुत्तमं राजन्कथयामि तवाग्रतः॥२॥ सर्वपापक्षयकरं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ आषाढस्यासिते पक्षे योगिनी नाम नामतः॥३॥ एकादशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी॥ संसारार्णवमग्नानां पाररूपा सनातनी॥४॥ जगत्त्रये सारभूता योगनीति नराधिप॥ कथयामि कथां तस्याः पौराणीं पापहारिणीम्॥५॥ अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः॥ तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः॥६॥ तस्य पत्नी सुरूपा च विशालाक्षीति नामतः॥ स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं

आषाढकृष्णैकादशीकथा ।। आषाढस्यासिते पक्षे योगिन्येकादशी तु या ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां सर्वे सूदीपिकाम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि हे महाराज ! ज्येष्ठके शुक्लपक्षकी एकादशीका माहात्म्य मैंने सुना अब आषाढकृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है ।। १ ।। हे मधुसूदन ! प्रसन्नतासे मुझे सुनाइये, श्रीकृष्ण बोले–कि हे राजन् ! तुमसे मैं सब व्रतों में उत्तम व्रत कहता हूँ ।।२।। सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली और भुक्ति-मुक्ति को देने वाली आषाढ़के कृष्णपक्षमें योगिनी नामक एकादशी होती है ।। ३ ।। हे नृपश्रेष्ठ ! यह एकादशी बड़े-बड़े पापों को नष्ट करनेवाली है और संसार समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यों को पार करने वाली और सनातन है ।। ४ ।। हे नराधिप ! तीनों लोक में यह योगिनी सारभूत है इसकी कथा पुराणों में पापनाशक कही गयी है वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।।५।। अलकापुरीका स्वामी कुबेर शिवका पूजक

गतः ॥ ७ ॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः ॥ पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः ॥८॥ कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् ॥ मध्याह्नसमये राजन् पुष्पाणि न समीक्षते ॥९॥ हेममाली स्वभवने रमते हि तया सह ॥ यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः ॥१०॥ कस्मान्नायाति भो यक्षा हेममाली दुरात्मवान् ॥ निश्चयः क्रियतामस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ ११ ॥
यक्षा ऊचुः ॥ वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप ॥ तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ॥ १२ ॥ आह्वयामास तं तूर्णं वटुकं हेममालिनम् ॥ ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ॥१३॥ आजगाम

है, पूजा के लिये फूल लाने वाला हेममाली नाम का एक यक्ष है ।।६।। उसकी रूपवती स्त्रीका विशालाक्षी नाम है, उसके प्रेम में वह सदा रत रहता था । ।। ७ ।। मानसरोवर से पूजाका फूल लाकर पत्नी के प्रेम में आसक्त हो घर पर ही ठहर गया एक दिन ।। ८ ।। हे राजन् ! कुबेर शिवालयमें शिवका पूजन मध्याह्नके समयमें करते समय फूलोंकी राह देख रहे थे ।। ९ ।। और हेममाली अपने घरमें विशालाक्षीके साथ विहार करता रहा । फूल लेकर न पहुंचने पर कुबेर क्रोधित होकर बोले ।। १० ।। अरे यक्षो ! यह दुष्ट हेममाली क्यों नहीं आया इस बात का पता लगाना चाहिये ऐसा बारंबार कहने लगे ।। ११ ।। यक्ष बोले–कि हे राजन् वह स्त्रीमें आसक्त हो अपने घरमें स्वेच्छापूर्वक विहार कर रहा है, उन यक्षों के वचन सुनकर कुबेर बहुतही क्रोधित हुये ।। १२ ।। और उस फूल लाने वाले हेममाली को शीघ्रही बुलवाया । वह

नमस्कृत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः ।। तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ॥ १४ ॥ प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताधरः ॥ धनद उवाच ॥ रे पाप दुष्ट दुर्वृत्त कृतवान्देवहेलनम् ॥ १५ ॥ अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सदा ॥ अस्मात् स्थानादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाधमम् ॥१६॥ इत्युक्ते वचने तेन तस्मात् स्थानात्पपात सः ॥ महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठपीडितविग्रहः ॥१७॥ न वै तोयं न भक्ष्यं च वने रौद्रे लभत्यसौ ॥ न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि ॥१८॥ छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः ॥ शिवपूजाप्रभावेण स्मृतिस्तस्य न लुप्यते॥१९॥ पातकेनाभिभूतोऽपि कर्म पूर्वमनुस्मरन्॥ भ्रममाणस्ततोऽगच्छद्धिमाद्रिं पर्वतोत्तमम्

बिलम्ब होने के कारण डरा हुआ-सा आया ।। १३ ।। और भयपूर्वक नमस्कार करके कुबेरके सम्मुख खड़ा हुआ । उसे देखकर कुबेर क्रोधित हुये और आंखें लाल होगईं ।। १४ ।। क्रोध से युक्त कापते हुये ओठों से उससे कुबेर कहने लगे–अरे पापी दुष्ट दुराचारी ! तूने देवताका अपमान किया ।। १५ ।। अतः तू श्वित्र नामक सफेद कुष्ठ से युक्त और स्त्रीसे वियुक्त हो जा और इस स्थानसे गिरकर अधमस्थानको प्राप्त हो ।। १६ ।। जब कुबेरने ऐसा कहा तो वहां से वह गिर जाता है और महादुःखी तथा कोढसे पीडित हो गया ।। १७ ।। वह उस भयानक वनमें न तो अन्न और न जल पाता है तथा न तो उसे दिनमें सुख प्राप्त होता है और न रात्रिम नींद आती है ।। १८ ।। छायामे जाने पर उसके शरीरमें पीड़ा होती और धूप में जलने लगता । परन्तु शिवकी पूजाके प्रताप से उसकी स्मृति नष्ट न हुई ।।१९।। पाप से पीड़ित होने पर भी उसे अपने पूर्व कर्म स्मरण थे, बाद में वह घूमता-घूमता पर्वतों में श्रेष्ठ जो हिमालय है वहां जा पहुंचा ।। २० ।। वहां मुनियोंमें श्रेष्ठ जो तपो-

॥२०॥ तत्रापश्यन्मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोनिधिम् ॥ तस्यायुर्विद्यते राजन् ब्रह्मणो दिनसप्तकम् ॥२१॥ आश्रमं स गतस्तस्य ऋषेर्ब्रह्मसदः समम् ॥ ववन्दे चरणौ तस्य दूरतः पापकर्मकृत् ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कुष्ठिनं तदा ॥ परोपकरणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कस्मात्कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरो ह्यसि ॥ इत्युक्तः प्रत्युवाचाथ मार्कण्डेयेन धीमता ॥२४॥ हेममाल्युवाच॥ यक्षराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः ॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ॥ २५ ॥ शिवपूजनवेलायां कुबेराय समर्पये॥ एकस्मिन् दिवसे काललोपश्च विहितो मया ॥२६॥ पत्नीसौख्यप्रसक्तेन कामव्याकुलचेतसा॥ ततः क्रुद्धेन शप्तोऽहं राजराजेन वै मुने ॥ २७ ॥ कुष्ठाभिभूतः संजातो विभक्तः कान्तया सह ॥ अधुना तव

निधि मार्कण्डेय ऋषि हैं जिनकी आयु ब्रह्मा के सात दिन की है, उन्हें देखा ।। २१ ।। ब्रह्माकी सभाके समान जो ऋषिका आश्रम है उसमें जाकर उस पापकर्म करनेवाले ने दूर से उनके चरणों में नमस्कार किया ।। २२ ।। तब मार्कण्डेय मुनि ने उस कोढ़ी को देखकर उपकार की भावना से उसे पास बुलाकर कहा ।। २३ ।। मार्कण्डेय बोले—कि, तेरे कुष्ठ क्यों हुआ है और तू निन्दित क्यों हो गया है । उन बुद्धिमान मार्कण्डेय द्वारा इस प्रकार पूँछने पर वह यक्ष बोला ।। २४ ।। हेममाली कहने लगा—कि, हे मुनि महाराज ! मैं कुबेरका सेवक हूँ हेममाली मेरा नाम है, मैं प्रतिदिन मानसरोवरसे पुष्प लाकर ।। २५ ।। शिवपूजनके समय कुबेर को देता था किन्तु एक दिन मैंने फूल विलम्ब से भी न लेकर आया ।। २६ ।। घरमें स्त्री-सुखमें आसक्त कामान्ध बना बैठा रहा । हे मुने ! उस समय क्रोधित कुबेर ने शाप दे दिया ।। २७ ।। मैं

सानिध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभकर्मणा ॥२८॥ सतां स्वभावतश्चित्तं परोपकरणक्षमम् ॥ इति ज्ञात्वा मुनि श्रेष्ठ शाधि मां च कृतैनसम् ॥२९॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ त्वया सत्यमिह प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः ॥ अतो व्रतोपदेशं ते करिष्यामि शुभप्रदम् ॥३०॥ आषाढकृष्णपक्षे त्वं योगिनीव्रतमाचर ॥ अस्य व्रतस्य पुण्येन कुष्ठात्वं मुच्यसे ध्रुवम् ॥३१॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा दंडवत्पतितोभुवि ॥ उत्थापितश्च मुनिना बभूवातीव हर्षितः ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयोपदेशेन कृतं तेन व्रतोत्तमम् ॥ तद्व्रतस्यप्रभावेण देवरूप बभूव सः ॥ ३३ ॥ संयोगं कान्तया लेभे बुभुजे सौख्यमुत्तमम् ॥ ईदृग्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनी व्रतम् ॥ ३४ ॥

कोढी हो गया और स्त्रीसे दूर हो गया, अब मेरा कोई ऐसा शुभ कर्म उदय हुआ है जिससे में आपके समीप आया हूँ । २८।। सज्जनोंका चित्त स्वभावसेही परोपकारमें संलग्न होता है, हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा समझ कर मुझ पापात्मा को शिक्षा दीजिये ।।२९।। मार्कण्डेय बोले–कि, यदि तूने यहां सब बात सत्य-सत्य कहा है तो मैं कल्याणकारक व्रत का उपदेश करता हूँ ।। ३० ।। तू आषाढके कृष्णपक्षमें योगिनी नामक एकादशीका व्रत कर या व्रतके पुण्यप्रभावसे तू निश्चय ही कुष्ठसे छूट जायगा ।। ३१ ।। मुनिका यह वचन सुनकर पृथ्वी पर लोटकर दंडवत् प्रणाम किया और मुनि ने उठाया तब वह बहुतही प्रसन्न हुआ ।। ३२ ।। मार्कण्डेय मुनिके उपदेश से उसने उत्तम व्रत किया, उस व्रतके प्रभाव से वह देवरूप हो गया ।। ३३ ।। स्त्री-संयोगको प्राप्त किया और उत्तम सुख भोगने लगा, हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार योगिनीका व्रत मैंने कहा ।।३४।।

अष्टाशीतिसहस्राणि द्विजान् भोजयते तु यः ॥ तत्फलं समवाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥३५॥ महापापप्रशमनी महापुण्यफलप्रदा ॥ शुचौ कृष्णैकादशी ते कथिता योगिनी नृप ॥३६॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्ते आषाढकृष्णैकादशी-योगिनीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १५ ॥ आषाढशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आषाढस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ को देवः को विधिस्तस्या एतदाख्याहि केशव ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम् ॥ कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन विष्णोराराधनाय मे ॥ आषाढशुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥३॥ ब्रह्मोवाच ॥ वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ

अट्ठासी हज़ार ब्राह्मणोंको भोजन कराने से जो फल मिलता है वही फल इस एकादशी के करनेसे प्राप्त होता है ।। ३५ ।। पातकों को शान्त करनेवाली और महापुण्य दायिनी इस आषाढकृष्णपक्षकी एकादशी को मैंने तुम्हें सुनाया ।। ३६ ।। इति श्रीमत्पण्डितकेशवप्रसा-शर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायामाषाढकृष्णैकादशीयोगिनीकथा समाप्ता ।। १५ ।।
आषाढशुक्लैकादशी देवशयनीकथा ।। शुचेः शुक्ले तु देवशयनीति प्रकीर्तिता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां सम्यक्करोम्यहम् ।।१।। युधिष्ठर बोले कि, आषाढके शुक्ल पक्षकी एकादशीका क्या नाम है, उसका देवता कौन है और उसकी विधि क्या है ? हे केशव ! यह मुझे सुनाइये ।।१।। श्रीकृष्ण बोले–कि, हे महाराज ! जिसे ब्रह्माने महात्मा नारदके लिए कहा उस आश्चर्य युक्त कथाको मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।।२।। नारद बोल–कि, हे महाराज ! विष्णुके आराधनके लिये मुझे प्रसन्नतापूर्वक कहिये ! कि,

साधु पृष्टं कलिप्रिय ॥ नातः परतरं लोके पवित्रं हरिवासरात् ॥ ४ ॥ कर्तव्यं तु प्रयत्नेन सर्वपापपनुत्तये ॥ तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि शुक्ल एकादशीव्रतम् ॥५॥ एकादश्या व्रतं पुण्यं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ न कृतं येनरैर्लोके ते नरा निरयैषिणः॥६॥ पद्मानामेति विख्याता शुचौ ह्येकादशी सिता॥ हृषीकेशप्रीतये तु कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ७ ॥ कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ ८ ॥ मान्धाता नाम राजर्षिर्विवस्वद्वंशसम्भवः॥ बभूव चक्रवर्ती स सत्यसन्धः प्रतापवान् ॥९॥ धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥१०॥ निरातंकाः प्रजास्तस्य धनधा-

आषाढके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ॥३॥ ब्रह्मा बोले–कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम वैष्णव हो, हे कलप्रिय ! तुमसे अच्छा प्रश्न किया, लोकमें हरिवासरसे परे और कोई पवित्र व्रत नहीं है ॥४॥ सम्पूर्ण पापों को नष्ट के लिए इसे यत्नपूर्वक करना इसलिए मैं तुम्हें शुक्लपक्षकी एकादशीके व्रत को कहता हूँ ॥५॥ एकादशी व्रत पवित्र है पापोंका नाश करता है और सब कामना पूर्ण करता है जिस मनुष्योंने इस व्रतको लोकमें नहीं किया वे नरकगामी हैं ॥६॥ आषाढके महीनेमें शुक्ल-पक्षकी पद्मा नाम एकादशी विख्यात है, हृषिकेश भगवान्‌की प्रीतिके लिये यह उत्तम व्रत करना चाहिये ॥७॥ मैं तुम्हारे सम्मुख उत्तम पुराणकी कथा कहता हूँ जिस कथाके सुनने मात्रही से महापाप नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ सूर्यवंशमें उत्पन्न मान्धाता नामक राज ऋषि हुये, वे सत्यप्रतिज्ञप्रतापवान् और चक्रवर्ती हुये ॥९॥ वह अपने पुत्रके समानही प्रजाका धर्मसे पालन

नाभ्यायोपार्जितं द्रव्यं कोशे तस्य महीपतेः ॥११॥ तस्यैवं कुर्वतो राज्यं बहुवर्षगणोगतः ॥ अथ
न्यसमन्विताः ॥ नान्यायोपार्जितं द्रव्यं कोशे तस्य महीपतेः ॥११॥ तस्यैवं कुर्वतो राज्यं बहुवर्षगणोगतः ॥ अथ
कदाचित्संप्राप्त विपाके पापकर्मणः ॥१२॥ वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकः ॥ तेनोद्विग्नाः प्रजास्तत्र बभूवुः
क्षुधयार्दिता ॥१३॥ स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययन वर्जिताः ॥ बभूवुर्विषयास्तस्य सस्याभावेन पीडिताः ॥१४॥
अथ प्रजाः समागत्य राजानमिदमब्रुवन् ॥ श्रूयतां वचनं राजन् प्रजानां हितकारकम् ॥१५॥ आपो नारा इति
प्रोक्ताः पुराणेषु मनीषिभिः ॥ अयनं ता भगवतस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१६॥ पर्जन्यरूपी भगवान् विष्णुः
सर्वगतः सदा ॥ स एव कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥१७॥ तदभावेन नृपते क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः ॥ तथा

करता और उसके राज्यमें दुर्भिक्ष, मानसिक व्यथा तथा रोग आदि कोई उपद्रव नहीं होते थे ॥१०॥ उसकी प्रजा निरातंक धनधान्यसे भरपूर थी और उस राजाके भंडारमें अन्यायसे इकट्ठा किया हुआ धन नहीं था ॥११॥ उसे इस प्रकार राज्य करते बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। इसके बाद कभी पाप कर्म के फलस्वरूप ॥१२॥ उसके देशमें तीन वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। अतः क्षुधा से पीड़ित उसकी प्रजा उद्विग्न हो गई ॥१३॥ अन्नके न उत्पन्न होनेसे पीड़ित उसके देश में स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और वेदके अध्ययन आदि कार्य बन्द हो गये ॥१४॥ इसके बाद प्रजा गण राजा के समीप आकर यह कहने लगे हे राजन्! प्रजाका हित करनेवाले, वचन सुनिये ॥१५॥ पुराणोंमें पंडितोंने जलका नाम नारा कहा है, वह जल भगवानका अयन अर्थात् स्थान है अतः नारायण कहे गये हैं ॥१६॥ वे मेघरूप भगवान् विष्णु सदा, सर्वव्यापी हैं वेही वृष्टि करते हैं उससे अन्न होता

कुरुनृपश्रेष्ठ योगेक्षेमो यथा भवेत् ॥१८॥ राजोवाच ॥ सत्यमुक्तं च भवता न मिथ्याभिहितं वचः ॥ अन्नं ब्रह्ममयं प्रोक्तमन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१९॥ अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते ॥ इत्येयं श्रूयते लोके पुराणे बहु विस्तरे ॥२०॥ नृपाणामपचारेण प्रजानां पीडनं भवेत् ॥ नाहं पश्याम्यात्मकृतं दोषं बुद्ध्या विचारयन् ॥२१॥ तथापि प्रयतिष्यामि प्रजानां हितकाम्यया ॥ इति कृत्वा मतिं राजाऽपरिमेहबलान्वितः ॥२२॥ नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं वनम् ॥ चचार मुनिमुख्यानामाश्रमांस्तपसैधिनाम् ॥२३॥ ददर्शाथ ब्रह्मसुतमृषिमाङ्गिरसं नृपः ॥ तेजसा द्योतितदिशं द्वितीयमिव पद्मजम् ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा ह्यवतीर्य च वाहनात् ॥ नमश्चक्रेऽस्य चरणौ

है और उस अन्न से प्रजा बढ़ती है ॥१७॥ हे राजन् ! उस अन्नके अभावसे प्रजा क्षयको प्राप्त होती है, हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसा करो. जिससे आपके देशमें कुशल हो ॥१८॥ राजा बोले कि तुमने सत्य कहा कुछ मिथ्या नहीं है, अन्नको ब्रह्ममय कहा गया है अन्नहीमें सब स्थित हैं ॥१९॥ अन्नते जीव होते हैं, जगत् अन्नहीसे वर्तमान है ऐसाही लोकमें सुना जाता है और विस्तार पूर्वक पुराणों में कहा गया है ॥२०॥ राजाके अपराधसे प्रजाको पीडा होती है मैंने बुद्धिसे विचार कर देखा तो अपना किया दोष नहीं देखा है ॥२१॥ तो भी प्रजा की हितकी कामनासे यत्न करूंगा। राजा इस प्रकार विचार कर बहुत बड़ी सेना से युक्त ॥२२॥ विधाताको नमस्कार करके घने वन में गया और मुख्य २ मुनियोंके तपपूत आश्रमोंमें विचरने लगा ॥२३॥ इसके बाद वह राजा ब्रह्माके पुत्र जो आंगिरस ऋषि हैं, तेजसे प्रकाशमान किया है दिशाओंको जिन्होंने ऐसे दूसरे ब्रह्माके समान स्थित

कृताञ्जलिपुटो वशी ॥२५॥ मुनिस्तमभिनन्द्याथ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः ॥२६॥ निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छानामयं नृपः ॥ ततश्च मुनिना राजा पृष्टागमनकारणः ॥२७॥ अब्रवीन्मुनिशार्दूलं स्वस्यागमनकारणम् ॥ राजोवाच ॥ भगवन्धर्मविधिना मम पालयतो महीम् ॥ अनावृष्टिः संप्रवृत्ता नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥२८॥ संशयच्छेदनार्थाय ह्यागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ योगक्षेमविधानेन प्रजानां निवृतिं कुरु ॥२९॥ ऋषिरुवाच ॥ एतत् कृतयुगं राजन्युगानामुत्तमं स्मृतम् ॥ अत्र ब्रह्मोत्तरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः ॥ ३० ॥ तस्मिन्युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः ॥ विषये तव राजेन्द्र वृषलो यत्तपस्यति ॥ ३१ ॥

मुनिको देखा ।।२४।। उनको देखकर प्रसन्न हो वह राजा वाहन से उतरकर उनके चरणोंमें नमस्कार करके हाथ जोड़कर खड़ा हुआ ।।२५।। मुनि स्वस्ति वाचनपूर्वक उसे आशीर्वाद् देकर राज्य और राज्य के सात अंगों की कुशल पूंछी ।।२६।। तब राजा अपनी कुशल कहकर मुनिसे कुशल पूंछा, तदनन्तर मुनिने राजासे आनेका कारण पूछा ।।२७।। तब राजा उस मुनिश्रेष्ठसे अपने आगमनका कारण बताया । राजा बोले–कि, हे भगवन् ! धर्मकी विधिसे मेरे राज्य करते हुये अनावृष्टि हुई है अर्थात् सूखा पड़ा है, मैं इसका कारण नहीं जानता हूँ ।।२८।। इस सन्देहको दूर करने के लिये आपके पास आया हूं योगक्षेमके विधानसे प्रजाको सुखी कीजिये ।।२९।। ऋषि बोले–कि, हे राजन् ! यह सत्ययुग सब युगमें उत्तम है इसमें लोग वेद बहुत पढ़ते हैं और इसमें धर्मके चारों चरण हैं ।।३०।। इस युगमें ब्राह्मण तप से युक्त हैं और जाति नहीं है । हे राजेन्द्र ! तुम्हारे देशमें

अकार्यकरणात्तस्य न वर्षति बलाहकः॥ कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यति ॥३२॥ राजोवाच ॥ नाहमेनं वधिष्यामि तपस्यन्तमनागसम् ॥ धर्मोपदेशं कथय उपसर्गविनाशनम् ॥३३॥ ऋषिरुवाच ॥ यद्यैवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकादशीव्रतम् ॥ शुचिमासे शुक्लपक्षे पद्मानामेति विश्रुता ॥३४॥ तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम् ॥ सर्वसिद्धिप्रदा ह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी ॥ ३५ ॥ अस्या व्रतं कुरु नृप सप्रजः सपरिच्छदः ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा राजा स्वगृहमागतः ॥३६॥ आषाढमासे संप्राप्ते पद्माव्रतमथाकरोत् ॥ प्रजाभिः सह सर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसमन्वितः ॥३७॥ एवं कृते व्रते राजन्प्रववर्ष बलाहकः ॥ जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यमालिनी॥३८॥ हृषीकेशप्रसादेन

जो शूद्र तपस्या करता है ।।३१।। उसके इस अयोग्य कर्म से मेघ नहीं बरसता है ताते उसके मारनेका यत्न करो जिससे दोष शांत हो ।।३२।। राजा बोले–कि, मैं तप करते हुये उस निरपराधी को नहीं मारूंगा, ऐसे धर्मका उपदेश दीजिये जिससे उपद्रव शांत हो ।।३३।। ऋषि बोले–कि, हे राजन्! यदि ऐसा ही है तो आषाढके शुक्लपक्षमें पद्मा नाम की जो एकादशी प्रसिद्ध है उसका व्रत करो ।।३४।। उस व्रतके प्रभावसे निश्चय ही वर्षा होगी। यह एकादशी सब सिद्धि देने वाली और उपद्रवको नाश करने वाली है ।।३५।। हे राजन्! कुटुंब और प्रजा समेत इस व्रतको करो मुनिका यह वचन सुनकर राजा अपने घर आया ।।३६।। तदनन्तर आषाढ महीनेके आनेपर चारो वर्णों से युक्त समस्त प्रजासमेत पद्मा व्रत को किया ।।३७।। हे राजन्! इस प्रकार व्रत करने पर वर्षा हुई और पृथ्वी खूब वर्षा होनेके कारण धान्य से सम्पन्न हो गई ।।३८।। और

जनाः सौख्यं प्रपेदिरे ॥ एतस्मात्कारणादेव कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥३९॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव लोकानां सुखदायकम् ॥ पठनाच्छ्रवणादस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४०॥ इयमेकादशी राजञ्छयनीत्यभिधीयते ॥ विष्णोः प्रसादसिद्ध्यर्थ-मस्यां च शयनव्रतम् ॥४१॥ कर्तव्यं राजशार्दूल जनैर्मोक्षेच्छुभिः सदा ॥ चातुर्मास्यव्रतारंभोऽप्यस्यामेव विधीयते ॥४२॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं कृष्ण प्रकर्तव्यं श्रीविष्णोः शयनव्रतम् ॥ तद्ब्रूहि कृपया देव चातुर्मास्यव्रतानि च ४३॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविंदशयनव्रतम् ॥ चातुर्मास्ये च यान्युक्तान्यासंस्तानि व्रतानि च ॥४४॥ कर्कराशिगते सूर्ये शुचौ शुक्ले तु पक्षके ॥ एकादश्यां जगन्नाथं स्वापयेन्मधुसूदनम् ॥४५॥ तुलाराशिस्थिते

हृषीकेश भगवान्के प्रसादसे सब लोग सुखको प्राप्त हुये इस कारण से यह उत्तम व्रत करना योग्य है ।।३९।। भुक्ति मुक्तिको देनेवाली और लोगोंको सुखदायक है। इसके पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ।।४०।। हे राजन्! इस एकादशी का शयनी नाम है विष्णु भगवान्की प्रसन्नता के लिये शयन व्रत श्रेष्ठ कहा गया है ।।४१।। हे राजशार्दूल! मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्यों द्वारा यह व्रत सदा करणीय है। और चातुर्मास्य व्रतका आरंभ भी इसी एकादशी से होता है ।।४२।। युधिष्ठिर बोले कि हे कृष्ण! विष्णुका शयनव्रत कैसे करना चाहिये, हे देव! और चतुर्मास्यके व्रत भी मुझे कृपा करके कहिये ।।४३।। श्रीकृष्ण-बोले कि हे कौंतेय! सुनो मैं गोविन्दके शयन व्रत को कहता हूँ और चातुर्मास्यमें जो व्रत कहे गये हैं उनको भी कहता हूँ ।।४४।। कर्कराशिमें सूर्यके जानेपर आषाढके शुक्लपक्ष में एकादशीके दिन जगत्के स्वामी जो मधुसूदन

तस्मिन्पुनरुत्थापयेद्धरिम् ॥ अधिमासेऽपि पतित एष एव विधिः क्रमात् ॥४६॥ नान्यदा स्वापयेद्देवं तथैवोत्थापयेद्धरिम् ॥ आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥४७॥ चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् ॥ एवं च प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर ॥४८॥ स्नापयेत्प्रतिमां विष्णोः शंखचक्रगदाधराम् ॥ पीतांबरधरां सौम्यां पर्यंके वै सिते शुभे ॥ सितवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ॥४९॥ इतिहासपुराणज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रसितादिभिः ॥ ५० ॥ समालेप्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भूरिशः ॥ पूजयेत्कुसुमैः शस्तैर्मन्त्रेणानेन पांडव ॥५१॥ शायितस्त्वं हृषीकेश पूजयित्वा श्रिया सह ॥ प्रसादं कुरु देवेश लक्ष्म्या सह

हैं उनको शयन कराये ॥४५॥ फिर सूर्यके तुलाराशिमें जानेपर हरिको जगाये, अधिकमासके आने पर भी क्रमसे यही विधि कही है ॥४६॥ इस प्रकार दूसरे देवों को न सुलाये और न उठाये। आषाढ महीनेके शुक्लपक्षमें एकादशीके दिन व्रत करके ॥४७॥ हे युधिष्ठर! इस प्रकार विष्णुकी प्रतिमाको स्थापित करके चातुर्मास्यव्रतकी परिकल्पना करे ॥४८॥ शंख, चक्र, गदा, धारण करनेवाले विष्णुकी प्रतिमाको स्नान कराये फिर पीतांबर धारण कराये। उस सौम्य मूर्तिको सफेद वस्त्र जिस पर बिछे हैं और तकिया जहां लगे हैं ऐसी शय्या पर सफेदही वस्त्र ओढ़ाकर शयन कराये ॥४९॥ इतिहास और पुराणको जाननेवाले वेदोंका पारगामी ब्राह्मण दही, दूध, घी, शहद, शर्करा आदि मिलाकर पंचामृतसे स्नान कराये ॥५०॥ और उत्तम गंधसे लेपन करके धूप-दीपसे और सुंदर सुगंधित पुष्पोंसे पूजन करके हे पांडव! इस मंत्रको पढ़े ॥५१॥ हे हृषीकेश! मैंने पूजन करके तुम्हें

जनार्दन ॥ ५२ ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत् सुप्तं चराचरम् ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर ॥ ५३ ॥ तस्या एवाग्रतः स्थित्वा गृह्णीयान्नियमान्नरः ॥ चतुरोवार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ॥ ५४ ॥ प्रातःसन्ध्यादिकं सर्वं नित्यं कर्म समाप्य च ॥ ग्रहीष्ये नियमाञ्छुद्धान्निर्विघ्नान्कुरु मे प्रभो॥५५॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं प्रह्वः संशुद्धमानसः ॥ स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं च धृतव्रतः ॥५६॥ गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकम् ॥ व्रतप्रारम्भकालस्तु प्रोक्तः पञ्चैव विष्णुना॥५७॥ उपक्रमं चतुर्मासव्रतानां च नरः शुचौ ॥ एकादशी द्वादशी च पूर्णिमा च तथाष्टमी ॥ ५८ ॥ कर्कटा चैव संक्रांतिस्तासु कुर्याद्यथाविधि ॥ चतुर्धा गृह्य व चीर्णं

लक्ष्मीसमेत शयन कराया । हे देवेश ! जनार्दन आप लक्ष्मीसमेत मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।।५२।। हे जगन्नाथ ! तुम्हारे सोने पर चराचर जगत् सो गया, हे युधिष्ठिर ! उस पहले कही हुई विष्णुकी प्रतिमाको स्थापित करके ।।५३।। उसी मूर्तिके आगे स्थित होकर मनुष्य चातुर्मास्यके व्रतको नियम से करे जो वर्षके चार महीनोंमें देवोत्थानी एकादशी तक होती है ।।५४।। प्रात संध्या और नित्य कर्म को समाप्त करके जो शुद्ध नियम हैं उनको में ग्रहण करता हूँ हे प्रभो ! मेरे उन कर्मोंको निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण करो ।।५५।। इस प्रकार देवेश विष्णु की प्रार्थना करके नम्र और शुद्ध मन होकर स्त्री हो या पुरुष मेरा भक्त धर्मके लिए व्रतको धारण करे ।।५६।। और दंत-धावन करके इन नियमोंको ग्रहण करे और व्रत आरंभ करनेके विष्णुने पांचही काल कहे हैं ।।५७।। मनुष्य आषाढ़के महीनेमें चातुर्मास्य व्रत को आरंभ करना एकादशी से या द्वादशी से या पूनोसे अथवा अष्टमी

चतुर्मास्यव्रतं नरः ॥ ५९ ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि कर्त्तॄणां ये पृथक्पृथक् ॥६०॥ आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यामुपोषितः ॥ चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिदवनीपते ॥ ६१ ॥ नान्यथा चाब्दिकं पापं विनिहन्ति प्रयत्नतः ॥ शैशवं चैव मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न बाधकम् ॥ ६२ ॥ खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः॥ खण्डाङ्गव्यापि मार्त्तण्डा यद्यखंडा भवेत्तिथिः॥ अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् ॥ ६३ ॥ व्रतमेकं नरः कृत्वा मुच्यते सर्व पातकैः ॥ असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥६४॥ मलरूपमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः ॥ प्रतिवर्षं तु यः कुर्याद्व्रतं वै संस्मरन् हरिम् ॥६५॥

से कहा है ।।५८।। और पांचवीं कर्ककी संक्रांति इनमें विधिपूर्वक चार प्रकारसे ग्रहण करके चातुर्मास्य व्रतको आरंभ करे ।।५९।। फिर कार्तिकके शुक्लपक्षमें द्वादशीको समाप्त करे इसे करने से जो विभिन्न फल मिलते हैं उन्हें कहता हूं ।।६०।। आषाढके शुक्लपक्ष एकादशीको व्रत करके हे राजन्! फिर चातुर्मास्य व्रत करे ।।६१।। अन्यथा किसी यत्नसे वर्षभरके पाप नष्ट नहीं होते हैं, शुक्र और बृहस्पतिका शिशुपन और मूढता अर्थात् अस्त व्रतके आरम्भमें बाधक नहीं हैं ।।६२।। मनुष्य पहिले चातुर्मास्य व्रत करनेमें खंडत्वका विचार करके अर्थात् खंड अंगमें व्याप्त सूर्य और तिथि अखंड हो तो आरंभ करें। अशुचि हो या शुचि हो, स्त्री हो या पुरुष हो ।।६३।। मनुष्य व्रत करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है। देवकर्म और पितृ कर्ममें संक्रांतिरहित मास वर्जित हैं ।।६४।। और वुद्धिमान् मनुष्य मलरूप जो अशौच है उसका त्याग करे। प्रतिवर्ष जो मनुष्य हरिको

देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कतेजसा ॥ मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम् ॥६६॥ देवतायतने नित्यं मार्जनं जलसेचनम् ॥ प्रलेपनं गोमयेन रङ्गवल्ल्यादिकं तथा ॥६७॥ यः करोति नरश्रेष्ठ चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥ समाप्तौ च यथाशक्त्या कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥६८॥ सप्तजन्मसु विप्रेन्द्र सत्यधर्मपरो भवेत् ॥ दध्ना क्षीरेण चाज्येन क्षौद्रेण सितया तथा ॥ ६९ ॥ स्नापयेद्विधिना देवं चातुर्मास्ये जनाधिप ॥ स याति विष्णुसारूप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते॥७०॥ नृपेण भूमिर्दातव्या यथाशक्त्या च कांचनम् ॥ विप्राय देवमुद्दिश्य सफलं च प्रदक्षिणम् ॥७१॥ अक्षयांल्लभते भोगान्स्वर्ग इन्द्र इवापरः ॥ लोकं च समवाप्नोति विष्णोरत्र न संशयः ॥ ७२ ॥ देवाय

स्मरण करता हुआ इस व्रतको करता है ॥६५॥ वह अंतसमय में अतिप्रकाशमान सूर्यके समान तेज वाले विमान में बैठकर विष्णुलोकमें जाकर महाप्रलयपर्यन्त आनंद पूर्वक निवास करता है ॥६६॥ देवताओंके मंदिरको नित्य साफ करना और जलका छिड़काव करना तथा गोबरसे लीपना एवं रंगसे वल्ली आदि करना ॥ ६७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! चातुर्मास्यमें जो इन ऊपरके श्लोकमें कही हुई बातोंको आलस्य त्याग कर करता है और व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मण भोजन कराता है ॥ ६८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! वह सात जन्म तक सत्य और धर्ममें तत्पर रहता है, दही, दूध घी, शहद तथा शर्करासे ॥ ६९ ॥ हे जनाधिप ! इन पांचों वस्तुओंसे जो चातुर्मास्यमें विधि पूर्वक देव को स्नान कराता है वह विष्णुकी सारूप्य मुक्ति प्राप्त करके अक्षय सुख प्राप्त करता है ॥७०॥ राजा द्वारा देवता के उद्देश्य से ब्राह्मणको नारियल और दक्षिणा समेत यथाशक्ति भूमि सुवर्ण देना चाहिये ॥ ७१ ॥ वह

हैमपद्मं तु दद्यान्नैवेद्यसंयुतम्॥ गन्धपुष्पाक्षताद्यैर्यो देवब्राह्मणयोरपि॥७३॥ पूजां यः कुरुते नित्यं चातुर्मास्ये व्रती नरः॥ अक्षयं सुखमाप्नोति पुरन्दरपुरं व्रजेत्॥७४॥ यस्तु वै चतुरो मासांस्तुलस्या हरिमर्चयेत्॥ तुलसीं काञ्चनीं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७५॥ काञ्चनेन विमानेन वैष्णवीं लभते गतिम्॥ देवाय गुग्गुलुं यो वै दीपं चार्पयते नरः ॥७६॥ स भोगी जायते श्रीमांस्तथा सौभाग्यवानपि ॥ समाप्तौ धूपिकां दद्याद्दीपिकां च विशेषतः ॥७७॥ प्रदक्षिणां तु यः कुर्यान्नमस्कारं विशेषतः ॥ अश्वत्थस्याथ वा विष्णोः कार्त्तिक्यामवधिर्भवेत् ॥ ७८ ॥ पादं पादान्तरे न्यस्य करौ कृत्वा तु संयुतौ ॥ स्तुतिं वाचि हृदि ज्ञानं चतुरंगा प्रदक्षिणा ॥ ७९ ॥ संध्यादीपप्रदो

स्वर्गमें दूसरे इन्द्रके समान अक्षय लोक को प्राप्त करता है और विष्णु लोकको प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं है ।। ७२ ।। देव जो भगवान् हैं उन्हें नैवेद्य युक्त सुवर्णका कमल दान करे और गंध, पुष्प, अक्षत आदि द्वारा भगवान्‌की और ब्राह्मणकी पूजा करे ।। ७३ ।। चातुर्मास्यमें जो व्रती नित्य प्रति पूजन करता है वह अक्षय सुखको प्राप्त करता है और इन्द्रलोक को जाता है ।।७४।। जो चार महीने तुलसीसे हरिका पूजन करता है और सुवर्णकी तुलसी बनवाय ब्राह्मण को दान करे ।। ७५ ।। वह सोनेके विमानमें चढ़कर वैष्णवी गतिको प्राप्त करता है। और जो भगवान् को गुगलकी धूप और दीप अर्पण करता है ।।७६।। वह श्रीमान् तथा सौभाग्यवान् होता है और समाप्तिमें धूप की सुगंधि और विशेष रूपसे दीपदान करे ।। ७७ ।। पीपल अथवा विष्णुकी प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार की अवधि कार्तिकी है ।।७८।। पादको पादान्तरमें रख और हाथोंको जोड़कर वाणीसे

यस्तु प्रांगणे द्विजदेवयोः ॥ समाप्तौ दीपिकां दद्याद्वस्त्रं तैलं सकाञ्चनम् ॥८०॥ वायुमालभते यस्तु तेजस्वी स भवेदिह ॥ वैमानिको भवेद्देवो गन्धर्वाप्सरसेवितः ॥ ८१ ॥ विष्णुपादोदकं यस्तु पिबेत् कृच्छ्रात्स मुच्यते ॥ विष्णोर्लोकमवाप्नोति न चास्मिञ्जायते नरः ॥८२॥ शतमष्टोत्तरं यस्तु गायत्रीजपमाचरेत् ॥ त्रिकालं वैष्णवे हर्म्ये न स पापेन लिप्यते ॥८३॥ अक्षसूत्रं पुस्तकं च धत्ते पद्मं कमण्डलुम् ॥ चतुर्वक्त्रा तु गायत्री श्रोत्रियाणां मुखे स्थिता ॥८४॥ सर्वलोकमयी देवी गायत्री या त्रयीमयी ॥ नित्या शास्त्रसमाख्याता लोकान् या तु प्रबोधयेत् ॥ ८५ ॥ व्यासस्तुष्यति तस्याशु विष्णुलोकं स गच्छति ॥ अत्र चोद्यापनं शास्त्रपुस्तकं दानमेव च ॥ ८६ ॥

स्तुति करे और हृदयमें ज्ञान रखे यह चतुरंगी प्रदक्षिणा है ।। ७९ ।। संध्याके समय द्विज और देवके आंगनमें जो दीपदान करता है और समाप्त होने पर दीपिका वस्त्र, तैल और सुवर्णका दान करे ।। ८० ।। जो पवन करता है वह तेजस्वी होता है और विमान में बैठनेवाला गंधर्व तथा अप्सराओं से सेवित देवता होता है ।। ८१ ।। और जो विष्णुका चरणोदक पीता है वह कष्टसे छूट जाता है, और विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता है ।। ८२ ।। और त्रिकाल विणुके मंदिर में अष्ठोत्तरशत गायत्रीका जो जप करता है वह पापसे लिप्त नहीं होता है ।। ८३ ।। जपमाला, पुस्तक, पद्म और कमंडलुको धारण किये, चार मुख वाली गायत्री देवी श्रोत्रिय पुरुषोंके मुखमें स्थित रहती हैं ।। ८४ ।। सर्व लोकमयी, वेदत्रयी, शास्त्रों में वर्णित जो नित्या गायत्री है वह लोककी रक्षा करे और बुद्धि प्रदान करे ।। ८५ ।। जो गायत्रीका ध्यान और जप करता है

सर्वविद्यासमं शांतिकरणं ललिताक्षरम् ॥ पुस्तकं सम्प्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ॥८७॥ पुराणं शृणुयान्नित्यं धर्मशास्त्रमथापि वा ॥ पुण्यवान्धनवान् भोगी सत्यशौचपरायणः ॥ ८८ ॥ ज्ञानवाँल्लोकविख्यातो बहु शिष्यः सुधार्मिकः ॥ काञ्चनेन युतं वस्त्रं पुस्तकं च निवेदयेत् ॥८९॥ नाममन्त्रव्रतपरः शंभोर्वा केशवस्य च ॥ समाप्तौ प्रतिमां दद्यात्तस्य देवस्य काञ्चनीम् ॥९०॥ पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः ॥ कपालशूलखट्वांगी चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥९१॥ त्वया सुराणाममृतं विहाय हलाहलं संहृतमेव यस्मात् ॥ तथाऽसुराणां त्रिपुरं च दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीश ॥९२॥ त्वद्रूपदाता बहुपुण्यवांश्च दोषैर्विमुक्तश्च गुणाल-

उससे व्यास प्रसन्न होते हैं और वह विष्णुलोकको जाता है, उद्यापन में शास्त्रीय पुस्तकोंका दान भी कहा है ॥ ८६ ॥ सब विद्याओंके समान शांति करनेवाले मनोहर अक्षर जिसमें हैं ऐसी पुस्तक मैं दान करता हूँ। भारती मुझपर प्रसन्न हों ॥८७॥ नित्य पुराण या धर्मशास्त्र सुननेसे पुण्यवान् मनुष्य सत्य तथा शौचमें परायण होता है ॥८८॥ ज्ञानवान् लोकमें विख्यात बहुत शिष्य-वाले अच्छे धर्मात्मा को सुवर्ण से युक्त वस्त्र और पुस्तक दान करता हूं ॥ ८९ ॥ विष्णु या शिवके नाम मंत्र और व्रतमें तत्पर होकर व्रतकी समाप्तिमें उनकी सुवर्णमयी प्रतिमाको दान करे ॥ ९० ॥ पंचमुख वृष पर चढे हुये और प्रत्येक मुखमें त्रिलोचन कपाल शूल खट्वांगको धारण किये हुये चन्द्र जिनके मस्तकमें है ऐसी सदाशिवकी मूर्ति बनवाकर दान करे ॥ ९१ ॥ हे ईश! जैसे आपने देवताओं के लिए अमृत छोड़कर विषका पान किया और लोकके कल्याणके लिये एक बाणसे असुरोंका त्रिपुर जलाया

योऽहम् ॥ तथा कुरु त्वां शरणं प्रपद्ये मम प्रभो देववर प्रसीद ॥ ९३ ॥ कृतनित्यक्रियो भूत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ सूर्यमण्डलमध्यस्थ देवं ध्यात्वा जनार्दनम् ॥ ९४ ॥ समाप्तौ कांचनं दद्याद्रक्तवस्त्रं च गां तथा ॥ आरोग्यं पूर्णमायुश्च कीर्तिर्लक्ष्मीर्बलं भवेत् ॥ ९५ ॥ तिलहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये दिने दिने ॥ भक्त्या व्याहृतिभिर्मन्त्रैर्गायत्र्या वा व्रतान्वितः ॥९६॥ अष्टोत्तरशतं चाथ अष्टाविंशतिरेव वा ॥ तिलपात्रं समाप्तौ तु दद्याद्विप्राय धीमते ॥९७॥ वाङ्मनः कायजनितैः पापैर्मुच्येत संचितैः ॥ न रोगैरभिभूयेत लभेत्संततिमुत्तमाम् ॥ ९८ ॥ देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थफलप्रद ॥ तिलपात्रं प्रदास्यामि तेन पापं व्यपोहतु ॥ ९९ ॥ अन्नहोमं तु

॥९२॥ तुम्हारे रूपका दाता और बहुत पुण्यकरके मैं दोषों से मुक्त हो गुणकी खानि बन गया हूँ। अब अपनी शरणमें ग्रहण करो हे देववर! मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥९३॥ नित्यक्रिया करके सूर्यमंडल के मध्यमें स्थित जनार्दन देवको ध्यान करके सूर्यके लिये अर्घ्यदान करे ॥ ९४ ॥ समाप्तिमें सुवर्णका दान करे, लाल वस्त्र तथा गौका दान करे तो आरोग्य पूर्ण आयु, कीर्ति लक्ष्मी और बल प्राप्त हो ॥९५॥ जो चातुर्मास्यमें प्रति दिन तिलोंका होम भक्तिपूर्वक व्याहृतियुक्त मंत्र से अथवा गायत्रीसे व्रतयुक्त करता है ॥ ९६ ॥ अष्टोत्तरशत या अट्ठाईस तिलके पात्र समाप्ति पर बुद्धिमान् ब्राह्मणको दान करता है ॥ ९७ ॥ वह वाणी, मन, काय से संचित पापोंसे छूट जाता है और उसे रोग नहीं होता है, उत्तम संततिको प्राप्त करता है ॥ ९८ ॥ हे देवदेव! जगन्नाथ! वांछित फल देनेवा` मैं तिलपात्रका दान करता हूँ उससे मेरे पाप नष्ट हों ॥९९॥ जो आलस्यरहित

यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥ समाप्तौ घृतकुम्भं तु वस्त्रकांचनसंयुतम् ॥ १०० ॥ आरोग्यं कान्तिमतुलां पुत्रसौभाग्यसम्पदः ॥ शत्रुक्षयं च लभते ब्रह्मणः प्रतिमो भवेत् ॥१॥ अश्वत्थसेवां यः कुर्यात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ विष्णुभक्तो भवेत्पश्चादन्ते वस्त्रं प्रदापयेत् ॥२॥ सकाञ्चनं ब्राह्मणाय नव रोगान्स विन्दते ॥ तुलसीं धारयेद्यस्तु विष्णुप्रीतिकरीं शुभाम् ॥३॥ विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्विष्णुमुद्दिश्य पाण्डव॥४॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे दूर्वाममृतसम्भवाम्॥ सदा प्रातर्वहेन्मूर्ध्नि शुद्धात्मा च ऋतुद्वये ॥५॥ मन्त्रेणानेन राजेन्द्र लक्ष्मीनाथस्य तुष्टये ॥ त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वंदिताऽसि सुरासुरैः ॥६॥

होकर चातुर्मास्यम अन्नका हवन करता है और समाप्तिमें वस्त्र तथा सुवर्णयुक्त घृतकुंभका दान करता ॥१००॥ वह आरोग्यता तथा अति सुंदर पुत्र, अतुल संपत्ति को प्राप्त करता है और उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं। और वह ब्रह्माके समान हो जाता है ॥ १ ॥ और जो पीपलकी सेवा करता है वह सब पापों से छूट जाता है। और विष्णु भक्त हो जाता है। अंतमें वस्त्र का दान करे ॥ २ ॥ तथा सुवर्णसमेत वस्त्रका ब्राह्मणको दान देनेसे रोग से छुटकारा मिलता है और जो विष्णु को प्रसन्न करने-वाली तुलसीको धारण करता है ॥३॥ वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है और सब पापोंसे छूट जाता है, हे पांडव ! तदनन्तर विष्णुके निमित्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ४ ॥ और जो शुद्धात्मा पुरुष दोनों ऋतुओंमें हृषीकेश भगवान्के शयन करने पर अमृतसे उत्पन्न दूर्वाको प्रातःकाल सदा मस्तक पर धारण करता है ॥५॥ हे राजेन्द्र ! लक्ष्मीनाथकी प्रसन्नताके लिए उसका मंत्र यह है कि, हे दूर्वे !

सौभाग्यं सन्ततिं दत्त्वा सद्यः कार्यकरी भव॥ व्रतान्ते च कुरुश्रेष्ठ दूर्वां स्वर्णविनिर्मिताम्॥७॥ साग्रां सर्वदलोपेतां सवस्त्रां द्विजपुंगवे॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं मन्त्रेणानेन सुव्रत॥८॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले॥ तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम्॥९॥ एवं व्रतं यः कुरुते चातुर्मास्यमतन्द्रितः॥ न च दुःखभयं तस्य न च रोगभयं भवेत्॥११०॥ नाशुभं प्राप्नुयाज्जातु पापेभ्यः प्रविमुच्यते॥ भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् स्वर्गलोके महीयते॥११॥ गीतं तु देवदेवस्य केशवस्य शिवस्य वा॥ करोति नित्यमाप्नोति नरो जागरणे फलम्॥१२॥ व्रतान्ते च व्रती दद्याद्घण्टां देवाय सुस्वराम्॥ गुरोरवज्ञया यच्चानध्यायेऽध्ययनं कृतम्॥१३॥ सरस्वति जगन्नाथे

तू अमृत से उत्पन्न है और सुर, असुर द्वारा वंदनीय हो ।६।। सौभाग्य और संततिको देनेवाली शीघ्रही कार्य पूर्ण करनेवाली हो, हे कुरुश्रेष्ठ ! व्रतके अंतमें सुवर्णकी बनी हुई दूर्वाका ।। ७ ।। जो पत्तों से युक्त हो हे सुव्रत ! वस्त्र दक्षिणायुक्त इस मंत्रसे श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान करे ।।८।। जैसे तू शाखा प्रशाखासे पृथ्वी तलमें फैली है वैसे ही तू मुझे अजर-अमर संतान दे ।। ९ ।। इस प्रकार निरालस्य होकर जो चातुर्मास व्रत करता है उसको दु:ख का भय नहीं होता है और न रोगका भय रहता है ।। ११० ।। और न कभी अशुभको प्राप्त होता है और पापोंसे छूट जाता है । सब प्रकारके सुख और आनंद को प्राप्त करता है ।।११।। जो मनुष्य भगवान् केशव अथवा शिवजीका गीत नित्य गाता है वह जागरनके फलको प्राप्त करता है ।।१२।। व्रती मनुष्य व्रतके अंतम अच्छे बजने वाले घंटाका दान करे । गुरुकी अवज्ञासे अनध्यायमें अध्ययन कर जो पाप किया ।। १३ ।। हे सरस्वती हे जगत्की स्वामिनी ! और हे जगतकी जडता दूर करनेवाली ! हे साक्षात ब्रह्माकी स्त्री ! और

जगज्जाडयापहारिणि ॥ साक्षाद्ब्रह्मकलत्रं च विष्णुरुद्रादिभिःस्तुते ॥ १४ ॥ तन्ममाध्ययनोत्पन्नं जाडयं हर वरानने ॥ घण्टानादेन तुष्टा त्वं ब्रह्माणी लोकपावनी ॥ १५ ॥ विप्रपाद विनिर्मुक्तं तोयं यः प्रत्यहं पिबेत् ॥ चातुर्मास्ये नरो भक्त्या मद्रूपं ब्राह्मणं स्मरन् ॥१६॥ मनोवाक्कायजनितैर्मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेत श्रीरायुस्तस्य वर्द्धते॥१७॥ समाप्तौ गोयुगं दद्याद्गामेकां वा पयस्विनीम्॥ तत्राप्यशक्तौ राजेन्द्र दद्याद्वासोयुगं व्रती ॥१८॥ ब्राह्मणं वन्दते यस्तु सर्वदेवमयं स्मृतम् ॥ कृतकृत्यो भवेत्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१९॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभक्तिपरो नरः ॥ समाप्तौ भोजयेद्विप्रानायुर्वित्तं च विंदति ॥१२०॥ सन्ध्यां प्रातर्नरः कृत्वा

विष्णु रुद्र आदि देवताओं द्वारा वंदनीय ।।१४।। हे वरानने ! यह मेरी अध्ययनसे उत्पन्न जडता दूर करो और ब्रह्माणी तथा लोकको पवित्र करनेवाली तुम घण्टाके नादसों प्रसन्न हो ।।१५।। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें ब्राह्मणके चरण को धोकर प्रतिदिन भक्तिसे पीता है और ब्राह्मणको मेराही रूप जानता है ।।१६।। वह मानसिक, वाचिक और कायिक सभी पापोंसे छूट जाता है, उसे रोग कभी नहीं होता है और उसकी लक्ष्मी तथा आयु बढ़ती है ।। १७ ।। व्रत समाप्त पर दो गौओंको दान करे अथवा दूध देनेवाली एकही गौका दान दे । इसमें असमर्थ हो तो वस्त्रों का जोड़ा दान करे ।।१८।। सर्वदेवमय ब्राह्मणको जो नित्य नमस्कार करता है वह शीघ्र ही कृतकृत्य हो जाता है और सब पापों से छूट जाता है।। १९ ।। पितरोंकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य अक्षय सुखको प्राप्त करता है और जो व्रतकी समाप्ति पर ब्राह्मण भोजन कराता है वह आयु और धनको प्राप्त करता है।। २० ।।

समाप्तौ घृतकुंभदः ॥ वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २१॥ सारस्वतं याति तत्त्वं विद्यावांस्तु भवेदिति ॥ संस्पृशेत्कपिलां यो वै नित्यं स च भवेद्धनी ॥२२॥ तामेवालंकृतां दद्यात्सर्वां भूमिमथापि वा ॥ सार्वभौमो भवेद्राजा दीर्घायुश्च प्रतापवान् ॥ २३ ॥

दानशीलः सदारंभः सर्वसंकटवर्जितः ॥ रूपवान् भाग्यसम्पन्नो लभते सुखमक्षयम् ॥२४॥ स वसेदिन्द्रवत्स्वर्गे वत्सरान् रोमसंमितान् ॥ नमस्करोति यः सूर्यं गणेशं वापि नित्यशः ॥२५॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते कान्ति-मुत्तमाम् ॥ विघ्नराजप्रसादेन प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ॥२६॥ सर्वत्र विजयं चैव नात्र कार्या विचारणा ॥ रविः

जो मनुष्य प्रातःकाल संध्यावन्दनके बाद घृतकुंभका दान करता है। वस्त्रोंका जोडा, तिल तथा घण्टा ब्राह्मणको निवेदित करे ।।२१।। वह सरस्वतीके तत्त्वको प्राप्त कर और विद्यावान् होता है और जो कपिला गौका दान करता है वह धनी होता है ।।२२।। उस कपिलाको अलंकृत करके दान करे अथवा सब भूमिको दान करे वह दीर्घायु और प्रतापी सार्वभौम राजा होता है ।। २३ ।। दानशील और सदा आरंभ करनेवाला मनुष्य सब संकटोंसे रहित होकर रूपवान तथा भाग्यसंपन्न होकर अक्षय सुखको प्राप्त होता है ।। २४ ।। वह देहके रोमोंके प्रमाण वर्षों तक स्वर्गमें इन्द्रके समान निवास करता है और जो गणेश अथवा सूर्यको नित्य नमस्कार करता है ।।२५।। वह विघ्न विनाशक गणेशजी के प्रसादसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा उत्तम कांति, और वांछित फलको प्राप्त करता है ।।२६।। और सर्वत्र विजयको प्राप्त करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है लाल सिंदूरके समान

कार्यः सुवर्णस्य सिंदूरारुणसन्निभः ॥२७॥ निवेदयेद्ब्राह्मणाय सर्वकामार्थसिद्धये ॥ उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा ॥२८॥ पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते॥ अष्टांगसहितं भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥२९॥ स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥ यस्तु रौप्यं शिवप्रीत्यै दद्याद्वर्षाकृतुत्रये ॥१३०॥ ताम्रं वा प्रत्यहं दद्यात्स्वशक्त्या शिवतुष्टये ॥ सुरूपाँल्लभतेपुत्रान् रुद्रभक्तिपरायणान् ॥३१॥ समाप्तौ मधुपूर्णं तु पात्रं राजतमुत्तमम्॥ प्रदद्यात्ताम्रदानेन ताम्रपात्रं गुडान्वितम् ॥३२॥ ताम्रं पुष्टिकरं सर्वदेवप्रियकरं शुभम्॥ सर्वरक्षाकरं नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥३३॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे स्वर्णदानं स्वशक्तितः ॥ वस्त्रयुग्मं तिलैः सार्द्धं दत्त्वा

सुवर्णका सूयं बनवाकर ॥२७॥ समस्त कामनाओ की प्राप्ति के लिये ब्राह्मणको दान करे जो छाती, शिर, मन, वचन, ॥ २८ ॥ चरणों, हाथों तथा घुटनों से प्रणाम कहा गया है। ऐसा साष्टांग प्रणाम करके भूमिको नमस्कार कर पूजन करता है ॥ २९ ॥ वह जो गति प्राप्त करता है वह सौ यज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त कर सकता है। और जो तीन वर्षाॠतुमें शिवजीकी प्रसन्नताके लिये रौप्य का दान करता है ॥ ३० ॥ अथवा शिव की प्रसन्नताके लिये प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुसार जो तांबेका दान करता है वह शिव भक्तिमें परायण स्वरूपवान् पुत्रको प्राप्त करता है ॥ ३१ ॥ व्रतकी समाप्ति में शहदसे पूर्ण चांदीका पात्र उत्तम है उसका दान करे और तांबेके दानमें तांबे के पात्रको गुडसे भरकर दान करे ॥३२॥ तांबा पुष्टिकर और सब देवताओंको प्रिय तथा शुभ और सदा सब प्रकार रक्षा करने वाला है अतः मुझे भी शांति प्रदान करे ॥ ३३ ॥ जो हृषीकेश भगवान् के शयन

दोषैः प्रमुच्यते॥३४॥ इह भुक्त्वा महाभोगानन्ते शिवपुरं व्रजेत्॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं नित्यदानं च धान्यकम्॥३५॥ नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतत् सदक्षिणम् ॥ वस्त्रदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये द्विजातये ॥३६॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः स विष्णुः प्रीयतामिति॥ शय्यां दद्यात्समाप्तौ तु वासः काञ्चनपट्टिकाम्॥३७॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति धनं च धनदोपमम् ॥ यो गोपीचन्दनं दद्यान्नित्यं वर्षासु मानवः ॥ ३८ ॥ श्रीपतिस्तस्य सन्तुष्टो मुक्तिं भुक्तिं ददाति च ॥ यद्वै देवांगसंलग्नं कुंकुमादिविलेपनम् ॥ ३९ ॥ जलक्रीडासु गोपीनां द्वारवत्या मृदान्वितम् ॥ गोपीचन्दनमित्युक्तं मुनीन्द्रैः किल्बिषापहम्॥१४०॥ तस्माद्देयं प्रयत्नेन विष्णुर्दिशति वाञ्छितम् ॥ समाप्तावपि

करने पर अपनी शक्तिसे सोने, वस्त्रोंके जोड़े और तिल दान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ।। ३४ ।। और इस लोकमें बड़े भोगको भोगकर अंतमें शिवपुरको जाता है, सोना, चांदी, तांबा और धान्य इनका नित्य दान कहा है ।।३५।। नित्य श्राद्ध देवपूजा ये सब दक्षिणासमेत करने योग्य हैं, जो चातुर्मास्यमें ब्राह्मणों को वस्त्र दान करता है ।। ३६ ।। गंध पुष्प आदिसे पूजन करके ऐसा कहता है कि, विष्णु भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो और जो व्रतकी समाप्त होने पर शय्या दान, वस्त्र, सोनेकी पट्टी दान करता है ।।३७।। वह अक्षय सुख और कुबेरके समान धनको प्राप्त करता है। जो मनुष्य वर्षाऋतुमें नित्य गोपीचंदनका दान करता है ।। ३८ ।। श्रीपति संतुष्ट होकर उसे भुक्ति-मुक्ति देते हैं, देवताके अंगमें लगा हुआ जो कुंकुम आदि विलेपन है ।। ३९ ।। और जल-क्रीडामें गोपियोंके अंगसे गिरा हुआ चंदन आदि द्वारावतीकी मृत्तिका से युक्त पापका नाश करनेवाला है

तद्द्यात्तुलापरिमितं शुभम् ॥ ४१ ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा सवस्त्रं च सदक्षिणम् ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु
व्रतान्वितः ॥४२॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं शर्करामपि वा गुडम् ॥ अमृतस्य कला प्रोक्ता इक्षुसारजशर्करा ॥४३॥
तस्या ज्ञानेन सन्तुष्टो भानुर्दिशति वांछितम् ॥ एवं व्रतं तु सम्पूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥४४॥ कारयेत्ताम्रपात्राणि
प्रत्येकं तु पलाष्टकम् ॥ वित्तशाठ्यमकुर्वाणो यद्वा पलचतुष्टयम् ॥४५॥ अष्टौ चत्वार्यथैकैकं प्रत्येकं च सशर्करम् ॥
दक्षिणाफलवस्त्रेण प्रत्येकं वेष्टितानि च ॥ ४६ ॥
सप्तधान्यानि विप्रेभ्यः श्रद्धया प्रतिपादयेत् ॥ ताम्रपात्रं सवस्त्रं च शर्कराहेमसंयुतम् ॥४७॥ सूर्यप्रीतिकरं यस्मा-

उसेही मुनीश्वरों ने गोपीचन्दन कहा है ॥ १४० ॥ अतः गोपीचन्दन दान करना चाहिये, उससे भगवान् विष्णु वांछित फलको देते हैं और जो व्रतकी समाप्ति पर एक तुला प्रमाण सुंदर गोपीचन्दनका दान करता है ॥ ४१ ॥ चाहे आधा या उसका भी आधा वस्त्र और दक्षिणासमेत जो व्रती पुरुष हृषिकेश भगवान्के सोनेपर प्रतिदिन दान देता है ॥ ४२ ॥ और दक्षिणासमेत शर्करा अथवा गुडका दान करे ईखके सारसे उत्पन्न शर्करा अमृतकी कला कही गई है ॥ ४३ ॥ उसके दानसे सन्तुष्ट सूर्य वांछित फल देते हैं, इस प्रकार व्रतके पूर्ण होने पर पण्डितों से उद्यापन करना चाहिये ॥४४॥ आठ-आठ पलके तौलमें हो ऐसे तांबेके पात्र बनवाये, धनका लोभ न करे । जो ऐसी शक्ति न हो तो चार-चार पलके बनवाये ॥४५॥ शक्तिके अनुसार आठ, चारि या एक बनवाये और प्रत्येक में शर्करा भरे फिर उनमें दक्षिणा और नारियल रखकर वस्त्रसे पृथक्-पृथक् बांधे ॥४६॥ और धान्यके

द्रोगघ्नं पापनाशनम् ॥ पुष्टिदं कीर्त्तिदं नृणां नित्यं सन्तानकारकम् ॥४८॥ सर्वकामप्रदं स्वर्ग्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ॥ तस्मादस्य प्रदानेन कीर्तिरस्तु सदा मम ॥४९॥ एवं व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ गन्धर्वविद्यासंपन्नः सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥१५०॥ राजापि लभते राज्यं पुत्रार्थी लभते सुतान् ॥ अर्थार्थी प्राप्नुयादर्थं निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ यस्तु वै चतुरो मासाञ्छाकमूलफलादिकम् ॥ नित्यं ददाति विप्रेभ्यः शक्त्या यत्सम्भवेद्द्विजः ॥५२॥ व्रतान्ते वस्त्रयुग्मं च शक्त्या दद्यात्सदक्षिणम् ॥ सुखी भूत्वा चिरं कालं राजयोगी भवेन्नरः ॥५३॥ सर्वदेवप्रियं यस्माच्छाकं तृप्तिकरं नृणाम् ॥ देवर्षिप्रीतिदं कन्दमूलपत्रसपुष्पकम् ॥५४॥ ददामि तेन देवाद्याः

साथ ब्राह्मणको श्रद्धा पूर्वक दान करे, वह शर्करा और सुवर्णसे युवत तांबेके पात्र दान करनेसे ।।४७।। प्रसन्न होते हैं, पुष्टि कीर्ति और मनुष्यको संतती की प्राप्ति होती है ।।४८।। सब कामनाओं और स्वर्गको देनेवाला तथा उत्तम आयुको बढ़ानेवाला है मुझे भी इसके दानसे सदा कीर्ति प्राप्त हो ।।४९।। इस प्रकार जो व्रत करता है उसके पुण्यके फलको सुनो कि गंधर्वविद्या सम्पन्न वह मनुष्य सब स्त्रीयों का प्रिय है ।। १५० ।। राजा राज्यको, पुत्रार्थी पुत्र को, धनकी इच्छावाला धनको, और जो वासनारहित है वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।।५१।। जो शक्ति के अनुसार चार महीने शाक, मूलफल आदि नित्य ब्राह्मणको दान करता है ।।५२।। व्रतके अंतमें शक्तिके अनुसार दक्षिणासमेत वस्त्रों के जोड़े का दान दे वह मनुष्य बहुत कालपर्यंत सुख भोगकर राजयोगी होता है ।।५३।। जो मनुष्योंको तृप्ति कारक शाक, सब देवताओंको प्रिय मूल-पत्र पुष्पसमेत कंद आदि दान

सदा कुर्वन्तु मंगलम् ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु ऋतुद्वये ॥५५॥ दद्यात्कटुत्रयं मर्त्यो गृहपर्याप्तमादरात् ॥ ब्राह्मणाय सुशीलाय दिनेशप्रीतयेऽनघ ॥५६॥ दक्षिणासहितं विप्रे मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ कटुत्रयमिदं यस्माद्रोगघ्नं सर्वदेहिनाम् ॥५७॥ तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु भास्करः ॥ एवं कृत्वा व्रतं सम्यक् कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥५८॥ कृत्वा स्वर्णमयीं शुण्ठीं मरिचं मागधीमपि ॥ सवस्त्रां दक्षिणायुक्तां दद्याद्विप्राय धीमते ॥५९॥ एवं व्रतं यः कुरुते स जीवेच्छरदां शतम् ॥ प्राप्नुयादीप्सितानर्थानन्ते स्वर्गं व्रजेदिति ॥१६०॥ मुक्ताफलानि यो दद्यान्नित्यं विप्राय सन्मतिः ॥ अन्नवान्कीर्तिमाञ्छ्रीमाञ्जायते वसुधाधिपः ॥ ६१ ॥ चातुर्मास्ये प्रत्यहं तु क्षीरकुम्भं प्रदापयेत् ॥

करता है ॥५४॥ उससे देवता आदि सदा मंगल करते हैं। जो हृषीकेशके शयन करने पर दो ऋतुओंमें प्रतिदिन ॥५५॥ हे अनघ ! कटुत्रय अर्थात् सोंठ, मिरच, पीपरको आदरसे सूर्यकी प्रसन्नताके लिये दान करता है ॥५६॥ हे सुव्रत ! दक्षिणा सहित ब्राह्मण को इस मंत्रसे कि, यह त्रिकटु सब देवोंके रोगको नाश करनेवाला है ॥५७॥ अतः इसका दान करके सूर्य को प्रसन्न करे और भलीभांति व्रतको करके बुध नर उद्यापनको करे ॥५८॥ सुवर्णकी सोंठ, मीर्च, पीपर बनवायके वस्त्रयुक्त दक्षिणा समेत बुद्धिमान् ब्राह्मणको दान दे ॥५९॥ इस प्रकार जो व्रत करता है वह सौ वर्ष तक जीता है और वाञ्छित फल प्राप्त कर अन्त में स्वर्ग को जाता है ॥ १६० ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य नित्य ब्राह्मणों को मोती दान करता है, हे राजन् ! वह अन्नवान् कीर्तिवान् और श्रीमान् होता है ॥६१॥ जो चातुर्मास्यमें प्रतिदिन दूधके घटको उत्तम वस्त्रमें लपेट करके दक्षिणासमेत दान

वेष्टयित्वा सुवस्त्रेण फलैर्दक्षिणया सह ॥६२॥ सुवासिनीं श्रियं मत्वा गन्धपुष्पैरथार्चयेत् ॥ ताम्बूलं फलमेकं वा दद्याच्छ्रीपतये नमः ॥६३॥ समाप्तौ योषितं विप्रं सूक्ष्मवस्त्रविभूषणैः ॥ मिथुनं पूजयित्वा तु जातिपुष्पैः सुशोभनैः ॥६४॥ पुमांस्तु स्त्रियमाप्नोति नारी भर्तारमाप्नुयात् ॥ पुमांस्तु श्रियमाप्नोति सकलामिव माधवः ॥ ६५ ॥ ताम्बूलदानं यः कुर्याद्वर्जयेद्वा जितेन्द्रियः ॥ रक्तवस्त्रद्वयं दद्यात्करकं च सदक्षिणम् ॥६६॥ महालावण्यमाप्नोति सर्वरोग विवर्जितः ॥ मेधावी सुभगः प्राज्ञो रक्तकण्ठश्च जायते ॥६७॥ गन्धर्वत्वमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ तांबूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥६८॥ अस्य प्रदानाद्ब्रह्माद्याः श्रियं ददतु पुष्कलाम् ॥ पूगे ब्रह्मा हरिः पत्रे

करता है ।। ६२ ।। और सुवासिनीको लक्ष्मी मानकर गंधपुष्पसे पूजन करे, तांबूलको या एक फलको "श्रीपतये नमः" कहकर दान करे ।। ६३ ।। और व्रतकी समाप्ति पर स्त्रीसहित ब्राह्मणको सुंदर शोभायमान चमेलीके फूलों से पूजन करे ।।६४।। तो पुरुष स्त्रीको, और स्त्री पुरुषको प्राप्त हो और पुरुषस्त्रीको ऐसे प्राप्त होता है जैसे कला समेत लक्ष्मीको माधव प्राप्त हुये ।।६५।। जो जितेन्द्रिय पुरुष तांबूलको दान करते हैं अथवा उसको छोड़ देते हैं तथा लाल वस्त्रोंको दक्षिणा समेत कमण्डलुको दान करता है ।।६६।। वह अत्यन्त सुंदरताको प्राप्त होता है, और सब रोगों से छुटकारा पा जाता है और बुद्धिमान् सुंदर पण्डित तथा मधुरकंठ हो जाता है ।।६७।। गंधर्वत्वको प्राप्त होता है और स्वर्ग लोकको जाता है, तांबूल (पान) शोभा बढ़ाने वाला और कल्याणको देनेवाला है तथा ब्रह्मा विष्णु और शिवरूप हैं ।।६८।। इसके दान करनेसे ब्रह्मा आदि देवता बहुतसी

चूर्णे साक्षान्महेश्वरः ॥६९॥ एतेषां संप्रदानेन सन्तु मे भाग्यसम्पदः॥ पूरितं पूगचूर्णेन नागवल्लीदलान्वितम्॥१७०॥ सचूर्णं खादिरं चैव पत्रीफलसमन्वितम्॥ एलालवंगसंमिश्रं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्॥७१॥ कनकाढ्यं निरातंकं त्वं प्रासादात्कुरुष्व माम्॥ चातुर्मास्यव्रतोपेतः सुवासिन्यै द्विजाय च॥ ७२ ॥ नारी वा पुरुषो वाऽपि हरिद्रां सम्प्रयच्छति॥ लक्ष्मीमुद्दिश्य गौरीं वा तत्पात्रे दक्षिणान्वितम् ॥७३॥ प्रदद्याद्भक्तिसंयुक्तं देवी मे प्रीयतामिति॥ भर्त्रा सह सुखं भुंक्ते नारी नार्या तथा पुमान्॥७४॥ सौभाग्यमक्षयं धान्यं धनपुत्रसमुन्नतिम्॥ सम्प्राप्य रूपलावण्ये देवीलोके महीयते ॥७५॥ उमामहेशमुद्दिश्य चातुर्मास्ये दिने दिने॥ सम्पूज्य विप्रमिथुनं तस्मै विप्राय शक्तितः ॥७६॥

लक्ष्मीको देते हैं। सुपारीमें ब्रह्मा, पत्ते में हरि और चूनेमें साक्षात् महादेव हैं ॥ ६९ ॥ इन सबके दान करनेसे मेरा भाग्य, सम्पति अधिक बढ़े, सुपारीके चूर्ण से पूरित और नागबेलिके पत्तों से युक्त ॥१७०॥ चूना, खैर, जावित्री, और जायफल, इलायची और लौंगों से मिला हुआ तांबूल गंधर्व और अप्सराओंको प्रिय है ॥७१॥ तू प्रसन्नतासे मुझे सुवर्णयुक्त तथा आतंक रहित कर और चातुर्मास्य व्रत से युक्त सुवासिनीके और ब्राह्मणके लिए ॥७२॥ नारी या पुरुष हरिद्राको लक्ष्मी या गौरीके निमित्त पात्रमें दक्षिणा से युक्त हरिद्राको दान करे ॥७३॥ देवी मुझ पर प्रसन्न हो ऐसा कहकर जो भक्ति पूर्वक दान करता है वह नारी पतिके साथ और पुरुष स्त्रीके साथ सुख भोग करता है ॥७४॥ और वह सौभाग्य, अक्षय धान्य-धन पुत्रवृद्धि, रूप तथा लावण्यको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें आनंद करता है ॥७५॥ जो उमा और महेश के उद्देश्य से चातुर्मास्यमें प्रति दिन

दद्यात्सदक्षिणं हैममुमेशः प्रीयतामिति॥ उमेशप्रतिमां हैमीं दद्यादुद्यापने बुधः ॥७७॥ पंचोपचारैः सम्पूज्य धेनुं सवृषभां नरः ॥ भोजयेदपि मिष्टान्नं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७८॥ सौभाग्यं पूर्णमायुष्यं सन्ततिश्चानपायिनी ॥ सम्पत्तिश्चाक्षया कीर्तिर्जायते व्रतवैभवात्॥७९॥ इह भुक्त्वाऽखिलान् कामानन्ते शिवपुरं व्रजेत्॥ तत्र स्थित्वा चिरं कालमुपभुज्य सुखं महत्॥१८०॥पुण्यशेषादिहागत्य जायते धरणीपतिः॥ फलदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः॥८१॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये॥ सर्वान्मनोरथान्प्राप्य सन्ततिश्चानपायिनीम्॥८२॥ फलदानस्य माहात्म्यान्मोदते नन्दने वने ॥ पुष्पदान व्रतेनापि स्वर्णपुष्पादि दापयेत् ॥८३॥ स सौभाग्यं परं

ब्राह्मणके मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों का विधिवत पूजन कर यथाशक्ति ।।७६।। 'उमेश प्रसन्न हो' ऐसा कहकर दक्षिणा समेत सुवर्णका दान करे और धीमान् व्यक्ति उद्यापनमें सुवर्णकी बनी हुई उमेशकी प्रतिमाको दान करे ।।७७।। मनुष्य वृष समेत गौको पंचो-पचार पूजन करके उनको मिष्ठान्न भोजन कराये, उसका फल सुनो ।।७८।। सौभाग्य पूर्ण आयु, कभी न नष्ट हो ऐसी संतति-संपत्ति और अक्षय कीर्ति व्रत के प्रभाव से प्राप्त होता है ।।७९।। और इस लोकमें संपूर्ण कामनाओंको भोगकर अंतमें शिवपुरको जाता है और वहां चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास करता है ।।१८०।। पुण्यके क्षीण होने पर यहां आकर राजा होता है और जो चातुर्मास्यमें आलस्य त्याग कर फलका दान करता है ।।८१।। और व्रतकी समाप्ति पर ब्राह्मणोंको चांदी दान करता है वह सब मनोरथको और अनपायिनी संतति प्राप्त कर ।। ८२ ।। फलदानके माहात्म्य से नदनवनमें आनंद

प्राप्य गन्धर्वपदमाप्नुयात् ॥ वासुदेवे प्रसुप्ते तु चातुर्मास्यमतंद्रितः ॥८४॥ नित्यं वामनमुद्दिश्य दध्यन्नं स्वादु षड्रसम् ॥ भोजयेदथवा दद्यादेकादश्यां न भोजयेत् ॥ ८५ ॥ दानमेवं प्रकुर्वीत ग्रहणादौ तथैव च ॥ अशक्तो नित्यदाने तु कुर्यात्पञ्चसु पर्वसु ॥८६॥ भूताष्टम्याममायां च पूर्णिमायां तथापि च ॥ प्रत्यर्कवारमथवा प्रति-भार्गववासरम् ॥८७॥ पक्षद्वयेऽपि द्वादश्यामवश्यं दानमेव च ॥ एवं कृत्वा समाप्तौ तु यथाशक्ति महीं ददेत् ॥८८॥ अशक्तौ भूमिदाने तु धेनुं दद्यादलंकृताम् ॥ तत्राप्यशक्तौ वासश्च सरुक्मं पादुके तथा ॥८९॥ छत्रोपानद्वस्त्रयुतं दानं सर्वं प्रशस्यते ॥ द्विजानां भोजनं चैव क्षत्रियस्य यथासुखम् ॥१९०॥ भूम्यादि मुनिशार्दूल वैश्यस्य वसुधां

करता है, पुष्पदानके व्रतमें भी सुवर्णके पुष्प आदिका दान करे; ॥८३॥ वह परम सौभाग्यको प्राप्त कर गंधर्वपदको प्राप्त करता है। वासुदेवके शयन करने पर चातुर्मास्यमें आलसको छोड़कर ॥८४॥ वामन भगवान्के नाम पर दही भात और स्वादयुक्त छः रस भोजन कराये अथवा दान करे परंतु एकादशीको भोजन न कराये ॥८५॥ इस प्रकारसे दान करे और ग्रहण आदि पर्व पर भी ऐसा ही करे, यदि नित्य दान देनेकी सामर्थ्य न हो तो पांच पर्वमें दान करे ॥८६॥ चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा अथवा प्रत्येक रविवारको या प्रत्येक शुक्रवारको ॥८७॥ और दोनों पक्षों में द्वादशीके दिन दान करे। इस प्रकार से समाप्त होने पर शक्तिके अनुसार भूमिका दान करे ॥८८॥ और यदि भूमिदान की सामर्थ्य न हो तो अलंकार से शोभित गौको दान करे इसमें भी असमर्थ हो तो वस्त्र सुवर्ण और पादुकाको दान करे ॥८९॥ वस्त्रन समेत छाते और जूते का दान सब दानोंमें उत्तम है। ब्राह्मणको तो भोजन और

विना ॥ ब्राह्मणस्यापि शक्तस्य शूद्रस्यापि तथा मतम् ॥ कुबेरेण पुरा चीर्णं शंकरस्योपदेशतः ॥९१॥ जह्नुना गौतमेनापि शक्रेणापि कृतं पुरा ॥ अक्षय्यमन्नमाप्नोति पुत्रपौत्रादिसंपदम् ॥९२॥ दृढांगः पूर्णमायुष्यं लभते वैरिनाशनम् ॥ स स्थिरां विष्णुभक्तिं च प्रयाति हरिमंदिरम् ॥ ९३ ॥

आरोग्यं सौख्यमतुलं रूपं सम्पत्तिमेव च॥ न वन्ध्या जायते चेदमनन्यफलदायकम् ॥९४॥ नित्यं पयस्विनीं दद्यात्सालंकारां शुभावहाम्॥ दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स सर्वज्ञानवान् भवेत् ॥९५॥ न परप्रेष्यतां याति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभिः सहितो नरः॥९६॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्राजापत्यं चरेन्नरः॥

क्षत्रियको यथासुख भूमि ॥९०॥ हे मुनिश्रेष्ठ! वैश्यको भूमि दान छोड़कर सब प्रकारके दान कहे हैं। समर्थ ब्राह्मण तथा शूद्रको भी कहा है। प्रथम शंकरजीके उपदेश से कुबेरने यह व्रत किया ॥९१॥ और जह्नु राजाने, गौतमऋषिने और इंद्रने भी यह व्रत किया। इस व्रतको करनेवाला मनुष्य, अन्न और पुत्रपौत्र आदि संपत्तिको प्राप्त करता है ॥९२॥ उसका अंग दृढ हो जाता है और पूर्ण आयु तथा शत्रु नष्ट हो जाते हैं और अति स्थिर विष्णु भक्ति प्राप्त होती है। तथा भगवान्‌के मंदिर में जाने लगता है ॥९३॥ आरोग्य और अतुल सुखरूप तथा संपत्तिको प्राप्त करता है और इस व्रतके करनेसे स्त्री कभी भी बांझ नहीं होती यह व्रत अनन्त फलको देनेवाला है ॥ ९४ ॥ अलंकारसहित कल्याणकी देनेवाली पयस्विनी गौको दान करे और शक्तिके अनुसार दक्षिणा देनेवाला मनुष्य ज्ञानी होता है ॥ ९५ ॥ पर प्रेष्यता को नहीं प्राप्त होता है और ब्रह्मलोकको

समाप्तौ गोयुगं दद्यात्कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥९७॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ एकान्तरोपवासे तु दीपानष्टौ प्रदापयेत् ॥ ९८ ॥ वस्त्रकाञ्चनयुक्तांश्च शय्यया सह भामिनी ॥ अनडुद्वयसंयुक्तं लांगलं कर्षणक्षमम् ॥ ९९ ॥ सर्वोपस्करसंयुक्तं ददामि प्रीयतां हरिः ॥ शाकमूलफलैर्वापि चातुर्मास्यं नयेन्नरः ॥ २०० ॥ समाप्तौ गोप्रदानेन स गच्छेद्विष्णुमन्दिरम् ॥ पयोव्रती तथाऽऽप्नोति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ १ ॥ व्रतान्ते च तथा दद्याद्गामेकां च पयस्विनीम् ॥ रंभाफलपलाशेषु यो भुंक्ते च ऋतुद्वये ॥२॥ वस्त्रयुग्मं च कांस्यं च शक्त्या दद्यात्सुखी भवेत् ॥

जाता है और वह मनुष्य पितरों समेत अक्षय सुखको प्राप्त करता है ॥ ९६ ॥ वर्षाके चार महीनेमें मनुष्य प्राजापत्य व्रत करे और समाप्ति पर दो गौको दान करे और ब्राह्मणको भोजन कराये ॥९७॥ तो सब पापों से शुद्ध होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है और जो एक दिन का अंतर देकर व्रत करे और आठ दीप को दान करे ॥९८॥ वस्त्र तथा सुवर्ण से युक्त शय्या, बैलकी जोड़ी से युक्त जोतने योग्य हल ॥ ९९ ॥ सब सामग्री से युक्त दान करे और इस दान से हरि प्रसन्न हों। और शाक, मूल और फल खाकर चातुर्मास व्यतीत करे ॥ २०० ॥ समाप्ति पर गौको दान करे तो विष्णुके लोकको प्राप्त करे। और दुग्धाहारी सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है ॥ १ ॥ और व्रतोंके अंतमें एक व्याई हुई गौको दान करे। जो दोनों ऋतुमें केलाके पात्रमें भोजन करता है ॥ २ ॥ और वस्त्रके जोड़ाको और कांसेके पात्रको यथाशक्ति दान करते हैं व सुखी रहते

कांस्ये ब्रह्मा शिवो लक्ष्मीः कांस्यमेव विभावसुः ॥ ३ ॥ कांस्यं विष्णुमयं यस्मादतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ नित्यं पलाशभोजी च तैलाभ्यंगविवर्जितः ॥ ४ ॥
स निहंत्यतिपापानि तूलराशिमिवानलः ॥ ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च बालघातकरश्च यः ॥ ५ ॥ असत्यवादिनो ये च स्त्रीघाती व्रतघातकः ॥ अगम्यागामिनश्चैव विधवागामिनस्तथा ॥६॥ चाण्डाली गामिनश्चैव विप्रस्त्रीगामिनस्तथा ते सर्वे पापनिर्मुक्ता व्रतेनानेन केशव ॥७॥ समाप्तौ कांस्यपात्रं तु चतुःषष्टिपलैर्युतम् ॥ स वत्सां गां च वै दद्यात्सालंकारां पयस्विनीम् ॥८॥ अलंकृताय विदुषे सुवस्त्राय सुवेषिणे ॥ भूमौ विलिप्य यो भुंक्ते देवं नारायणं स्मरन्

हैं। कांसे में ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी हैं तथा कांसाही अग्नि है। ॥ ३ ॥ कांसा विष्णुमय है अतः मुझे शांति दें नित्यही पत्तोंमें भोजन करे और तेल न लगाये ॥४॥ वह अपने पापोंको ऐसे भस्म कर देता है जैसे रुईके ढेरको अग्नि जला देती है, ब्रह्महत्यारा, शराबी, बाल-हत्या करनेवाला, ॥५॥ असत्यवादी स्त्री तथा व्रतके घाती, अगम्यागामी, विधवागामी ॥ ६ ॥ और चांडाली तथा ब्राह्मण की स्त्री से गमन करने वाला, ये सब प्रकार के दुराचारी भी, हे केशव! इस व्रत को करने से पाप से मुक्त हो जाते हैं ॥ ७ ॥ व्रतकी समाप्ति पर चौसठि पलका कांसे का पात्र और अलंकारयुक्त पयस्विनी बछड़ेवाली गौका दान करे ॥८॥ अलंकृत, विद्वान, सुंदर वस्त्रधारी और सुंदर वेषधारी ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो भूमि लीपिकर नारायणको स्मरण करता हुआ भोजन करता है ॥९॥ खेतीके योग्य बहुत भूमि जलके समीपकी यथाशक्ति दान करे तो वह आरोग्य और

॥९॥ दद्याद्भूमिं यथाशक्ति कृष्यां बहुजलांतिके॥ आरोग्यपुत्रसंपन्नो राजा भवति धार्मिकः॥२१०॥ शत्रोर्भयं न लभते विष्णुलोकं स गच्छति ॥ अयाचिते त्वनड्वाहं सहिरण्यं सचन्दनम् ॥११॥ षड्रसं भोजनं दद्यात्स याति परमां गतिम् ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे नक्तं च कुरुते व्रतम् ॥१२॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छिवलोके महीयते ॥ एकभक्तं नरः कृत्वा मिताशी च दृढव्रतः॥१३॥ योऽर्चयेच्चतुरो मासान् वासुदेवं स नाकभाक्॥ समाप्तौ भोजयेद्द्विप्रांच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्॥१४॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः॥ शय्यां सोपस्करां दद्याच्छिवलोके महीयते ॥१५॥ पापाभ्यंगं नरो यस्तु वर्जयेच्च ऋतुद्वये ॥ पापाभ्यङ्गं नरः कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥१६॥

पुत्रों से संपन्न धर्मात्मा राजा होता है ॥१०॥ वह शत्रुके भय से रहित होता है और विष्णुलोकको प्राप्त करता है। जो अयाचित को बैल, सुवर्ण, चन्दन तथा ॥ ११ ॥ षट्रस भोजन देता है। वह परम गतिको प्राप्त करता है, और जो हृषीकेश भगवान्के शयन करने पर नक्त व्रत करता है ॥१२॥ और बाद मं व्रतकी समाप्ति पर ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह शिवलोकमें आनंद पूर्वक निवास करता है, दृढव्रत और स्वल्पाहार करता हुआ एक भक्त व्रत करे ॥ १३ ॥ जो चार महीने वासुदेव का पूजन करता है वह स्वर्गको प्राप्त करता है और समाप्ति पर ब्राह्मण को भोजन कराये और शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे ॥१४॥ हृषीकेशके सोने पर जो मनुष्य भूमिमें सोता है, और उपकरण समेत शय्या-दान करता है वह शिवलोकमें आनंद से रहता है ॥ १५ ॥ और जो मनुष्य दो ऋतुओं तक पैरोंमें तेल नहीं लगाता है वह मनुष्य ब्राह्मणों का पाद-प्रक्षालन

दक्षिणां च यथाशक्त्या स गच्छेद्विष्णुमंदिरम् ॥ आषाढाच्चतुरो मासान्वर्जयेन्नखकृंतनम् ॥१७॥ आरोग्यपुत्र-
सम्पन्नो राजा भवति धार्मिकः॥ पायसं लवणं चैव मधु सर्पिः फलानि च ॥१८॥ चातुर्मास्ये वर्जयतिगौरीशंकर-
तुष्टये ॥ कार्त्तिक्यां च पुनस्तानि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१९॥ स रुद्रलोकमाप्नोति रुद्रव्रतनिवेषणात् ॥ यवान्नं
भक्षयेद्यस्तु अथवा शालयः शुभाः ॥२२०॥ पुत्रपौत्रादिभिः सार्द्धं शिवलोके महीयते ॥ तैलाभ्यङ्गपरित्यागी
विष्णुभक्तः सदा व्रती ॥२१॥ वर्षासु विष्णुमभ्यर्च्य वैष्णवीं लभते गतिम् ॥ समाप्तौ कांस्यपात्रं च सुवर्णेन
समन्वितम् ॥२२॥ तैलेन पूरितं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासाञ्छाकादि परिवर्जयेत् ॥२३॥

और उनको भोजन कराये ॥१६॥ और यथाशक्ति दक्षिणा दे तो वह विष्णु लोकको जाता है। आषाढ़ आदि चार महीनें नख न कटाये ॥१७॥ तो वह आरोग्य और पुत्रवान् धर्मात्मा राजा हो। और खीर, नोन, सहद, घी और फलोंको जो ॥१८॥ चातुर्मासमें गौरीशंकरकी प्रसन्नताके लिये छोड़ दे और फिर उन्हीं वस्तुओं को कार्तिकीके दिन ब्राह्मणको दान करे॥ १९ ॥ वह रुद्रका व्रत करने से रुद्रलोकको प्राप्त करता है और जो चार महीने जब अथवा सुंदर चावलका भोजन करता है ॥२२०॥ वह पुरुष पुत्र पौत्रादिकों समेत शिवलोकमें आनंद करता है, तेल न लगाता हुआ विष्णु भक्त व्रती ॥ २१ ॥ वर्षाऋतुमें विष्णुका पूजन करके विष्णु लोक को प्राप्त होता है और समाप्तिमें सुवर्ण युक्त कांसे पात्रको ॥ २२ ॥ तेल से भरकर ब्राह्मणको दान करे और वर्षाके चारि महीने में शाक आदिका त्याग करे ॥ २३ ॥ वह विष्णुक लोक को प्राप्त करता है और पितरोंकी तृप्ति होती

विष्णुलोकमवाप्नोति पितृतृप्तिः प्रजायते॥ व्रतान्ते हरिमुद्दिश्य पात्रं राजतमेव हि ॥२४॥ वस्त्रेण वेष्टयेद्गंधपत्रपुष्पैः समर्चयेत्॥ मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम् ॥२५॥ त्वक्पुष्पं कवचं चेति शाकमष्टविधं स्मृतम्॥ समभ्यर्च्य यथाशक्त्या ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥२६॥ दद्याद्दक्षिणया सार्धं व्रतसम्पूर्णहेतवे ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥२७॥ अपूपवर्जनं कृत्वा भोजनं व्रतमाचरेत् ॥ कार्तिके स्वर्णगोधूमान्वस्त्रं दत्वाऽश्वमेधकृत् ॥ २८॥ गोधूमाः सर्वजन्तूनां बल पुष्टिविवर्धनाः ॥ मुख्याश्च हव्यकव्येषु तस्मान्मे ददतु श्रियम् ॥ २९ ॥ आषाढादि चतुर्मासान्वृन्ताकं वर्जयेन्नरः॥ कारवल्लीफलं वाप्यलाबुं पडवलं तथा॥२३०॥ यद्वा तद्वा फलं वापि यच्च प्रियतमं

है, व्रतके अन्तमें हरिके निमित्त चांदीके पात्रका दान करे ।। २४ ।। इस पात्रको वस्त्रसे लपेट कर और गंध, पत्र, पुष्प से पूजन करे । मूल पत्र करीरको अग्र फल ।। २५ ।। त्वचा पुष्प और कवच, ये आठ प्रकारके शाक कहे गये हैं इनका यथाशक्ति पूजन करके वेदके पारगामी ब्राह्मणको ।। २६ ।। व्रतकी पूर्णताके लिये दक्षिणासमेत दान करे, तो शूलपाणि शिव की कृपा से उसे शिव की सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है ।। २७ ।। पुआको छोड़कर व्रतमें भोजन करे। कार्तिकमें सुवर्ण गेहूं और वस्त्रका दान करनेसे अश्वमेधके यज्ञका फल प्राप्त होता है ।।२८।। गेहूं सभी के लिए पुष्टिकारक है और हव्य-कव्यमें प्रमुख इससे मुझे लक्ष्मी दे ।। २९ ।। आषाढ आदि चार महीनेमें मनुष्य बैगन, करेला तूम्बी और परवर न खाये ।। २३० ।। और जो जो फल प्रिय हो उस

भवेत् ॥ चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रौप्याण्येतानि कारयेत् ॥३१॥ मध्ये विद्रुमयुक्तानि ह्यर्चयित्वा तु शक्तितः ॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं ब्राह्मणायातिभक्तितः॥३२॥ अभीष्टं देवमुद्दिश्य देवो मे प्रीयतामिति॥ स दीर्घमायुरारोग्यं पुत्रपौत्रान्सुरूपकान्॥३३॥ अक्षय्यां सन्ततिं कीर्तिं लब्ध्वा स्वर्गे महीयते॥ फलत्यागी भवेद्यस्तु विष्णुलोके स पूज्यते॥३४॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये॥ श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा॥३५॥ दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत्॥ चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्तिनाम्॥३६॥ प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम्॥३७॥ पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थे द्विदलं तथा॥ कूष्मा-

भी न खाय, चातुर्मास्य के बीत जाने पर वह फल चांदी का बनवाये।। ३१।। और बीचमें मूँगे लगाये फिर यथाशक्ति पूजन करके दक्षिणासहित ब्राह्मण को भक्ति के साथ दान करे ।। ३२ ।। अभीष्ट दवताका नाम लेकर प्रार्थना करके हे देव! मुझपर प्रसन्न हों। ऐसा करनेवाला दीर्घ आयु, आरोग्यता और सुंदर रूपवान् पुत्र-पौत्रको प्राप्त करता है ।। ३३ ।। अक्षय संतति तथा कीर्तिको प्राप्त कर स्वर्गमें आनंद करता है। चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग करनेवाला विष्णु लोकमें पूजित होता है ।। ३४ ।। व्रतकी समाप्ति पर उन फलोंको चांदीके बनवाकर ब्राह्मण को दान करे सावनमें शाक और भादोंमें दही नहीं खाना चाहिये ।। ३५ ।। क्वारके महीनेमें दूध, और कार्तिकमें दाल चारों आश्रम वालों को नहीं खाना चाहिये ।। ३६ ।। प्रथम मास अर्थात् श्रावणमें शाकव्रत, दूसरे अर्थात् भादोंके महीनेमें दधिका व्रत, ।। ३७ ।। तीसरे अर्थात क्वारमें दूधका व्रत और चौथे अर्थात् कार्तिकमें

ण्डं राजमाषांश्च मूलकं गृञ्जनं तथा ॥३८॥ करमर्दं चेक्षुदण्डं चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः॥ मसूरं बहुबीजं च वृन्ताकं चैव वर्जयेत्॥३९॥ नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः॥ विशेषाद्बदरीं धात्रीमलाबुं चिञ्चिणीं त्यजेत् ॥२४०॥ जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं जीर्णा ग्राह्या च चिञ्चणी॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान्प्रसुप्ते च जनार्दने॥४१॥ मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः॥ अनृतौ वर्जयेद्भार्यामृतौ गच्छन्न दुष्यति॥४२॥ मधुवेलीं च शिग्रुं च चतुर्मास्ये त्यजेन्नरः॥ वृन्ताकं च कलिंगं च बिल्वोदुम्बरभिस्सटाः ॥४३॥ उदरे यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः ॥ उपवासस्तथा नक्तमेकभक्तमयाचितम् ॥ ४४ ॥ अशक्तस्तु यथा कुर्यात्सायं प्रातरखंडितम् ॥ स्नानपूजादिसंयुक्तः स नरो

दाल का व्रत करना चाहिये अर्थात् इन चारों महीने में चारों वस्तुओं को नहीं खाना चाहिये। कुम्हड़ा, माष, मूली, गाजर इन्हें भी नहीं खाना चाहिये ।। ३८ ।। चातुर्मास्यमें मनुष्य को करौंदा, ईख, मसूर तथा बहुत बीजवाले फल और बैंगनको न खाये ।। ३९ ।। हे विप्रेंद्र! पण्डितोंने ये नित्यव्रत कहा है। विशेष रूपसे बेर, आँवले, लौकी और अमिलीका त्याग करना चाहिये ।।२४०।। पुराने आमले तथा पुरानी अमिली चार महीने तक भगवान् जनार्दन के शयनके समय लेना चाहिये ।। ४१ ।। और व्रत करनेवाले को मंचान तथा खाट पर शयन नहीं करना चाहिये। और बिना ऋतु समय स्त्रीगमन न करे और ऋतु समय म गमन करने से दोष नहीं होता है ।।४२।। मधुवेलि और सहिजनका चातुर्मासम त्याग करे बैंगन, कलिंदा, बेल, गूलर तथा भिस्सटा अर्थात् शाकविशेषका त्याग करे ।। ४३ ।। ये शाक-फल जिसके उदरमें जीर्ण होते हैं उससे हरि अति दूर रहते हैं, उपवास

हरिलोकभाक्॥४५॥ गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात्॥ मधुभुक्च भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात्॥४६॥ लभेच्चसंततिं दीर्घां पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम् ॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन्सुन्दरांगः प्रजायते ॥४७॥ कौसुम्भतैलसन्त्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात्॥ मधूकतैलत्यागाच्च सुसौभाग्यफलं लभेत्॥४८॥ कटु तिक्तं च मधुरं कषायलवणान्रसान्॥ वर्जयेत् स च वैरूप्यं दौर्गंध्यं नाप्नुयात्सदा॥४९॥ पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत्॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदवीमियात्॥५०॥ ताम्बूलवर्जनाद्रोगी सद्यो मुक्तामयो भवेत्॥ पादाभ्यंगपरित्यागाच्छिरोभ्यंगस्य पार्थिव॥५१॥ दीप्तिमान् दीपकरणो यक्षद्रव्यपतिर्भवेत्॥ दधिदुग्धपरित्यागी गोलोकं लभते नरः॥५२॥

नक्तव्रत, एकभक्त तथा अयाचित ॥ ४४ ॥ आदि करन में यदि असमर्थ हो तो प्रातःकाल और सायंकाल स्नान-पूजन आदि करनेसे भी विष्णुलोकको प्राप्त कर सकता है ॥ ४५ ॥ और विष्णुके सम्मुख गाने-बजाने से मनुष्य गंधर्व लोकको प्राप्त होता है जो मनुष्य चातुर्मास्य में गुड़का परित्याग करता है वह जन्मान्तर में मिष्ठान्न भोजी राजा होता है ॥ ४६ ॥ और पुत्र-पौत्रोंके वृद्धि करनेवाली संतति प्राप्त करता है, हे राजन् ! तैलके परित्याग से शरीर के अंग सुंदर हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ कुसुमका तेल छोड़नेसे शत्रु नष्ट हो जाते हैं, और महुआके तेलके त्यागसे सौभाग्य को प्राप्त होता है ? ॥ ४८ ॥ कटु, तिक्त, मधुर, कषाय, लवण, इन रसोंके त्यागसे विरूपता और दुर्गन्धको कभी नहीं प्राप्त होता ॥ ४९ ॥ और पुष्प आदि भोगोंके त्यागसे स्वर्गलोकमें विद्याधर होता है और जो योगाभ्यासी वह ब्रह्मपदवीको प्राप्त करता है ॥ २५० ॥ तांबूल के परित्यागसे रोगी शीघ्रही रोगरहित हो जाता है। हे राजन् ! पैरों में और शिरमें तेल लगाना छोड़नेसे ॥५१॥ दीप्तिमान दीप्त इंद्रियवाला यक्ष द्रव्यपति होता है और

इह लोकमवाप्नोति स्थालीपाकविवर्जनात्॥ एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥५३॥ चतुरो वार्षिकान्मासान् नखरोमाणि धारयेत्॥ कल्पस्थायी भवेद्राजन्स नरो नात्र संशयः॥५४॥ नमो नारायणायेति जपित्वाऽनन्तकं फलम्॥ विष्णुपादांबुजस्पर्शात्कृतकृत्यो भवेन्नरः॥५५॥ लक्षप्रदक्षिणा यस्तु करोति हरिमंदिरे॥ हंसयुक्त विमानेन स याति वैष्णवीं पुरीम् ॥५६॥ त्रिरात्रभोजनत्यागान्मोदते दिवि देववत् ॥ परान्नवर्जनाद्राजन्देवो वै मानुषो भवेत् ॥ ५७ ॥ प्राजापत्यं चरेद्यो वै चातुर्मास्यव्रतान्नरः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिविधैर्नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ तप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्राभ्यां यः क्षिपेच्छयनं हरेः ॥ स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥५९॥ चान्द्रायणेन

दही दूधका त्याग करनेवाला मनुष्य गोलोकको जाता है ॥ ५२ ॥ स्थालीपाकके त्यागसे इस लोकमें सुख प्राप्त होता है, एक दिन के अंतर से व्रत करने वाला मनुष्य ब्रह्म धाम में सानन्दवास करता है ॥ ५३ ॥ वर्षाके चार महीनेम जो नख और बालों को धारण करता है वह मनुष्य कल्पस्थायी होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ५४ ॥ और जो "नमो नारायणाय" इस मंत्रको चार महीने जपता है वह अनन्तफल पाता है और विष्णुके चरणकमलोंके स्पर्शसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है. ॥ ५५ ॥ और जो हरिके मंदिर की एक लाख प्रदक्षिणा करता है वह हंसयुक्त विमानमें बैठकर विष्णपुरको जाय है ॥५६॥ तीनि रात्रि पर्यन्त भोजनके त्यागसे स्वर्गमें देवताओंके समान आनंद प्राप्त होता है, और हे राजन् ! पराये अन्नके त्यागसे मनुष्य देवता बन जाता है ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! जो चार महीने प्राजापत्य व्रत चातुर्मास्य करे व कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारके पापों से छूट

यो राजन् क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ॥ दिव्य देहो भवेत्सोऽथ शिवलोकं च गच्छति॥२६०॥ चातुर्मास्ये नरो यो वै त्यजेदन्नादिभक्षणम् ॥ स गच्छेद्धरिसायुज्यं न भूयस्तु प्रजायते॥६१॥ भिक्षाभोजी नरो यो हि स भवेद्वेदपारगः॥ पयोव्रतेन यो राजन् क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ॥६२॥ तस्य वंशसमुच्छेदः कदाचिन्नोपपद्यते ॥ पंचगव्यासनः पार्थ चान्द्रायणफलं लभेत्॥६३॥ दिनत्रयं जलत्यागान्न रोगैरभिभूयते॥ एवमादिव्रतैः पार्थ तुष्टिमायाति केशवः॥६४॥ दुग्धाब्धिवीचिशयने भगवाननंतो यस्मिन्दिने स्वपिति चाथ विबुध्यते च ॥ तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां

जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥५८॥ जो तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करके हरिशयन व्रत करता है वह आवागमन से रहित परमपद को प्राप्त करता है ॥५९॥ हे राजन्! चार महीने जो चांद्रायण व्रत करता है वह दिव्य शरीर प्राप्त कर शिव-लोक को जाता है॥ २६० ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्यमें अन्न आदिका भोजन त्याग देता है वह हरिकी सायुज्यता प्राप्त करता है, और इस लोकमें जन्म नहीं लेता है ॥ ६१ ॥ जो चातुर्मास्यमें भिक्षा मांगकर भोजन करता है वह वेदको जाननेवाला होता है, हे राजन्! जो मनुष्य चार महीने तक पयोव्रत करता है ॥ ६२ ॥ उसके वंशका कभी नाश नहीं होता है और जो पंचगव्यका भोजन करते हैं। हे युधिष्ठिर! वह चांद्रायण व्रतके फलको प्राप्त करते हैं ॥ ६३ ॥ और तीन दिन तक जलके त्यागसे रोग द्वारा पीड़ित नहीं होता है। हे युधिष्ठिर! कहे गये व्रतों से भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं ॥ ६४ ॥ क्षीर सागर में जिस दिन भगवान् शयन करते हैं और जिस दिन जागते हैं उस दिन अनन्य मन होकर व्रत करनेवाले मनुष्य को गरुडासन भगवान् गति

पुंसां ददाति च गतिं गरुडासनोऽसौ ॥२६५॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे विष्णोः शयन्येकादशीचातुर्मास्यमाहात्म्यं सम्पूर्णम्॥१६॥ अथ श्रावणकृष्णैकादशीकथा॥ युधिष्ठिर उवाच॥ आषाढशुक्लपक्षे तु यद्देवशयनव्रतम्॥ तन्मया श्रुतपूर्वं हि पुराणे बहुविस्तरम्॥१॥ श्रावणे कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥ एतत्कथय गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम्॥ नारदाय पुरा राजन्पृच्छते च पितामहः ॥ ३ ॥ परं यदुक्तवांस्तात तदहं ते वदामि च ॥ नारद उवाच ॥ भगवच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहं कमलासन॥४॥ श्रावणस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्॥ को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं कथय प्रभो॥५॥

देते हैं ॥ २६५ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायामाषाढशुक्लैकादशी-देवशयनीकथा समाप्ता ॥ १६ ॥ अथ श्रावणकृष्णैकादशीकामिकाकथा ॥ नभस्यकृष्णपक्षे या कामिकैकादशी भवेत् ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां विवृतिं सन्तनोम्यहम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले–कि, आषाढके शुक्लपक्षमें जो देवशयन व्रत होता है वह मैंने प्रथम ही पुराणमें वर्णित विस्तार सहित सुना ॥१॥ श्रावणमासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है, हे वासुदेव ! हे गोविन्द ! यह कहिये । आपके लिये नमस्कार है ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजन् ! सुनो, पापों का नाश करनेवाले व्रत को मैं कहता हूं जिसे पूर्व ही नारदजीने पितामह से पूंछा था और उन्होंने ॥३॥ जैसा उन्हें सुनाया हे तात ! वह मैं तुमसे कहता हूँ नारद बोले–कि, हे भगवन् हे कमलासन ! तुमसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ कि श्रावणके कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है और उसके देवता कौन हैं और उसकी विधि क्या है, उसके

ब्रह्मोवाच ।। शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया ।। श्रावणैकादशी कृष्णा कामिकेति च नामतः ।।६।।
तस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ।। तस्यां तु पूजयेद्देवं शंखचक्रगदाधरम् ।।७।। श्रीधराख्यं हरिं विष्णुं
माधवं मधुसूदनम् ।। यजते ध्यायते यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ।। ८ ।।
न गङ्गायां न काश्यां वै नैमिषे न च पुष्करे ।। तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं विष्णुपूजनात् ।। ९ ।। केदारे च
कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ।। न तत्फलवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ।। १० ।। ससागरवनोपेतां यो ददाति
वसुन्धराम् ।। गोदावर्यां गुरौ सिंहे व्यतीपाते च गण्डके ।।११।। न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ।।

पुण्य क्या हैं । हे प्रभो ! वह मुझे सुनाइये ।। ५ ।। ब्रह्मा बोले–कि, हे नारद ! संसार के हित के लिए मैं तुम्हें सुनाता हूँ, श्रावण मास के कृष्णपक्षकी एकादशीका कामिका नाम है ।। ६ ।। उसके श्रवणमात्र से ही वाजपेय यज्ञका फल मिलता है । उस एकादशीके दिन जो शंख चक्र और गदा धारण करनेवाले देवका पूजन करता है ।। ७ ।। तथा श्रीधर है नाम जिनका ऐसे हरि विष्णु माधव मधुसूदन का पूजन और ध्यान करता है उस पुण्यका फल सुनो ।। ८ ।। जो फल विष्णुके पूजनसे प्राप्त होता है वह न गंगामें, न काशीमें न नैमिषारण्य में और न पुष्करमें प्राप्त होता है ।। ९ ।। केदारक्षेत्र और कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय वह फल नहीं मिलता है जो फल कृष्णके पूजनसे प्राप्त होता है ।। १० ।। समुद्र और वन से युक्त भूमिका जो दान करता है और सिंहके बृहस्पतिमें गोदावरीमें और व्यतीपातमें गण्डकी नदीमें स्नानसे वह फल नहीं मिलता है ।। ११ ।। जो कृष्णके पूजन से प्राप्त होता है।

कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौ स्मृतौ ॥ १२ ॥ प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात् सोपस्करां नरः ॥ तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रतकारकः॥१३॥श्रावणे श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः॥तेनैव पूजिता देवा गन्धर्वोरगपन्नगाः ॥१४॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कामिकादिवसे हरिः॥ पूजनीयो यथाशक्ति मनुष्यैः पापभीरुभिः॥१५॥ संसारार्णवमग्ना ये पापपंकसमाकुलाः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय कामिकाव्रतमुत्तमम् ॥ १६ ॥ नातः परतरा काचित्पवित्रा पापहारिणी॥ एवं नारद जानीहि स्वयमाह पुराः हरिः॥१७॥ अध्यात्मविद्यानिरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः॥ ततो बहुतरं विद्धि कामिकाव्रतसेवनात् ॥१८॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्कामिकाव्रतकृन्नरः ॥ न पश्यति यमं रौद्रं नैव

वह फल और कामिका एकादशी व्रत का फल समान है ॥ १२॥ व्याई हुई गौ जो सामग्री समेत दान करता है। वह जो फल प्राप्त करता है वही फल एकादशी व्रत करनेवाले को प्राप्त होता है ॥१३॥ जो उत्तम मनुष्य श्रावणमें श्रीधर भगवान्‌का पूजन करता है उस पूजन से देवता गंधर्व उरग और पन्नग ये सब पूजे गये ॥१४॥ अतः सब यत्नसे कामिका एदशीके दिन पापोंसे भयभीत मनुष्य यथाशक्ति हरिका पूजन करना योग्य है ॥ १५ ॥ जो संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुये हैं और पापरूपी कीचसे व्याकुल मनुष्य हैं उनके उद्धारके लिये कामिका व्रत उत्तम है ॥ १६ ॥ इससे बढ़कर पवित्र और कोई पापकी नाश करने वाली नही है। हे नारद ! ऐसा जानो यह भगवान्‌ने प्रथम स्वयं कहा है ॥१७॥ अध्यात्मविद्यामें लगे मनुष्योंको जो फल मिलता है उससे बहुत अधिक कामिका एकादशीव्रत करने से होता है ॥१८॥ कामिकाका व्रत करनेवाला जो मनुष्य रात्रिमें जागरण करता

पश्यति दुर्गतिम् ॥ १९ ॥

न पश्यति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात् ॥ कामिकाया व्रतेनैव कैवल्यं योगिनो गताः ॥ सर्वैः सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या नियतात्मभिः ॥२०॥ तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम् ॥ न वै स लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवांभसा ॥२१॥ सुवर्णभारमेकं तु रजतं च चतुर्गुणम् ॥ दत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं तुलसीदले ॥२२॥ रत्नमौक्तिकवैडूर्यप्रवालादिभिरर्चितः ॥ न तुष्यति तथा विष्णुस्तुलसीपूजनाद्यथा ॥२३॥ तुलसीमञ्जरीभिस्तु पूजितो येन केशवः ॥ आजन्मकृतपापस्य तेन सम्मार्जिता लिपिः ॥२४॥ या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी

है वह भयानक यम-यातना से मुक्त हो जाता है ॥१९॥ और कामिकाके व्रत करनेसे अधम योनि नहीं प्राप्त करता है। कामिका के ही व्रत से योगी कैवल्य पद प्राप्त करते हैं ॥२०॥ तुलसी के पत्तों से जो मनुष्य हरिका पूजन करता है निश्चय ही वह पापोंसे ऐसे लिप्त नहीं होता है जैसे जल से कमलके पत्र लिप्त नहीं होते हैं ॥ २१ ॥ एक भारसुवर्ण और उससे चौगुनी चांदी दान करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल तुलसीदलसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ रत्न, मोती, वैडूर्य मणि और मूंगा आदि से पूजन करने पर भगवान् इतने प्रसन्न नहीं होते हैं जितने कि तुलसी दलके पूजनसे प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य तुलसीकी मञ्जरीसे केशव भगवान्‌का पूजन करता है उसके जन्म-भर के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥२४॥ जो दर्शनसे संपूर्ण पापोंके

रोगाणामभिवन्दिता निरशनी सिक्ताऽन्तक त्रासिनी॥ प्रत्यासन्न विधायिनी भगवतः कृष्णस्य सारोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥२५॥ दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रौ हरेर्दिने ॥ तस्य पुण्यस्य संख्यानं चित्रगुप्तोऽपि वेत्ति न॥२६॥ कृष्णाग्रे दीपिको यस्तु ज्वलेदेकादशीदिने॥ पितरस्तस्य तृप्यंति अमृतेन दिवि स्थिताः ॥ २७ ॥ घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ॥ प्रयाति सूर्यलोकेऽसौ दीपकोटिशतैर्वृतः ॥ २८ ॥ अयं तवाग्रे कथितः कामिकामहिमा मया ॥ अतो नरैः प्रकर्तव्या सर्वपातकहारिणी ॥ २९ ॥

ब्रह्महत्याऽपहरणी भ्रूणहत्या विनाशिनी ॥ त्रिदिवस्थानदात्री च महापुण्यफलप्रदा ॥३०॥ श्रुतं माहात्म्यमेतस्या

समूहको शांत कर देती है, स्पर्श करने से शरीरको पवित्र कर देती है, नमस्कार करनेसे रोगोंको नष्ट कर देती है, सींचनेसे भगवान्‌की निकटता प्रदान करती है और उनके चरनों में चढ़ाने से जो मुक्ति देती है ऐसी तुलसी को नमस्कार है ।। २५ ।। जो मनुष्य हरिके दिन रात्रि और दिनमें दीपक करता है उसके पुण्यकी संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते हैं ।। २६ ।। एकादशीके दिन कृष्णके सम्मुख जो दीपदान करता है स्वर्गमें स्थित उसके पितर अमृतसे तृप्त होते हैं ।। २७ ।। घृत या तिलके तेलसे दीपक प्रज्वलित करके मनुष्य सैंकडों, करोड़ों, दीपसे युक्त होकर सूर्य-लोकमें जाता है ।। २८ ।। मैंने तुम्हारे सम्मुख इसकी महिमा कही । यह पापों को हरने-वाली एकादशी मनुष्यको अवश्य करनी चाहिये ।। २९ ।। यह ब्रह्महत्याकी हरनेवाली, भ्रूणहत्याको नष्ट करनेवाली है और महाफलदायिनी यह स्वर्गमें स्थान देती है ।। ३० ।। मनुष्य श्रद्धासमेत इसके माहात्म्य सुनकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है और सब पापोंसे छूट जाता है

नरैः श्रद्धासमन्वितः ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३१॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे श्रावणकृष्णैकादशीकामिकामाहात्म्यं समाप्तम् ॥१७॥ अथ श्रावणशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ श्रावणस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम्॥ यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥२॥ द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मतीपुरे॥ राजामहीजिदाख्यातो राज्यं पालयति स्वयम्॥३॥ पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम्॥ अपुत्रस्य सुखं नास्ति इह लोके परत्र च॥४॥ यततोऽस्य सुतप्राप्तौ कालो बहुतरो गतः॥ न प्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो

॥ ३१ ॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसाद शर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभा. टी. दीपिकासमाख्यायां श्रावणकृष्णैकादशीकामिकाकथा समाप्ता ॥ १७ ॥ अथ श्रावण शुक्लैकादशी पुत्रदा कथा ॥ श्रावणस्यसिते पक्षे पुत्रदैकादशी स्मृता ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां दीपिकां संतनोम्यहम् ॥१॥ युधिष्ठिर बोले–कि, श्रावणके शुक्ल पक्षमें जो एकादशी होती है उसका क्या नाम है, हे मधुसूदन ! वह प्रसन्नतापूर्वक मुझे सुनाइये ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे राजन् ! पापोंको दूर करनेवाली इस कथाको मैं कहता हूँ–तुम सावधान होकर सुनो, जिसके श्रवणमात्रसे ही वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥२॥ द्वापरयुगके प्रारंभिक काल में माहिष्मती पुरमें महीजित् नामका प्रसिद्ध राजा राज्य करता था ॥३॥ पुत्रहीन उस राजाको वह राज्यसुखकारी न हुआ क्योंकि पुत्ररहित मनुष्यको इस लोकमें तथा परलोकमें सुख नहीं मिलता है ॥४॥ पुत्र प्राप्तिमें यत्नशील इस राजाका बहुत समय बीत गया परन्तु सम्पूर्ण सुख देनेवाला पुत्र उस राजाने नहीं पाया ॥५ ॥

नृणाम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसं राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥ सदोगतः प्रजामध्य इदं वचनमब्रवीव ॥ ६ ॥ इह जन्मनि भो लोका न मया पातकं कृतम् ॥ अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोशे मया न हि ॥ ७ ॥ ब्रह्मस्वं देवद्रविणं न गृहीतं मया क्वचित् ॥ न्यासापहारो न कृतः परस्य बहुपापदः ॥ ८ ॥

सुतवत्पालिता लोका धर्मेण विजिता मही ॥ दुष्टेषु पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमेष्वपि ॥ शिष्टाः सुपूजिता लोका द्वेष्याश्चापि महाजनाः ॥९॥ इत्येवं व्रजतो मार्गं धर्मयुक्ते द्विजोत्तमाः ॥ कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विचार्यताम् ॥ १० ॥ इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा सप्रजाः सपुरोहिताः ॥ मंत्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम् ॥ ११ ॥ इतस्ततश्च पश्यन्तश्चाश्रमानृषिसेवितान् ॥ नृपतेर्हितमिच्छन्तो ददृशुर्मुनिसत्तमम् ॥ १२ ॥ तप्यमानं तपो घोरं

और अपनी अधिक अवस्था देखकर राजा चिन्तित हुआ और पुरजनों की सभामें बैठकर एक दिन कहने लगा ।।६।। कि, हे लोगो ! इस जन्म में तो मैंने कोई पाप नहीं किया और न अन्यायसे उपार्जित धन ही कोशमें जमा किया है ।।७।। मैंने कभी ब्राह्मण तथा देवताओंका धन न ग्रहण किया तथा पापकी देनेवाली किसकी धरोहर को भी नहीं अपनाया।।८।।मैंने पुत्रकी भांति प्रजाका पालन किया तथा धर्मसे पृथिवी जीती है और भाई तथा पुत्रके समान भी दुष्ट मनुष्यों को दण्ड दिया है और द्वेष करने योग्य भी शिष्ट मनुष्यका मैंने सत्कार किया है।।९।।हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इस प्रकार धर्मयुक्त मार्ग पर चलनेसे भी मुझे पुत्र क्यों नहीं प्राप्त हुआ, यह विचार कर कहिये ।। १० ।। यह सुनकर परिजन-पुरजन सहित ब्राह्मण राजाके हित के लिए पुरोहित वर्गके साथ घने वनमें गये ।। ११ ।। राजाके हितकी इच्छासे ऋषियोंसे सेवित आश्रमोंको देखते-देखते

चिदानन्दं निरामयम्॥ निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सनातनम्॥१३॥ लोमशं धर्मतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम्॥ दीर्घायुषं महात्मानमनेकब्रह्मसम्मितम्॥१४॥ कल्पे गते यस्य एकमेकं लोम विशीर्यते॥ अतो लोमश नामानं त्रिकालज्ञं महामुनिम्॥१५॥ तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे ह्याजग्मुस्तस्य सन्निधिम्॥ यथान्यायेयं यथार्हं ते नमश्चक्रुर्यथोदितम्॥१६॥ विनयाऽवनताः सर्वे ऊचुश्चैव परस्परम्॥ अस्मद्भाग्यवशादेव प्राप्तोऽहं मुनिसत्तमः॥१७॥ तांस्तथा प्रणतान् दृष्ट्वा ह्युवाच मुनिसत्तमः॥ लोमश उवाच॥ किमर्थमिह संप्राप्ताः कथयध्वं सकारणम्॥१८॥ मद्दर्शनाह्लादगिरः स्तुवन्त इव मां किमु॥ असंशयं करिष्यामि भवतां यद्धितं भवेत्॥ १९॥

अतिश्रेष्ठ एक मुनिको देखा ॥ १२ ॥ घोर तपमें अनुरवत, चिदानन्दरूप निरामय जितात्मा, जित क्रोध, और सनातन ॥ १३ ॥ धर्मतत्त्वके ज्ञाता सब शास्त्रोंमें प्रवीण और बड़ी लम्बी आयु वाले अनेक ब्रह्मके तुल्य ऐसे महात्मा लोमश ऋषिको देखा ॥ १४॥ कल्पके बीतने पर इनके एक रोम उखड़ते हैं अतः उनका लोमश नाम पड़ा। वे महामुनि त्रिकालके ज्ञाता हैं ॥१५॥ उनको देख सब प्रसन्न होकर उनके समीप गये यथान्याय और यथायोग्य वे उनको नमस्कार किये ॥ १६ ॥ और विनयसे नम्र होकर वे सब आपसमें कहने लगे कि हमें भाग्य वश ऐसे महात्मा के दर्शन हुये हैं ॥ १७ ॥ उन सबको इस प्रकार प्रणत देखकर मुनिश्रेष्ठ बोले। लोमश बोले कि, तुम सब यहां किस कारण से आये हो वह कहो ॥ १८ ॥ मेरे दर्शनसे आनन्दयुक्त वाणीसे मेरी तुति करने वाले तुम सभोंका जिसमें हित होगा वह मैं अवश्य करूँगा

परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः ॥ जना ऊचुः ॥ श्रूयताममभिधास्यामो वयमागमकारणम् ॥ २० ॥ संशयच्छेदनार्थाय तव सन्निधिमागताः ॥ पद्मयोनेः परतस्त्वत्तः श्रेष्ठो न विद्यते ॥२१॥ अतः कार्यवशात्प्राप्ताः समीपं भवतो वयम् ॥ मही जिन्नाम राजाऽसौ पुत्रहीनोऽस्ति सांप्रतम् ॥ २२ ॥ वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन्पुत्रवत्तेन पालिताः ॥ तं पुत्ररहितं दृष्ट्वा तस्य दुखेन दुखिनः ॥२३॥ तपः कर्तुमिहायाता मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम् ॥ तस्य भाग्यवशाद्दृष्टस्त्वमस्माभिर्द्विजोत्तम ॥२४॥ महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ उपदेशं वद मुने राज्ञः पुत्रो यथा भवेत् ॥ २५ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ॥ प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म

॥१९॥ हम जैसे मनुष्योंका जन्म परोपकारहीके लिये है इसमें संदेह नहीं है लोग बोले—कि, सुनिये हम यहां अपने आने का कारण कहते हैं ॥ २० ॥ संदेह दूर करनेके लिये हम आपके पास आये हैं, ब्रह्मासे परतर और आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥ २१ ॥ इस कारणसे कार्यवश हम आपके पास आये हैं कि, यह महीजित नाम राजा इस समय पुत्र से रहित है ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! हम उसकी प्रजा हैं उसने हमें पुत्रके समान पाला है। उसे पुत्ररहित देख कर उस दुःखसे दुःखी हैं ॥ २३ ॥ नैष्ठिकी मति से हम सब यहां तप करने आये हैं, हे द्विजोत्तम ! उस राजाके भाग्यसे ही आपके दर्शन हमको हुये हैं ॥ २४ ॥ बड़ोंके दर्शनहीसे मनुष्यकी कार्यसिद्धि होती है, हे मुने ! ऐसा उपदेश दीजिये जिससे राजा को पुत्र प्राप्त हो ॥ २५ ॥ इस प्रकार उनके वचन सुनकर मुनि क्षण-भर ध्यान में स्थित होकर उस राजाके पूर्वजन्म का वृत्तान्त जानकर

पुरातनम् ॥२६॥ लोमश उवाच ॥ पूर्वजन्मनि वैश्योऽयं धनहीनो नृशंसकृत् ॥ वाणिज्यकर्मनिरतो ग्रामाद्ग्रामान्तरं भृशम् ॥२७॥ ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादशीदिवसे तथा ॥ मध्याह्ने द्युमणौ प्राप्ते ग्रामसीम्नि जलाशयम् ॥ २८ ॥ कूपिकां सजलां दृष्ट्वा जलपाने मनोदधौ ॥ सद्यः सूता सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता ॥ २९ ॥ तृषातुरानिदाघार्ता तस्यामम्बु पपौ तु सा ॥ पिबन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं स्वयं पपौ॥३०॥ कर्मणस्तस्य पापेन स पुत्ररहितो नृपः ॥ पूर्वजन्मकृतात्पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥ ३१ ॥
जनाः ऊचुः ॥ पुण्यात्पापं क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने ॥ पुण्योपदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ॥ ३२ ॥

कहने लगे ॥ २६ ॥ लोमश बोले—कि यह राजा पूर्वजन्ममें धनसे हीन क्रूर कर्म करनेवाला वैश्य था और एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें जाकर व्यापार करता रहता ॥ २७ ॥ एक समय ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षमें द्वादशीके दिन मध्याह्न काल में ग्रामकी सीमामें जलाशय को ॥ २८ ॥ जल समेत देखकर जल पीनेकी इच्छा कर ही रहा था कि उसी समय हालकी व्याई हुई गौ बछरा समेत वहां आई ॥ २९ ॥ प्याससे घबराई और घामसे दुःखी वह गौ उसमें जल पीने लगी तब वह वैश्य उस पीतीं हुई गौको हटाकर स्वयं जल पीने लगा ॥३०॥ उस कर्मके पापसे वह राजा पुत्ररहित हुआ । पूर्वजन्ममें किये हुये पुण्यसे उसे अकंटक राज्य मिला ॥ ३१ ॥ लोग बोले—कि, हे मुने ! पुण्यसे पाप क्षय होता है यह पुराणोंमें सुना गया है, अतः आप पुण्यका उपदेश करिये, जिससे पापका क्षय हो ॥ ३२ ॥ जिस पुण्य से उसे पुत्र प्राप्त हो वह कहिये ! लोमश

यथा भवत्प्रसादेन पुत्रोऽस्य भविता तथा॥ लोमश उवाच॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता ॥ ३३ ॥ एकादशी तिथिश्चास्ति कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः ॥ यथाविधि यथान्यायं यथोक्तं जागरान्वितम् ॥ ३४ ॥ तस्याः पुण्यं सुविमलं ददतां नृपतेर्जनाः ॥ एवं कृते सुनियतं राज्ञः पुत्रो भविष्यति ॥ ३५ ॥ श्रुत्वैतल्लोमशवचस्तं प्रणम्य द्विजोत्तमम् ॥ प्रजग्मुः स्वगृहान्सर्वे हर्षोत्फुल्लविलोचनाः ॥३६॥ श्रवणं तु समासाद्य स्मृत्वा लोमश-भाषितम् ॥ राज्ञा सह व्रतं चक्रुः सर्वे श्रद्धासमन्विताः ॥ ३७ ॥ द्वादशीदिवसे पुण्य ददुर्नृपतये जनाः ॥ दत्ते पुण्ये यथा राज्ञी गर्भमाधत शोभनम् ॥ ३८ ॥ प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ॥ एवमेषा नृपश्रेष्ठ पुत्रदा नाम विश्रुता ॥३९॥ कर्तव्या सुखमिच्छद्भिरिह लोके परत्र च॥४०॥ श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्याः सर्वपापैः

बोले—कि, श्रावणके शुक्लपक्षमें पुत्रदा नामसे प्रसिद्ध ।।३३।। एकादशी तिथि होती है, हे जनो ! तुम सब यथाविधि उचित जागरण समेत उस व्रतको करो ।। ३४ ।। और उसके विमल फलको राजाको दो । ऐसा करनेसे निश्चय ही राजाके पुत्र होगा ।। ३५ ।। इस प्रकार लोमश ऋषिके वचन सुनकर आनंदसे प्रफुल्लित नेत्र, वे सब अपने घरको चले गये ।।३६।। और श्रावण मास के आने पर लोमश ऋषिके वचनको स्मरण करके सब श्रद्धासमेत राजा सहित व्रत किये ।।३७।। और वे सब लोग द्वादशीके दिन वह पुण्य राजाको दे दिया । पुण्यके देनेसे रानी ने सुन्दर गर्भको धारण किया ।। ३८ ।। और प्रसवकालके आने पर तेजस्वी पुत्रका जन्म दिया हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! इस प्रकार वह पुत्रदा नामसे विख्यात हुई ।। ३९ ।। इस लोक और परलोकमें सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको यह व्रत करना उचित है ।। ४०।। इसके माहात्म्य

प्रमुच्यते॥ इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिर्भवेत् ॥४१॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे श्रावण शुक्लैकादशीपुत्रदामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ १८ ॥ अथ भाद्रपदकृष्णैकादशी कथा॥ युधिष्ठिर उवाच॥ भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन॥१॥
श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणुष्वैकमना राजन्कथयिष्यामि विस्तरात् ॥ अजानाम्नीति विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी॥२॥ पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतं तस्याः करोति यः॥ पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि ॥ ३ ॥

को सुनकर मनुष्य सब पोपोंसे छूट जाताहै और इस लोकमें पुत्रके सुखको प्राप्त कर परलोकमें स्वर्गकी प्राप्ति करता है॥४१॥ इति श्रीपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां श्रावणशुक्लैकादशीपुत्रदा कथा सम्पूर्णा ॥ १८ ॥ अथ भाद्रपदकृष्णैकादश्यजाकथा ॥ "भाद्रस्य कृष्णपक्षे या अजाख्यैकादशी स्मृता ॥ तन्माहात्म्यस्यभाषायां टीकां कुर्वे प्रदीपिकाम् ॥ १ ॥"
युधिष्ठिर बोले – कि, भादोंके कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है हे जनार्दन यह सुननेकी मेरी इच्छा है वह आप कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजन् ! एकाग्र मन होकर सुनिये ! मैं विस्तारपूर्वक कहूंगा। अजा नामसे विख्यात वह सब पापोंको नाश करती है॥ २ ॥ जो मनुष्य हृषीकेश भगवान्का पूजन करके उस व्रत को करता है उसके पाप व्रतके श्रवण मात्रसे ही नष्ट हो जाते हैं। ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दोनों

नातः परतरा राजँल्लोकद्वयहितावहा ॥ सत्यमुक्तं मया ह्येतन्नासत्यं भाषितं मम ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरः ॥ चक्रवर्ती सत्यसन्धः समस्ताया भुवः पतिः ॥५॥ कस्यापि कर्मणो योगाद्राज्यभ्रष्टो बभूव सः ॥ विक्रीय वनितां पुत्रान्स चकारात्मविक्रयम् ॥६॥ पुल्कसस्य च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् ॥ सत्यमालंब्य राजेन्द्रमृतचैलापहारकः ॥७॥ सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलितस्तथा ॥ एवं गतस्य नृपतेर्बहवो वत्सरा गताः ॥८॥ ततश्चिंतापरो राजा बभूवात्यन्तदुःखितः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि निष्कृतिर्मे कथं भवेत् ॥ ९ ॥ इति चिन्तयतस्तस्य मग्नस्य वृजिनार्णवे ॥ आजगाम मुनिः कश्चिज्ज्ञात्वा राजानमातुरम् ॥ १० ॥

लोकमें हितकी करनेवाली इससे परे और कोई एकादशी नहीं है, मैंने यह सत्य कहा मेरा वचन झूठा नहीं होता ।।४।। पहले हरिश्चन्द्र नामके एक राजा हुये, वे चक्रवर्ती, सत्यप्रतिज्ञावाले और समस्त भूमिके स्वामी हुये ।। ५ ।। किसी कर्मके योगसे वह राज्यसे भ्रष्ट हो गये और स्त्री तथा पुत्रको बेंचकर स्वयं भी बिक गये ।। ६ ।। वह पुण्यात्मा राजा चांडालका दास हो गया, हे राजेंद्र ! सत्यको धारण किये हुये वह मृतकोंके वस्त्र कर रूपमें हरण करने लगा ।। ७ ।। और वह श्रेष्ठ राजा अपने सत्यस चलायमान नहीं हुआ, इस प्रकारसे राजाके बहुतसे वर्ष व्यतीत हो गये ।। ८।। तदनन्तर चिंतामें मग्न वह राजा अत्यंत दुःखित होकर कहने लगा—क्या करूं, कहां जाऊं, तथा कैसे मेरा उद्धार हो ।।९।। पापरूपी समुद्रमें डूबा हुआ वह राजा इस प्रकार चिंतामें मग्न हो रहा था उसी समय रजाको आतुर जानकर कोई मुनि आया।।१०।।पराया

परोपकरणार्थाय निर्मितो ब्रह्मणा द्विजः ॥ स तं दृष्ट्वा द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः ॥ ११ ॥ कृत्ताञ्जलिपुटो भूत्वा गौतमस्याग्रतः स्थितः ॥ कथयामास वृत्तांतमात्मनो दुःखसंयुतम् ॥१२॥ श्रुत्वा नृपतिवाक्यानि गौतमो विषयान्वितः॥ उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य मुनिर्ददौ ॥१३॥

मासि भाद्रपदे राजन् कृष्णपक्षे तु शोभना ॥ एकादशी समायाता अजानाम्न्यतिपुण्यदा ॥१४॥ तस्याः कुरु व्रतं राजन् पापनाशो भविष्यति॥ तव भाग्यवशादेषा सप्तमेऽह्निसमागता ॥ १५ ॥ उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु ॥ एवं तस्या व्रते चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ १६ ॥ तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम ॥ इत्येवं कथयित्वा तु मुनिरन्तरधीयत॥१७॥ मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम् ॥कृते तस्मिन् व्रते राज्ञः

उपकारके निमित्त ही ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को रचा है, वह श्रेष्ठ राजा उस ब्राह्मणको देखकर नमस्कार किया ॥११॥ वह राजा हाथ जोड़ कर गौतमके आगे खड़ा होकर दुःखसंयुक्त अपने वृत्तांतको सुनाने लगा ॥१२॥ राजाके वचन सुनकर गौतम विस्मयसे युक्त होकर उस राजाको इस व्रतका उपदेश दिया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! भादोंके महीनेके कृष्णपक्षमें सुन्दर अतिपुण्यको देने वाली अजा नाम एकादशी आई है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! उसका तुम व्रत करो तुम्हारा पाप नष्ट हो जायेंगे । तुम्हारे भाग्य वश सातवें दिन आई है ॥ १५ ॥ उपवासमें तत्पर होकर रात्रिमें जागरण करो इस प्रकार उसके करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायेंगे ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम ! मैं तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे ही यहां आ गया हूं इस प्रकार कहकर मुनि अन्तर्धान हो गये ॥ १७ ॥ मुनि के वाक्य सुनकर राजाने उत्तम व्रत किया । और उस व्रत के प्रभाव

पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ॥ १८ ॥ श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च ॥ यद्दुःख बहुभिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयो भवेत् ॥ १९ ॥ निस्तीर्णदुःखो राजासीद् व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥ पत्न्या सह समायोगं पुत्रजीवनमाप सः ॥ २० ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षमभूद्दिवः ॥ एकादश्याः प्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ २१ ॥ स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपुरः सपरिच्छदः ॥ ईदृग्विधं व्रतं राजन्ये कुर्वंति द्विजोत्तमाः ॥२२॥ सर्वपाप-विनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति ते ध्रुवम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥२३॥ इति श्री ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे भाद्रपदकृष्णे अजानामैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥१९॥ अथ भाद्रपदशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच॥

से वह क्षणमात्र में ही पापरहित हो गया ।। १८ ।। हे राजशार्दूल ! इस व्रतके प्रभाव को सुनिये, जो दुःख बहुत वर्षों तक भोगने योग्य हो वह भी तत्क्षण नष्ट हो जाता है ।। १९ ।। इस व्रतके प्रभावसे राजा दुःखसे पार हो गया और स्त्रीके साथ पुनः संयोग और पुत्रके पुनर्जीवन को प्राप्त किया ।। २० ।। देवताओंके नगारे बज उठे और आकाशसे फूलकी वर्षा होने लगी। एकादशीके प्रभावसे उसे अकंटक राज्य मिला ।। २१ ।। राजा हरिश्चन्द्र पुरवासियों और अपने सब परिवारसमेत स्वर्गको प्राप्त किये। हे राजन् ! इस प्रकारके व्रतको जो द्विजोत्तम करते हैं ।। २२ ।। वे सब पापोंसे मुक्त होकर निश्चय स्वर्गको जाते हैं। हे राजन् ! पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ।। २३ ।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां भाद्रपद कृष्णैकादशीकथा समाप्ता ।। १९ ।। अथ भाद्रपद शुक्लैकादशीजयन्तीकथा ।। भाद्रस्य शुक्लपक्षे या जयन्त्येकादशी भवेत् ।। तन्माहात्म्यमहं सम्यग्विवृणोमि स्वभाषया ।। १ ।।

नभस्यसितपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं च वदस्व नः ॥ १ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम् ॥ वामनैकादशी राजन्सर्वपापहरां पराम् ॥२॥
इमामेव जयंत्याख्यां प्राहुरेकादशीं नृप ॥ तस्या श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३ ॥ वाजपेयफलं प्रोक्तं
नातः परतरं नृणाम्॥ पापिनां पापशमनं जयन्तीव्रतमुत्तमम् ॥ ४ ॥ नातः परतरा राजन्न वै मोक्षप्रदायिनी ॥
एतस्मात् कारणाद्राजन् कर्तव्या गतिमिच्छता ॥ ५ ॥ वैष्णवैर्मम भक्तैस्तु मनुजैर्मत्परायणैः ॥ नभस्ये वामनो
यैस्तु पूजितस्तैर्जगत्त्रयम् ॥६॥ पूजितं नात्र संदेहस्ते यान्ति हरिसन्निधिम्॥ वामनाः पूजितो येन कमलैः कम-

युधिष्ठिर बोले–कि भादों शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम है, उसकी विधि क्या है और पुण्य क्या है वह मुझ सुनाइये ।। १ ।। श्रीकृष्ण बोले–कि हे राजन् ! महान् पुण्यवाला स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाली और सब पापोंको हरनेवाली श्रेष्ठ वामन एकादशीको कहता हूँ ।। २ ।। हे नृप ! इसी को जयन्ती एकादशी कहते हैं, उसके श्रवणमात्रसे ही सब पापों का क्षय हो जाता है ।। ३ ।। वाजपेय यज्ञका फल भी मानव के लिये इसके बराबर नहीं कहा है । यह उत्तम जयन्तीका व्रत पापी मनुष्योंके पापको शांत करनेवाला है ।। ४ ।। इससे परे और कोई मोक्ष को देनेवाली नहीं है हे राजन् ! इस कारणसे गतिके चाहनेवाले मनुष्योंको यह व्रत करना योग्य है ।। ५ ।। मुझ में लगे रहन वाले मेरे वैष्णव भक्तों को भादोंमें वामनके पूजन से तीनों लोक की पूजा का फल मिलता है ।।६।। उस पूजन से मनुष्य हरिके संनिकट जाता है इसमें सन्देह

लेक्षणः ॥७॥ नभस्यसितपक्षे तु जयंत्येकादशीदिनम्॥ तेनार्चितं जगत्सर्वं त्रयो देवा सनातनाः ॥८॥ एतस्मा-त्कारणाद्राजन्कर्तव्यो हरिवासरः ॥ अस्मिन् कृते न कर्त्तव्यं किंचिदस्ति जगत्त्रये॥९॥अस्यां प्रसुप्तो भगवा-नेत्यङ्गपरिवर्त्तनम् ॥ तस्मादेनां जनाः सर्वे वदंति परिवर्तिनीम् ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संशयोऽस्ति महान्मह्यं श्रूयतां च जनार्दन ॥ कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं यास्यङ्गवर्तनम् ॥११॥ किमर्थं देवदेवेश बलिर्बद्ध-स्त्वयाऽसुरः ॥ सन्तुष्टा पृथिवी देवाः किमकुर्वञ्जनार्दन ॥१२॥ को विधिः किं व्रतं चैव चातुर्मास्यमुपासताम् ॥ त्वयि सुप्ते जगन्नाथ किं कुर्वंति जनाः प्रभो ॥ १३ ॥

नहीं है। कमलके समान नेत्र हैं जिनके ऐसे वामन का जिन्होंने कमलके फूलसे पूजन किया ।। ७ ।। भादोंके शुक्लपक्षमें जिसने जयन्ती एका-दशीका व्रत किया उसने सब जगत्का पूजन कर लिया और तीनों सनातन देवता अर्थात् ब्रह्मा विष्णु महेशका भी पूजन कर लिया ।।८ ।। हे राजन् ! इस कारण से हरिवासर करना चाहिये इसके करनसे तीनों लोकमें और कुछ करना शेष नहीं है ।। ९ ।। सोये हुये भगवान् इस एका-दशीके दिन करवट लेते हैं अतः इसे सब लोग परिवर्तिनी कहत हैं ।। १० ।। युधिष्ठिर बोले—कि, हे जनार्दन ! मुझे बड़ा संदेह हैं उसे सुनिये हे देवेश ! आप कैसे सोये हैं और कैसे अंगपरिवर्तन करते हो अर्थात् करवट लेते हो ।। ११ ।। हे देवदेवेश ! आपने बली नाम असुरको क्योंकर बांध लिया ? हे जनार्दन ! संतुष्ट होकर ब्राह्मणने क्या किया ।। १२ ।। चतुर्मास्य व्रत करने वाले मनुष्यके लिये कौनसी विधि है और क्या

एतद्विस्तरतो ब्रूहि संशयं हर मे प्रभो ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथां पापहरां पराम् ॥१४॥ बलिर्वै दानवः पूर्वमासीत्त्रेतायुगे नृप ॥ अपूजयन्त्र मां नित्यं मद्भक्तो मत्परायणः ॥ १५ ॥ जपैस्तु विविधैः सूक्तैर्यजते मांस नित्यशः ॥ द्विजानां पूजको नित्यं यज्ञकर्मकृताशयः ॥१६॥ परं त्विन्द्रकृतद्वेषी देवलोकमजीजयत् ॥ मद्दत्तमिन्द्रलोकं वै जितं तेन महात्मना ॥ १७॥ विलोक्य च ततः सर्वे देवाः संहत्य मंत्रयन् ॥ सर्वैर्मिलित्वा गंतव्यं देवं विज्ञापितुं प्रभुम् ॥१८॥ ततश्च देवऋषिभिः साकमिन्द्रो गतः प्रभुम् ॥ शिरसा ह्यवनिं गत्वा स्तुत इन्द्रेण सूक्तिभिः ॥ १९॥ गुरुणा दैवतैः सार्द्धं बहुधा पूजितो ह्यहम् ॥ ततो वामनरूपेण

व्रत है, हे प्रभो ! हे जगन्नाथ ! तुम्हारे सोनेपर मनुष्य क्या करते हैं ॥ १३ ॥ यह विस्तारसे कहो और मेरे संदेहको दूर करो, कृष्ण बोले—कि हे राजशार्दूल ! पापनको नाश करने वाली उत्कृष्ट कथाको सुनो ॥ १४ ॥ हे नृप ! पहले त्रेतायुग में बलि नामका दानव हुआ मुझमें परायण और मेरे भक्त वह बलि नित्यही मेरा पूजन करता था ॥ १५ ॥ नाना प्रकारक जप और सूक्तोंसे वह नित्य मेरी पूजा करता था। नित्य ब्राह्मणोंका पूजन तथा यज्ञकर्म करता था ॥१६॥ परन्तु वह इंद्रसे द्वेष करके देवलोकोंको जीत लिया। उस महात्मा द्वारा मेरा दिया हुआ देवलोक जीता गया ॥१७॥ इस वातको देखकर सब देवता इकट्ठे होकर विचार किये कि सब मिलकर प्रभु से निवेदन करनेके लिये चलना चाहिये ॥ १८ ॥ उसके बाद देवगणोंके साथ इंद्र प्रभुके समीप गया। और मस्तक भूमिमें लगाकर इन्द्रने सूक्तसे मेरी स्तुति करने लगा ॥ १९ ॥ देवताओंसहित बृहस्पति द्वारा मैं बहुधा पूजित हुआ और उसके बाद वामनरूपमे मैंने पांचवां अवतार लिया ॥ २० ॥ तब संपूर्ण ब्रह्माण्ड में

ह्यवतीर्णश्च पञ्चमे ॥ २० ॥ अत्युग्ररूपेण तदा सर्वब्रह्मांडरूपिणा ॥ बालकेन जितः सो वै सत्यमालम्ब्य तस्थिवान् ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ त्वया वामनरूपेण सोऽसुरश्च जितः कथम् ॥ एतत्कथय देवेश मह्यं भक्ताय विस्तरात् ॥२२॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ मया बालेन स बलिः प्रार्थितो बटुरूपिणा ॥ पदत्रयमितां भूमिं देहि मे भुवनत्रयम् ॥२३॥ दत्तं भवति ते राजन्नात्र कार्या विचारणा॥ इत्युक्तश्च मया राजा दत्तवांस्त्रिपदां भुवम्॥२४॥ संकल्पमात्राद्ववृधे देहस्त्रैविक्रमः परम् ॥ भूर्लोके तु कृतौ पादौ भुवर्लोके तु जानुनी ॥ २५ ॥ स्वर्लोके तु कटिं न्यस्य महर्लोके तथोदरम् ॥ जनलोके तु हृदयं तपोलोके च कण्ठकम् ॥२६॥ सत्यलोके मुखं स्थाप्य उत्तमांगं तथोर्ध्वतः ॥ चन्द्रसूर्यग्रहाश्चैव भगणो योगसंयुतः ॥२७॥ सेन्द्राश्चैव तथा देवानागाः

व्याप्त ऐसा उग्ररूप धारण करनेवाला मैं बालक रूपमें सत्यमें स्थित उस बलिको जीत लिया ॥२१॥ युधिष्ठिर बोले—कि, देवेश ! वामनरूप-धारी आप से वह असुर कैसे जीता गया यह मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण बोले—कि, ब्रह्मचारी रूप मुझ बालक द्वारा राजा बलि से प्रार्थनापूर्वक तीन पग प्रमाण भूमि मांगी गई जो मेरे लिए त्रिभुवन है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह दीजिये इसमें विचार न करिये । मैंने जब इस प्रकार कहा तो वह राजा बलि तीन पग भूमि मुझे दिया ॥ २४ ॥ संकल्प मात्रसे ही वह त्रिविक्रमका देह बहुतही बढ़ गया । भूर्लोकमें तो पैर और भुवर्लोकमें जंघा किया ॥२५॥ और स्वर्गलोकमें कटिको स्थापित करके महर्लोकमें पेटको रखा, और जनलोकमें हृदय और तपोलोक में कंठको ॥ २६ ॥ सत्यलोकमें मुखको स्थापित कर उसके ऊपर शिर स्थापित किया तथा चंद्र सूर्य आदि ग्रह और योगोंसे युक्त नक्षत्र गण

शेषादयः परे ।। स्तुवंतो वेद संभूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तु माम् ।। २८ ।। करे गृहीत्वा तु बलिमब्रुवं वचनं तदा ।। एकेनपूरिता पृथ्वी द्वितीयेन त्रिविष्टपम् ।। २९ ।। तृतीयस्य तु पादस्य स्थानं देहि ममानघ ।। एवमुक्ते मया सोऽपि मस्तकं दत्तवान्बलिः ।।३०।। ततो वै मस्तकं ह्येकं पदं दत्तं मया तदा ।। क्षिप्तो रसातले राजन्दानवो मम पूजकः ।।३१।। विनयावनतं दृष्ट्वा प्रसन्नोऽस्मि जनार्दनः ।। बले वसामि सततं सन्निधौ तव मानद ।।३२।। इत्यवोचं महाभागं बलिं वैरोचनं तदा ।। नभस्यशुक्लपक्षे तु परिवर्तिनि वासरे ।। ३३ ।। ममैका तत्र मूर्त्तिश्च बलिमाश्रित्य तिष्ठति ।। द्वितीया शेषपृष्ठे वै क्षीराब्धौ सागरोत्तमे ।।३४।। सुप्यते च हृषीकेशो यावन्नायाति कार्त्तिकी ।। तावद्भ-

।। २७ ।। और इन्द्र समेत देवता तथा शेष और नाग वेदसे उत्पन्न नाना प्रकारके सूक्त द्वारा मेरी स्तुति करने लगे ।। २८ ।। तब मैंने बलिका हाथ पकड़ कर ऐसा कहा कि, एक पगसे तो मैंने पूर्ण पृथ्वी और दूसरेपगसे स्वर्ग लोक नाप लिया ।।२९।। हे निष्पाप ! तीसरे पग बराबर भूमि दीजिये हमार ऐसा कहने पर बलिने अपना मस्तक दिया ।। ३० ।। उसके मस्तक पर तीसरे पांव दिया तो वह मेरी पूजन करनेवाला दानव पातालको चला गया ।। ३१ ।। उसकी नम्रता से मैं प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि हे बलि ! मैं सदैव तुम्हारे समीप वास करूंगा ।। ३२।। उस समय मैंने विरोचनके पुत्र बलिसे इस प्रकार कहा । कि, भादोंके शुक्लपक्षमें परिवर्तिनी एकादशीका व्रत करो ।। ३३ ।। और पातालमें एक मेरी मूर्ति बलिका आश्रय लिये हुये स्थित है और दूसरी उत्तम क्षीरसागरमें शेषनागकी पीठिपर स्थित है ।। ३४ ।। कार्तिक मास आने तक

वति तत्पुण्यं सर्वपुण्योत्तमोत्तमम् ॥ ३५ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्या च प्रयत्नतः ॥ एकादशी महापुण्या पवित्रा पापहारिणी॥३६॥ अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यंगपरिवर्त्तनम् ॥ एतस्यां पूजयेद्देवं त्रैलोक्यस्य पितामहम् ॥३७॥ दधिदानं प्रकर्तव्यं रौप्यतंदुलसंयुतम्॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा मुक्तो भवति मानवः॥३८॥ एवं यः कुरुते राजन्नेकादश्यां व्रतं शुभम् ॥ सर्वपापहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ३९ ॥ स देवलोकं संप्राप्य भ्राजते चन्द्रमा यथा ॥ शृणुयाच्चैव यो मर्त्यः कथां पापहरां पराम् ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥४०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भाद्रपदशुक्लपरिवर्तिनीनामैकादशीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥२०॥ अथाश्विनकृष्णैका-

हृषीकेश शयन करते हैं उनके शयन समयमें जो पुण्य होता है वह सब पुण्योंमें उत्तम होता है ।। ३५ ।। हे राजन् ! इसलिए महापुण्य, पवित्र और पापको हरने वाली यह एकादशी करनी चाहिये ।। ३६ ।। इस एकादशीके दिन सोये हुये भगवान् करवट लेते हैं इसमें तीनों लोकके पितामह भगवान् ब्रह्माका पूजन करना चाहिये ।। ३७ ।। दहीका दान करना चाहिये और चावलोंके साथ चांदीका दान करे और रात्रिमें जागरण करके मनुष्य मुक्त हो जाता है ।। ३८ ।। हे राजन् ! इस प्रकार जो पापों को हरने वाली और भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी इस शुभ एकादशी का व्रत करते हैं । ।। ३९ ।। वे देवलोकको प्राप्त कर चन्द्रमाके समान शोभित होते हैं, और जो मनुष्य पापोंको हरनेवाली इस कथाको सुनते हैं, वे मनुष्य एक हजार अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त करते हैं ।। ४० ।। इतिश्रीमत्पंडितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसाद-शर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां भाद्रपद शुक्लैकादशीपरिवर्तिनीकथा समाप्ता ।। २० ।। अथा-

दशीकथा ।। युधिष्ठिर उवाच ।। कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ।। आश्विने कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ।। आश्विनस्यासिते पक्षे इंदिरा नाम नामतः ।। तस्या व्रतप्रभावेण महापापं प्रणश्यति ॥ २ ॥ अधोयोनिगतानां च पितॄणां गतिदायिनीम् ।। शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण बाजपेयफलं लभेत् ।। पुरा कृतयुगे राजा बभूव रिपुसूदनः ॥ ४ ॥ इन्द्रसेन इति ख्यातः पुरीं माहिष्मतीं प्रति ।। स राज्यं पालयामास धर्मेण यशसाऽन्वितः ॥५॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णुभक्तिपरायणः ॥६॥ जपन् गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः ॥

शिवनकृष्णपक्षे इंदिरैकादशीकथा ।। आश्विनस्यासिते पक्षे इंदिरैकादशी स्मृता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां बिवृतिं रचयाम्यहम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि, हे मधुसूदन ! आश्विनके कृष्णपक्षकी एकादशी का क्या नाम है वह मुझे प्रसन्नतापूर्वक सुनायें ।। १ ।। श्रीकृष्ण बोले–कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें इंदिरा नामकी एकादशी होती है, उस व्रतके प्रभावसे महान् पाप नष्ट हो जाते हैं ।। २ ।। नरकमें पड़े हुये पितरों को मोक्ष प्रदान करनेवाली और पापोंको नष्ट करने वाली इसकी कथा को सावधान होकर सुनिये ।। ३ ।। जिसके श्रवण मात्रसे ही वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है । सत्ययुगमें रिपुसूदन नाम का राजा हुआ ।। ४ ।। इंद्रसेन नामसे प्रसिद्ध माहिष्मती पुरीका राजा हुआ । यशस्वी वह राजा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता रहा ।। ५ ।। पुत्र पौत्रों से युक्त और धनधान्य से भर-पूर माहिष्मतीका स्वामी वह राजा विष्णुभक्तिमें परायण था ।। ६ ।। मुक्तिके देनवाले गोविंदके नामका जप करता और विधिवत् अध्यात्म विद्याका चिंतन करता, जप-तपमें ही समय

कालं नयति विधिवदध्यात्मस्य विचिन्तकः ॥ ७ ॥
एकस्मिन्दिवसे राज्ञि सुखासीने सदोगते ॥ अवतीर्यागमद्धीमानम्बरान्नारदो मुनिः ॥ ८ ॥ तमागतमधिप्रेक्ष्य
प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ पूजयित्वार्घविधिना चासने संन्यवेशयत् ॥ ९ ॥ सुखोपविष्टः स मुनिः प्रत्युवाच
नृपोत्तमम् ॥ कुशलं तव राजेन्द्र सप्तस्वङ्गेषु वर्तते ॥१०॥ धर्मे मतिर्वर्तते ते विष्णुभक्तिरतिस्तथा ॥ इति वाक्यं
तु देवर्षेः श्रुत्वा राजा तमब्रवीत् ॥११॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र कुशलं मम ॥ अद्य क्रतुक्रियाः
सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ॥१२॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे ब्रूह्यागमनकारणम् ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा देवर्षिर्वाक्य-
मब्रवीत् ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम् ॥ ब्रह्मलोकादहं प्राप्तो यमलोकं

व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ एक दिन वह राजा सुखसे सभामें बैठा तो बुद्धिमान नारद मुनि आकाशसे उतरकर उसके समीप आये ॥ ८ ॥
उनको आया हुआ देखकर राजा सुखपूर्वक हाथ जोड़कर अर्घ्यादि से पूजन कर आसन पर बैठाया ॥ ९ ॥ सुखसे बैठे हुये नारदमुनि उस
राजासे कहने लगे कि, हे राजेन्द्र ! तुम्हारे राज्यके सातों अंग सकुशल हैं ॥ १० ॥ तुम्हारी मति धर्ममें है और तुम विष्णुकी भक्तिमे रत
हो । यह देवर्षिके वचन सुनकर राजा उनसे कहने लगा ॥ ११ ॥ राजा बोले–कि हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके प्रसादसे मेरा सर्वत्र कुशल है, आज
संपूर्ण यज्ञकी क्रिया आपके दर्शनसे सफल हुई ॥ १२ ॥ हे विप्रेंद्र ! प्रसन्न हो और अपने आगमन का कारण कहो, राजाका यह वचन सुनकर
देवर्षि नारद कहने लगे ॥ १३ ॥ नारद बोले कि–हे राजशार्दूल ! विस्मयकारक मेरे वचनको सुनिये, हे नृपोत्तम ! मैं एक बार यमलोकमें

नृपोत्तम ॥१४॥ शमनेनार्चितो भक्त्या उपविष्टो वरासने ॥ धर्मशीलः सत्यवांस्तु भास्करं समुपासते ॥ १५ ॥
बहुपुण्यप्रकर्ता च व्रतवैकल्प दोषतः ॥ सभायां श्राद्धदेवस्य मया दृष्टः पिता तव ॥१६॥ कथितस्तेन सन्देशस्तं
निबोध जनेश्वर ॥ इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मतीप्रभुः ॥१७॥ तस्याग्रे कथय ब्रह्मन् स्थितं मां यमसन्निधौ ॥
केनापि चांतरायेण पूर्वजन्मोद्भवेन वै ॥ १८ ॥ स्वर्गं प्रेषय मां पुत्र इंदिराव्रतदानतः ॥ इत्युक्तोऽहं समायातः
समीपं तव पार्थिव ॥१९॥ पितुः स्वर्गतये राजन्निन्दिराव्रतमाचर ॥ तेन व्रतप्रभावेण स्वर्गं यास्यति ते पिता ॥२०॥
राजोवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवन्निंदिराव्रतम् ॥ विधिना केन कर्तव्यं कस्मिन्पक्षे तिथौ तथा ॥ २१ ॥

ब्रह्मलोकसे आया ॥ १४ ॥ यमराजने भक्तिसे पूजन किया और श्रेष्ठ आसन पर बैठाया । वहां धर्मशील सत्यवान् भास्करकी उपासना करते हैं । १५ ॥ बहुतसे पुण्य करने वाला तुम्हारे पिता को व्रतके बिगड़ जानेके दोषसे यमकी सभामें मैंन देखा ॥ १६ ॥ उन्होंने जो संदेशा कहा है, हे जनेश्वर ! उसे सुनिये कि, माहिष्मतीपुरीका मालिक इंद्रसेन नामका राजा है ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! पूर्व जन्ममें हुये किसी व्रत विघ्नसे उसे यमलोकमें स्थान मिला । मुझे ऐसा बताया ॥ १८ ॥ कि, हे पुत्र ! इंदिरा नाम एकादशीका जो व्रत उसके दानसे स्वर्गमें मुझे पहुंचाओ, हे राजन् ! तुम्हारे पिताके इस प्रकार कहने पर मैं तुम्हारे समीप आया हूँ । ॥१९॥ हे राजन् ! पिताके स्वर्ग प्राप्त्यर्थं तुम इंदिराका व्रत करो उस व्रतके प्रभावसे तुम्हारे पिता स्वर्गको जायँगे ॥ २० ॥ राजा बोले–कि हे भगवन् ! आप प्रसन्न होकर मुझसे इंदिराका व्रत कहिये, कि वह व्रत किस विधिसे करना चाहिये और कौनसे दिन तथा कौनसे पक्ष और तिथिमें ॥ २१ ॥ नारद बोले–कि

नारद उवाच ।। शृणु राजन् हितं वच्मि व्रतस्यास्य विधिं शुभम् ।। आश्विनस्यासिते पक्षे दशमी दिवसे शुभे ॥२२॥ प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धायुक्तेन चेतसा ।। ततो मध्याह्नसमये स्नानं कृत्वा बहिर्जले ॥ २३ ॥ पितॄणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।। एकभुक्तं ततः कृत्वा रात्रौ भूमौ शयीत च ॥२४॥ प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशीदिने ।। मुखप्रक्षालनं कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ॥२५॥ उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्ति भावतः ॥ अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ॥ २६॥ श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥ इत्येवं नियमं कृत्वा मध्याह्नसमये तथा॥२७॥ शालग्रामशिलाग्रे तु श्राद्धं कृत्वा यथाविधि ॥ भोजयित्वा द्विजाञ्छुद्धान्दक्षिणाभिः सुपूजितान् ॥ २८ ॥ पितृशेषं समाघ्राय गवे दद्याद्विचक्षणः ।।पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगन्धादिभि-

हे राजन् ! सुनिये, इस व्रतकी शुभ विधिको मैं कहता हूँ । आश्विनके कृष्णपक्षमें सुन्दर दशमीके दिन ।। २२ ।। श्रद्धायुक्त चित्त से प्रातःकाल स्नान करे । तदनन्तर मध्याह्न में स्नान से निवृत्त होकर ।। २३ ।। श्रद्धापूर्वक पितरोंकी प्रसन्नताके लिए श्राद्ध करे, उस दिन एकबार भोजन करके भूमिमें सोये ।। २४ ।। फिर निर्मल प्रभात होने पर एकादशीके दिन दंतधावन करके मुखको धोये ।। २५ ।। फिर भक्ति भावसे व्रतके नियमों को ग्रहण करे कि, आज निराहार रहकर सब भोगों का त्याग करूंगा ।। २६ ।। कल दिनमें भोजन करूंगा, हे पुण्डरीकांक्ष हे अच्युत ! तुम मेरे रक्षक हो इस प्रकार नियमपूर्वक मध्याह्न के समय ।। २७ ।। शालग्राम के सम्मुख विधिपूर्वक श्राद्ध करके शुद्ध ब्राह्मण को भोजन कराकर दक्षिणा सहित पूजन करे ।। २८ ।। पितरोंसे जो शेष रहे उसे सूंघकर विचक्षण पुरुष गौको खिलाये और

स्तथा ॥ २९ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्केशवस्य समीपतः ॥ ततःप्रभातसमये सम्प्राप्ते द्वादशीदिने ॥ ३० ॥ अर्चयित्वा हरिं भक्त्या भोजयित्वा द्विजानथ॥ बंधुदौहित्रपुत्राद्यैः स्वयं भुंजीत वाग्यतः ॥३१॥ अनेन विधिना राजन्कुरु व्रतमतन्द्रितः ॥ विष्णुलोकं प्रयास्यंति पितरस्तव भूपते॥ ३२ ॥
इत्युक्त्वा नृपतिं राजन्मुनिरन्तरधीयत ॥ यथोक्तविधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः ॥ कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥३४॥ तत्पिता गरुडारूढो जगाम मंदिरम्॥ इन्द्रसेनोऽपि राजर्षिःकृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥३५॥ राज्यं निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम् ॥ इंदिराव्रत-

धूपगंध आदिसे हृषीकेश भगवान्का पूजन करे ।। २९ ।। रात्रिमें केशव भगवान्के समीप जागरण करे, प्रभात होने पर द्वादशीके दिन ।। ३० ।। भक्तिसे हरिका पूजन करके और ब्राह्मणको भोजन कराकर दौहित्र-बंधु, पुत्र आदिसमेत मौन होकर भोजन करे ।। ३१ ।। हे राजन् ! इस प्रकार आलस्यरहित होकर व्रतको करो । हे राजन् ! तो तुम्हारे पितर विष्णुलोकको जायँगे ।। ३२ ।। हे राजन् ! इस प्रकार उस नृपतिसे कहकर नारद मुनि अन्तर्धान हो गये और वह राजा कही हुई विधिके अनुसार उत्तम व्रतको किया ।। ३३ ।। रनवास पुत्रों और भृत्यों समेत राजाके व्रत करने पर हे कुन्तीपुत्र ! आकाशसे फूलों की वर्षा होने लगी ।।३४।। और उस राजाका पिता गरुड़ पर चढ़कर विष्णुलोकमें गया और इन्द्रसन राजर्षि भी अकंटक राज्य करके ।।३५।। पुत्रको राज्य देकर स्वयं भी स्वर्गको गया । यह इंदिरा व्रतका माहात्म्य मैंन तुम्हारे

माहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया ॥३६॥ पठनाच्छ्रवणाच्चास्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ भुक्त्वेह निखिलान् भोगान् विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्ते० आश्विन कृष्णैकादशीन्दिरामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २१ ॥ अथ आश्विनशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवन्मधुसूदन ॥ इषस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ शुक्लपक्षे चाश्वयुजे भवेदेकादशी तु या ॥२॥ पाशांकुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ पद्मनाभाभिधानं तु पूजयेत्तत्र मानवः ॥३॥ सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम् ॥ तपस्तप्त्वा नरस्तीव्रं चिरं सुनियतेंद्रियः ॥४॥ यत्फलं

आगे कहा ॥३६॥ इसके पढ़ने और श्रवण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है और विष्णुलोकमें वास करता है ॥३७॥ इति श्रीमत्पंडित-परमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायामिंदिरैकादशीकथा समाप्ता ॥ २१ ॥ अथ आश्विनशुक्लैकादशीकथा ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे यास्ति पाशांकुशाभिधा ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां वच्मि प्रदीपिकाम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले-कि, हे भगवन् ! हे मधुसूदन शुक्लपक्षकी एकादशी का क्या नाम है वह आप मुझे कृपा करके सुनाइये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले-कि, हे राजेन्द्र ! क्वारके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है उसके पापोंको नाश करने वाले माहात्म्य को मैं कहता हूँ तुम सुनो॥ २ ॥ पाशांकुशा उसका नाम है, वह सब पापोंको नष्ट करने वाली है उसमें मनुष्य पद्मनाभ भगवान्का पूजन करता है ॥ ३ ॥ मनुष्यको संपूर्ण वांछित फलोंको देने वाला, स्वर्ग और मोक्षको देनेवाला यह व्रत है, मनुष्य बहुत कालपर्यन्त जितेन्द्रिय रहकर कठोर तपको करके ॥४॥ जो

समवाप्नोति तं नत्वा गरुडध्वजम् ॥ कृत्वापि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥५॥
न याति नरकं घोरं नत्वा पापहरं हरिम् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥६॥ तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥ ७ ॥ न तेषां यमलोकश्च नृणां वै जायते क्वचित् ॥ उपोष्यैकादशीमेकां प्रसंगेनापि मानवाः ॥ ८ ॥ न यांति यातनां याम्यां पापं कृत्वातिदारुणम् ॥ वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शिवनिन्दां करोति यः ॥९॥ यो निंदेद्वैष्णवं लोकं स याति नरक ध्रुवम् ॥ अश्वमेध-सहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ १० ॥ एकादश्युपवासस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ एकादशीसमं पुण्यं

फल प्राप्त करता है वह फल गरुडध्वज भगवान्के नमस्कार करनेसे प्राप्त होता है । मनुष्य अज्ञानतावश बहुतसे पाप करता है ॥५॥ किन्तु पापनाशक हरिको नमस्कार करनेसे पाप का भागी नहीं होता । पृथ्वी के समस्त तीर्थ और पवित्र स्थान मनुष्य को ॥ ६ ॥ विष्णु भगवान् के नाम संकीर्तन से प्राप्त होता है । शार्ङ्गधनुषके धारण करने वाले जनार्दन भगवान् की शरण में जो मनुष्य जाता है ॥ ७ ॥ आज उस मनुष्यनको निश्चय ही कभी भी यमलोककी प्राप्ति नहीं होती है, मनुष्य प्रसंगवशात भी एकादशीका व्रत करके ॥ ८ ॥ अतिदारुण पाप करने पर भी यमकी यातनाको नहीं प्राप्त होता है, जो मनुष्य वैष्णव होकर शिवकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और जो वैष्णवलोककी निंदा करता है वह निश्चय नकरकमें जाता है, हजारों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूच यज्ञ का फल ॥१०॥ एकादशीके व्रतके फल के सोलहवें भाग के बराबर

किञ्चिल्लोके न विद्यते ॥ ११ ॥ नेदृशं पावनं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहा-
निदम् ॥१२॥ यावन्नोपोष्यते जंतुः पद्मनाभदिनं शुभम् ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप ॥१३॥
नैकादशीसमं किञ्चित्त्रिषु लोकेषुविद्यते ॥ व्याजेनापि कृता राजन्न दर्शयति भास्करिम् ॥१४॥ स्वर्गमोक्षप्रदा
ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ॥ सुकलत्रप्रदा ह्येषा धनधान्यप्रदायिनी॥१५॥ न गंगा न गया राजन्न काशी न च
पुरष्करम् ॥ न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यंभूपहरेर्दिनात् ॥ १६ ॥ रात्रौजागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम्॥ अना-
यासेनभूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम् ॥१७॥

भी नहीं होता है । एकादशीके समान कोई पुण्य लोकमें नहीं है ॥११॥ ऐसा पवित्र तीनों लोकमें कुछ नहीं है जैसा यह पद्मनाभ का दिन पापों को नाश करने वाला है ॥ १२ ॥ जबतक मनुष्य इस शुभ पद्मनाभके दिनका व्रत नहीं करता, हे मनुजाधिप ! तभी तक उसके देहमें पाप वास करते हैं ॥ १३ ॥ एकादशीके समान तीनों लोक में कोई व्रत नहीं है, हे राजन् ! किसी भी बहाने से जो इस व्रतको करता है वह यमके दर्शन नहीं करता ॥ १४ ॥ यह स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है और शरीरको आरोग्य करनेवाली है यह सुन्दर स्त्री देनेवाली है और धन-धान्यके बढ़ाने वाली है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! न गंगा, न गया, न काशी को न पुष्कर और न कुरुक्षेत्र हरिके दिनसे पवित्र हैं अर्थात् यह हरिवासर सबसे श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हरिवासरका व्रत करके रात्रिमें जागरण करने से, हे राजन् ! बिना श्रम विष्णुपद प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

दश वै मातृपक्षे च दश राजेन्द्र पैतृके।। प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥ १८ ॥ चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः ।।स्त्रग्विणः पीतवस्त्राश्च प्रयान्ति हरिमंदिरम् ।।१९।। बालत्वे यौवनत्वे च वृद्धत्वेऽपि नृपोत्तम ।। उपोष्य द्वादशी नूनं नैति पापोऽपि दुर्गतिम् ।।२०।। पाशांकुशामुपोष्यैव आश्विने चासितेतरे।। सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं स गच्छति ।।२१।। दत्त्वा हेमतिलान्भूमि गामन्नमुदकं तथा।। उपानद्वस्त्रच्छत्रादि न पश्यति यमं नरः ।।२२।। अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादरिद्रोऽपि नृपोत्तम ।। समाचारन्यथाशक्ति स्नानदानादिकाः क्रियाः ।। २३ ।। तडागारामसौधानां सत्राणां पुण्यकर्मणाम् ।। कर्तारो नैव पश्यन्ति धीरास्तां यमयातनाम् ।।२४।। दीर्घायुषो

इस एकादशीका व्रत करने वाला मनुष्य दश पीढी माताके पक्षकी, दशही पिताके पक्षकी और दश स्त्रीके पक्षकी तारि देता है ।। १८ ।। वे चतुर्भुज दिव्यरूप और गरुड जिनकी ध्वजामें है मालाको धारण किये हुए, पीताम्बरको धारण किये हरिके लोकको जाते हैं ।। १९ ।। बालकपन, जवानी और बुढ़ापेमें हे राजन् ! एकादशी व्रत करके पापात्मा भी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है ।। २० ।। क्वारके शुक्लपक्षमें पाशांकुशाका व्रत करके पापोंसे मुक्त हो मनुष्य विष्णु लोकको जाता है ।। २१ ।। सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूता और छत्र आदिका दान करके मनुष्य यम लोक को नहीं जाता ।। २२ ।। पुण्य रहित समय में सांस लेना लोहारकी धौंकनिके समान है न कि वह जीवित है, हे नरोत्तम ! चाहे दरिद्री ही होय परन्तु शक्तिके अनुसार स्नान-दान आदि क्रियाको करता हुआ जीवन सफल बनावे ।। २३ ।। तालाब, बाग, महल, यज्ञ तथा अन्य पुण्योंको करनेवाला धीर मनुष्य यम-यातनाको नहीं पाता ।। २४ ।। पुण्य करनेवाले मनुष्य लोकमें बड़ी आयुके, धनाढच

धनाढ्याश्च कुलीना रोगवर्जिताः ॥ दृश्यन्ते मानवा लोके पुण्यकर्तार ईदृशाः ॥२५॥ किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् ॥ आरोहंति दिवं धर्मैर्नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥ इति ते कथितं राजन्यत् पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥२७॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे आश्विनशुक्लैकादशीपाशांकुशामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २२ ॥ अथ कार्तिककृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन मम स्नेहाज्जनार्दन ॥ कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथयामि तवाग्रतः ॥ कार्तिके कृष्णपक्षे तु रमानाम्नी शुशोभना ॥२॥ एकादशी समाख्याता महापापहरा परा ॥ अस्याः प्रसंगतो राजन्माहात्म्यं प्रवदामि ते ॥३॥ मुचुकुन्द

कुलीन और रोगरहित दिखाई देते हैं ॥ २५ ॥ बहुत कहनेसे क्या अधर्म स दुर्गतिको प्राप्त होते हैं और धर्मसे स्वर्गको जाते हैं। यह दृढ सिद्धान्त है ॥ २६ ॥ हे अनघ ! हे राजन् ! जो तुमने पूछा वह मैंने तुमसे कहा ॥ २७ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशव-प्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायांदीपिकासमाख्यायामाश्विनशुक्लपाशांकुशानाम्न्येकादशीकथा समाप्ता ॥ २२ ॥ अथ कार्तिककृष्णैकादशीरमाकथा ॥ उर्ज्जस्य कृष्णपक्षे तु रमाख्यैकादशी स्मृता ॥ तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां रम्यां करोम्यहम् ॥ १॥ युधिष्ठिर बोले–कि, हे जनार्दन ! कार्तिकके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है उसका क्या नाम है वह आप कृपा करके मुझे सुनाइये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले–कि, हे राजशार्दूल ! सुनिये, मैं तुम्हें सुनाता हूँ कि, कार्तिकके कृष्णपक्षमें रमानाम सुन्दर शोभायमान एकादशी होती है ॥ २ ॥ यह एकादशी महापातकको नष्ट करने वाली श्रेष्ठ एकादशी है। हे राजन् ! प्रसंगवश अब इस माहात्म्य को सुनाता हूँ ॥ ३ ॥ पहले

इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ॥ देवेन्द्रेण समं यस्य मित्रत्वमभवन्नृप ॥४॥ यमेन वरुणेनैव कुबेरेण समं तथा ॥ विभीषणेन चैतस्य सखित्वमभवत्सह ॥५॥ विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः सदा ॥ तस्यैवं शासतो राजन् राज्यं निहतकण्टकम् ॥६॥ बभूवदुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा ॥ शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेन सुताय वै ॥७॥ स कदाचित्समायातः श्वशुरस्य गृहे नृप ॥ एकादशीव्रतमिदं समायातं सुपुण्यदम् ॥८॥ समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिंतयत् ॥ किं भविष्यति देवेश मम भर्तातिदुर्बलः ॥ ९ ॥ क्षुधां न सहते सोऽपि पिता चैवोग्रशासनः ॥ पटहस्ताडयते यस्य संप्राप्ते दशमीदिने ॥१०॥ न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ॥ श्रुत्वा पटहनिर्घोषं

मुचुकुन्द नामका प्रसिद्ध राजा हुआ । हे नृप ! इन्द्रके साथ उसकी मित्रता थी ।। ४ ।। वरुण कुबेर और बिभीषणके साथ भी उसकी वैसी ही मित्रता थी ।। ५ ।। वह राजा सदा विष्णु भक्त और सत्यप्रतिज्ञावाला था। हे राजन् ! इस प्रकार निष्कंटक राज्य करते हुये उस राजाके ।।६ ।। घर नदियोंमें श्रेष्ठ चन्द्रभागा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई । वह शोभन नामक चन्द्रसेनके पुत्रको दे दी ।। ७ ।। हे नृप ! वह शोभन कभी श्वसुरके घर आया उस समय पुण्यको देनेवाला एकादशीका व्रत आया ।। ८ ।। व्रत दिनके आने पर चन्द्रभागा चिन्तन करने लगी कि हे देवेश ! अब क्या होगा मेरा पति दुर्बल है ।। ९ ।। वह क्षुधाको नहीं सह सकता और मेरे पिताका शासन उग्र है। दशमीका दिन जब आता है तब उसका ढोल बजता है ।। १० ।। कि हरिके दिन भोजन न करना चाहिये, न करना चाहिये, न करना चाहिये, या प्रकारके

शोभनस्त्वब्रवीत्प्रियाम्॥११॥ किं कर्तव्यं मया कान्ते देहि शिक्षां सुशोभने ॥ कृतेन येन मे सम्यग्जीवितं न विनश्यति॥१२॥ चन्द्रभागोवाच॥ मत्पितुर्वेश्मनि विभो भोक्तव्यं नैव केनचित्॥ गजैरश्वैस्तथा चान्यैरन्यैः पशुभिरेव च॥१३॥ तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने ॥ मानवैश्च कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे॥१४॥ यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गेहात्प्रयास्यताम् ॥ एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसं कुरु॥१५॥ शोभन उवाच॥ सत्यमेतत्त्वयैवोक्तं करिष्येऽहमुपोषणम् ॥ दैवेन विहितं यद्वै तत्तथैव भविष्यति ॥१६॥ इति दिष्टे मतिं कृत्वा चकार व्रतमुत्तमम्॥ क्षुत्तृषापीडिततनुः स बभूवाति दुःखितः॥१७॥ इति चिन्तयतस्तस्य ह्यादित्योऽस्तमया-

उस ढोलका शब्द सुन शोभन अपनी प्रियासे कहने लगा ।। ११ ।। कि, हे कान्ते ! मुझे अब क्या करना चाहिये, हे सुशोभने ! तू मुझे वह शिक्षा दे जिसके करनेसे मेरे जीवनकी रक्षा हो ।। १२ ।। चन्द्रभागा बोली–कि, हे प्रभो ! मेरे पिताके घरमें आज कोई भोजन नहीं करेगा। हाथी, घोड़े, ऊंट तथा अन्य पशु भी भोजन नहीं करेंगे ।। १३ ।। घास, अन्न और जलको भी हरिके दिन कोई नहीं खायगा। हे पति ! तो मनुष्य हरिवासरके दिन कैसे खायँगे ।। १४ ।। हे पति ! यदि तुम भोजन करोगे तो घरसे जाइये, मनमें ऐसा विचार करके अपने मनको दृढ़ कीजिये ।। १५ ।। शोभन बोले–तूने सत्य कहा मैं व्रत करूँगा, दैवने जो जैसा विधान बनाया है वैसाही होगा ।। १६ ।। ऐसे भाग्यमें मति करके उसने उत्तम व्रतको किया। भूख और प्यास से पीडित शरीर वाला वह शोभन अति दु:खित हुआ ।। १७ ।। उसके इस प्रकार चिंतन

द्विरिम् ॥ वैष्णवानां नराणां सा निशा हर्षविवर्द्धिनी ॥ १८ ॥ हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम् ॥ बभूव नृपशार्दूल शोभनस्यातिदुःसहा ॥१९॥ रवेरुदयवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः ॥ दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः ॥२०॥ चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पितृवारिता ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि ॥२१॥ शोभनेन नृपश्रेष्ठ रमाव्रत प्रभावतः ॥ प्राप्तं देवपुरं रम्यं मन्दराचलसानुनि ॥२२॥ अनुत्तममनाधृष्यमसंख्येयगुणान्वितम् ॥ हेमस्तंभमयै सौधै रत्नवैडूर्यमण्डितैः ॥२३॥ स्फाटिकैर्विविधाकारैर्विचित्रैरुपशोभितम् ॥ सिंहासनसमारूढः सुश्वेतच्छत्रचामरः ॥२४॥ किरीट कुण्डलयुतो हारकेयूरभूषितः ॥ स्तूयमानश्च गन्धर्वैर-

करते-करते सूर्य अस्ताचलको चले गये । वैष्णवोंके लिये वह रात्रि हर्षको बढ़ाने वाली हुई ।। १८ ।। हरिकी पूजामें लगे हुये, वैष्णवों के हर्षको बढ़ाने वाली हुई, हे नृपशार्दूल ! वह शोभनको अतिदुस्सह हो गई ।। १९ ।। सूर्योदय होनेपर शोभनकी मृत्यु हो गई । तब राजाने उनका राजाके योग्य चन्दन आदि काष्ठसे दाह कराया ।। २० ।। और पिताके निवारण करने घर चन्द्रभागा अपने देहको नहीं जलाई । फिर उसक प्रेतकृत्य को करके पिताके ही घरमें स्थित रही ।। २१ ।। हे नृपश्रेष्ठ ! रमा व्रतके पुण्यसे वह सुन्दर मंदराचल शिखरपर स्थित मनोहर देवपुरको प्राप्त किया ।। २२ ।। वह देवपुर सबसे उत्तम है और उसे कोई दबा नहीं सकता है और असंख्य गुणोंसे युक्त है । रत्न और वैडूर्य मणिसे जड़ हुये सुवर्णके खंभ वाल महलोंसे शोभित है ।। २३ ।। नाना प्रकारके आकारवाले विचित्र स्फटिकमणियों से शोभित मंदिरमें शोभन सिंहासंन पर बैठा है, उसके ऊपर श्वेत छत्र लगा है और चमर ढुर रहे हैं ।। २४ ।। किरीट माथेपर है कुण्डल धारण किये हैं

प्सरोगणसेवितः ॥२५॥ शोभनः शोभते तत्र देवराडपरो यथा ॥ सोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरे वसन्॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन भ्रमन्विप्रो ददर्श तम् ॥२६॥

नृपजामातरं ज्ञात्वा तत्समीपं जगाम सः ॥ आसनादुत्थितः शीघ्रं नमश्चक्रे द्विजोत्तमम् ॥ २७ ॥ चकार कुशलप्रश्नं श्वसुरस्य नृपस्य च ॥ कांतायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च ॥२८॥ शोमसर्मोवाच॥ कुशलं वर्तते राजञ्छ्वशुरस्य गृहे तव ॥ चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे ॥२९॥ स्ववृत्तं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं परमं मम ॥ पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित्क्वचित् ॥ ३० ॥ एतदाचक्ष्व नृपते कुतः प्राप्तमिदं त्वया ॥ शोभन

हार और केयूरसे शोभित, गन्धर्व स्तुति कर रहे हैं और अप्सराओं से सेवित है ।। २५ ।। वहां शोभन ऐसा शोभित है मानो दूसरा इन्द्र है, सोमशर्मा नामसे विख्यात मुचुकुन्द पुरका रहनेवाला एक ब्राह्मण तीर्थयात्राके प्रसंग से वहां पहुंचकर शोभनको देखा ।। २६ ।। वह राजा का जमाई जानकर उनके समीप गया । तब शोभन शीघ्रही असानसे उठकर उस ब्राह्मण को नमस्कार किया ।। २७ ।। और ससुरा जो राजा है उसकी कुशल पूछने लगा और स्त्री जो चन्द्रभागा है उसकी तथा नगरकी कुशल पूछा ।। २८ ।। सोमशर्मा बोले–कि हे राजन् तुम्हारे ससुरेके घरमें कुशल है, चन्द्रभागा भी कुशलिनी है और पुरमें सब कुशल है ।। २९ ।। हे राजन् ! अपना वृत्तांत कहिये, मुझे बड़ा आश्चर्य है, ऐसे विचित्र सुन्दर पुर को जिसे कभी किसीने न देखा हो ।। ३० ।। हे राजन् ! यह कहिये कि, तुमने इसे कैसे पाया, शोभन

उवाच ॥ कार्तिकस्यासिते पक्षे नाम्ना चैकादशीरमा ॥ ३१ ॥ तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्र पुरमध्रुवम् ॥ ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ द्विजेन्द्र उवाच ॥ कथमध्रुवमेतद्धि हि भवति ध्रुवम् ॥ तत्त्वं कथय राजेन्द्र तत्करिष्यामि नान्यथा ॥३३॥ शोभन उवाच ॥ मयैतद्विहितं विप्र श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम् ॥ तेनाहमध्रुवम् मन्ये ध्रुवं भवति तच्छृणु ॥३४॥ मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना ॥ तस्यै कथय वृत्तान्तं ध्रुवमेतद्भविष्यति ॥३५॥ तच्छ्रुत्वाथ द्विजवरस्तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥ श्रुत्वाऽथ सा द्विजवचो विस्मयोत्फुल्ललोचना ॥३६॥ प्रत्यक्ष मथवा स्वप्नस्त्वयैतत्कथ्यते द्विज ॥ सोमशर्मोवाच ॥ प्रत्यक्षं पुत्रि ते कांतो मया दृष्टो महावने ॥ ३७ ॥

बोले–कि, कार्त्तिकके कृष्णपक्षमें रमा नाम एकादशी होती है ।। ३१ ।। हे द्विजेंद्र ! उस व्रतके करनेसे मैंने यह अध्रुवपुर पाया है हे द्विजेंद्र ! जिससे यह ध्रुव हो जाय उपाय करो वह ।। ३२ ।। द्विजेंद्र बोले–कि, यह कैसे अध्रुव और ध्रुव होता है, हे राजेंद्र ! वह आप कहिये उसे मैं वैसाही निश्चय रूप से करूँ ।। ३३ ।। शोभन बोले–ह द्विजोत्तम ! ! मैंने इस उत्तम व्रतको अश्रद्धासे किया है इसस में इसे अध्रुव मानता हूँ और जिससे ध्रुव हो वह सुनिये ।। ३४ ।। सुन्दर शोभायमान चन्द्रभागा नामकी मुचुकुंदकी पुत्री है उससे तुम यह वृत्तांत कहो तो यह ध्रुव हो जायगा ।। ३५ ।। यह सुनकर वह ब्राह्मण उस चन्द्रभागासे सब वृत्तांत कहा उसके बाद वह ब्राह्मणके वचन सुनकर आश्चर्यचकित हो गई ।। ३६ ।। हे द्विज ! यह प्रत्यक्ष कहते हो अथवा स्वप्न है ? सोमशर्मा बोले–कि हे पुत्रि ! मैंने तुम्हारे पतिको महावनमें प्रत्यक्ष

देवतुल्यमनाधृष्यं दृष्टं तस्य पुरं मया ॥ अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ॥ ३८ ॥ चन्द्रभागोवाच ॥ तत्र मां नय विप्रर्षे पतिदर्शनलालसाम् ॥ आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ॥३९॥ आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु ॥ प्राप्यते हि महत्पुण्यं कृत्वा योगं वियुक्तयोः ॥४०॥ इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम ह ॥ आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचलसन्निधौ ॥ ४१ ॥ वामदेवोऽश्रृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः ॥ अभ्यषिञ्चच्चन्द्रभागां वेदमंत्रैरथोज्ज्वलाम् ॥ ४२ ॥ ऋषिमंत्रप्रभावेण विष्णुवासरसेवनात् ॥ दिव्यदेहो बभूवासौ दिव्यां गतिमवाप ह ॥४३॥ पत्युःसमीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना ॥ सहर्षः शोभनोऽतीव दृष्ट्वा

देखा है ।। ३७ ।। देवपुरके तुल्य जो किसी से जीता न जा सके ऐसा मैंने उनका पुर देखा है, उन्होंने उसे अध्रुव कहा, जिस भांति ध्रुव हो वह कहो ।। ३८ ।। चन्द्रभागा बोली–कि, हे विप्रर्षे ! मुझे तुम वहां ले चलो, पतिके दर्शनकी बड़ी लालसा है मैं अपने व्रतके पुण्यसे उस पुरको ध्रुव कर दूंगी ।। ३९ ।। हे द्विज ! जैसे हम दोनोंका संयोग हो वह करो । यह निश्चय है कि, वियोगीका योग कराने से बड़ा पुण्य प्राप्त होता है ।। ४० ।। यह सुनते ही सोमशर्मा उसे साथ लकर वहां गया जहां मन्दराचल नामक पर्वतके समीप वामदेव ऋषिका आश्रम है ।।४१।। वामदेव उन दोनोंके कहे हुये सब वृत्तांत को सुना और बाद में वेद मंत्रों से उस सुन्दरी चन्द्रभागाका अभिषेक किया ।। ४२ ।। ऋषिके वेदमंत्रोंके प्रभावसे और हरिवासरके सेवनसे वह चन्द्रभागा दिव्यदेह धारण करके दिव्य गतिको प्राप्त हुई ।। ४३ ।। और आनंदसे प्रफुल्लितनेत्र होकर

कान्तां समागताम् ॥४४॥ समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तां संन्यवेशयत् ॥ सा चोवाच प्रियं हर्षाच्चन्द्रभागा शुभं वचः ॥४५॥ शृणु कान्त हितं वाक्यं तत्पुण्यं विद्यते मयि ॥ अष्टवर्षाधिका जाता यदाऽहं पितृवेश्मनि ॥४६॥ मया ततः प्रभृति च कृतमेकादशीव्रतम् ॥ यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥ ४७ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम् ॥ सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसम्प्लवम् ॥४८॥ एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह ॥ दिव्यभोगा दिव्यरूपा दिव्याभरणभूषिता ॥४९॥

शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्यविग्रहः ॥ रमाव्रतप्रभावेण मन्दराचलसानुनि ॥५०॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा

पतिके समीप गई और शोभन भी कांताको आई हुई देखकर बहुत ही हर्षित हुआ ।। ४४ ।। और उस चन्द्रभागा को बुलाकर बाईं ओर बैठा लिया ! वह चन्द्रभागा बड़े हर्षसे पतिसे शुभ वचन बोली ।। ४५ ।। हे कांत ! हितकी बात सुनिये, जो पुण्य मुझमें विद्यमान है वह सब जब मैं पिताके घर में आठ वर्षसे अधिक की हुई ।। ४६ ।। मैं तबसे एकादशीका व्रत श्रद्धायुक्त मनसे यथोक्त विधिसे किया है ।। ४७ ।। उसी पुण्यके प्रभावसे तुम्हारा पुर ध्रुव हो जायगा और कल्पके क्षय पर्यन्त सब कामनासे भर-पूर रहेगा ।। ४८ ।। हे नृप शार्दूल ! इस प्रकार वह पतिके साथ रमण करती रही । उसका दिव्य भोग, दिव्यही रूप, और दिव्यही आभूषण से भूषित थी ।। ४९ ।। और दिव्य विग्रह वाला वह शोभन रमाके व्रतके प्रभावसे मन्दराचलके शिखरपर उसके साथ विहार करता रहता ।। ५० ।। यह रमानाम चिंतामणि अथवा काम-

कामधेनुसमाऽथवा ।। रमाभिधाना नृपते तवाग्रे कथिता मया ॥५१॥ ईदृशं च व्रतं राजन्ये कुर्वंति नरोत्तमाः ।। ब्रह्महत्यादिपापानि नाश यान्ति न संशयः ॥५२॥ एकादशीव्रतानां च पक्षयोरुभयोरपि।। यथा शुक्ला तथा कृष्णा तिथिभेदं न कारयेत् ॥५३॥ सेवितैकादशी नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।। धेनुः कृष्णा यथा श्वेत उभयोः सदृशं पयः ॥५४॥ तथैव तुल्यफलदं स्मृतमेकादशीव्रतम्।। एकादशीव्रतानां च माहात्म्यं शृणुयान्नरः ।। ५५ ।। सर्वपापविनिर्मुक्ता विष्णुलोके महीयते ॥५६॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणे कार्तिककृष्णैकादशी रमामाहात्म्यं समाप्तम् ॥२३ ।। अथ कार्त्तिकशुक्लैकादशी कथा ॥ ब्रह्मोवाच॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं

धेनुके तुल्य है, हे नृप ! मैंने तुम्हें यह सब सुनाया ।। ५१ ।। जो उत्तम मनुष्य इस प्रकारके व्रत को करते हैं उन्हें ब्रह्महत्या आदि सब पाप स्पर्श नहीं करते इसमें संदेह नहीं ।।५२।। दोनों पक्षकी एकादशीके व्रतनमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष का तिथि भेद नहीं करना चाहिये।।५३।। व्रतशील एकादशी मनुष्यको भुक्ति मुक्ति प्रदान करती है । जैसे काली गौ तथा सफेद, दोनोंका दूध एकसा होता है ।। ५४ ।। तथैव दोनों एकादशी समान फलकी देनेवाली हैं । एकादशीके माहात्म्य को जो सुनता है ।। ५५ ।। वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें आनन्द करता है ।।५६।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां कार्त्तिककृष्णैकादशीरमाकथा समाप्ता ।। २३ ।।

अथ कार्त्तिकशुक्लैकादशीप्रबोधिनीकथा ।। ऊर्जाऽपरदले या तु बोधिन्येकादशी स्मृता ।। तन्माहात्म्यस्य भाषायां टीकां वच्मि मनोहराम्

पुण्यवर्धनम् ॥ मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां शृणुष्व मुनिसत्तम ॥१॥ तावद्गर्जति विप्रेन्द्र गङ्गा भागीरथी क्षितौ ॥ यावन्नायाति पापघ्नी कार्त्तिके हरिबोधनी ॥२॥ तावद्गर्जंति तीर्थानि ह्यासमुद्रं सरांसि च ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्त्तिकी ॥३॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ॥४॥ नारद उवाच ॥ एकभुक्तेन किं पुण्यं किं पुण्यं नक्तभोजने ॥ उपवासेन किं पुण्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकभुक्तेन जन्ममोत्थं नक्तेन द्विजनुर्भवम् ॥ सप्तजन्मभवं पापमुपवासेन नश्यति ॥ ६ ॥ यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्ये न तु गोचरम् ॥ यदप्यप्रार्थितं पुत्रददाति हरिबोधिनी ॥ ७ ॥ मेरुमन्दरमात्राणि

॥ १ ॥ ब्रह्मा बोले – कि, प्रबोधिनी नामक एकादशी का माहात्म्य सब पापोंका नाश करनेवाला और पुण्यको बढ़ाने वाला है, और बुद्धिमान् मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है, हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे सुनिये ॥ १ ॥ हे विप्रेंद्र ! पृथ्वीपर तभी तक गंगाभागीरथी गरजती हैं जब तक कार्तिकमें पापोंकी नाश करने वाली हरिबोधिनी तिथि नहीं आती है ॥ २ ॥ और तभी तक समुद्रपर्यन्त तीर्थ और सर गरजते हैं जब तक कार्तिकमें विष्णुकी प्रबोधिनी तिथि नहीं आती ॥ ३ ॥ हजार अश्वमेध और राजसूय यज्ञका फल मनुष्यको एक प्रबोधिनीके व्रतसे प्राप्त होता है ॥४ ॥ नारद बोले–कि, हे पितामह ! एक बार भोजन करनेसे और रात्रिमें भोजन करनेसे तथा उपवास करनेसे क्या फल होता है वह मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ ब्रह्मा बोले–कि, एकबार भोजन करनेसे एक जन्मका, रात्रिके भोजनसे दो जन्मका और उपवास करनेसे सात जन्मका पाप नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! दुर्लभ, अप्राप्य, त्रिलोकी में भी दृष्टिगोचर न होने वाली और अप्रार्थित वस्तुको भी हरिबोधिनी देनेवाली है ॥ ७ ॥

पापान्युग्राणि यानि तु ।। एकेनैवोपवासेन दहते पापहारिणी ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मसहस्रैस्तु यद्दुष्कर्म उपार्जितम् ॥ जागरेण प्रबोधिन्यां दहते तूलराशिवत् ॥९॥ उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः।। विधिवन्मुनिशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥१०॥ यथोक्तं सुकृतं यस्तु विधिवत्कुरुते नरः।। स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ मेरुतुल्यं भवेत्फलम् ॥११॥ विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरुमात्रकम्।। अणुमात्रं न चाप्नोति फलं धर्मस्य नारद ॥१२॥ सन्ध्याहीने व्रतभ्रष्टे नास्तिके वेदनिन्दके।। नैतेषां तिष्ठते देह धर्मशास्त्रविदूषके ॥१३॥ परदाररते मूर्खे कृतघ्ने बन्धके तथा ॥ धर्मो न तिष्ठते देहे एतेषामपि देहिनाम् ॥१४॥ ब्राह्मणो वापि शूद्रो वा सेवते परयोषितम्॥ ब्राह्मणीं च विशेषेण

सुमेरु तथा मंदराचल समान पाप को भी यह पापहारिणी भस्म कर देती है ।। ८ ।। हजारों जन्मसे इकट्ठा किया हुआ दुष्कर्म यह प्रबोधिनी रात्रिके जागरणसे रुई के ढेरके समान भस्म हो जाता है ।। ९ ।। हे मुनिशार्दूल ! जो मनुष्य स्वभावसे ही विधिपूर्वक प्रबोधिनी का व्रत करता है वह यथोक्त फलको प्राप्त करता है ।।१०।। जो मनुष्य यथोक्त सुकृत को विधिपूर्वक करता है हे मुनिश्रेष्ठ ! वह मेरुके तुल्य फल प्राप्त करता है ।। ११ ।। और जो विधिहीन किया जाता है तो वह मेरुके समान भी हो, हे नारद ! तो अणुमात्र भी धर्मका फल नहीं मिलता है ।। १२ ।। संध्याहीन, व्रत भ्रष्ट, नास्तिक, वेदके निंदक और धर्मशास्त्रका खंडन करनेवाला ।। १३ ।। पर स्त्रीसे भोग करनेवाला, मूर्ख, कृतघ्नी और वंचक इनका धर्ममय जीवन नहीं होता है ।। १४ ।। ब्राह्मण हो अथवा शूद्र, यदि पर स्त्रीगामी है, वे दोनों चांडाल के तुल्य हैं, ब्राह्मणीके लिए

चाण्डालसदृशावुभौ ॥१५॥ सभर्तृकां वा विधवां ब्राह्मणीं ब्राह्मणो यदि ॥ सेवते मुनिशार्दूल सान्वयो याति संक्षयम् ॥१६॥ परदाराभिगमनं कुरुते यो द्विजाधमः ॥ सन्ततिर्न भवेत्तस्य फलं जन्मार्जितं नहि ॥ १७ ॥ गुरुणा सह विप्रैश्च योहंकारेण वर्तते ॥ सुकृतं नश्यते शीघ्रं धनं नाप्नोति सन्ततिम् ॥१८॥ आचारभ्रष्टदेहानां वृषलीगामिना तथा ॥ दुर्जनं सेवमानानां धर्मस्तेषां पराङ्मुखः ॥ १९ ॥ पतितैः सह संगं च तद्गृहे गमनं तथा ॥ ये कुर्वन्ति नृपश्रेष्ठ ते गच्छन्ति यमालये ॥२०॥ धर्मो नष्टो नृणां येषां स्वागतासनभोजनैः ॥ तेषां वै नश्यते वत्स कीर्तिरायुः प्रजास्सुखम् ॥२१॥ साधूनामपमानं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥ त्रिवर्गफलहीनास्ते

विशेष रूपसे कहा है ॥१५॥ हे मुनिवर ! पतियुक्त हो या विधवा हो ऐसी ब्राह्मणीको जो ब्राह्मण सेवन करता है ! वह वंशसमेत नष्ट हो जाता है ॥१६॥ जो अधम ब्राह्मण पराई स्त्रीसे गमन करता है उसके संतति नहीं होती है और जन्मभरका इकट्ठा किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है ॥ १७॥ जो गुरु और ब्राह्मणके साथ अहंकार करता है उसका सुकृत शीघ्रही नष्ट हो जाता है और वह धन तथा संततिको नहीं प्राप्त होता है ॥ १८॥ जिनके देह आचारसे भ्रष्ट हैं, जो चांडालीमें गमन करते हैं और जो दुष्टोंकी सेवा करते हैं, इन सबका धर्म नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ जो पतित मनुष्यों का संग करते हैं और उनके घरमें जाते हैं वे यमलोकमें जाते हैं ॥ २० ॥ हे वत्स ! स्वागत, आसन और भोजन से जिन मनुष्योंका धर्म नष्ट हो गया है उनकी कीर्ति, आयु, संतति और सुख नष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥ जो अधम लोग साधुका अपमान

दह्यन्ते नरकाग्निना ॥२२॥ कृत्वाऽवमानं साधूनां ये हृष्यन्ति नराधमाः ॥ वारयन्ति न ये मूढास्ते पश्यन्ति कुलक्षयम् ॥२३॥ आचारभ्रष्टदेहस्य पिशुनस्य शठस्य च ॥ ददतो जुह्वतो वापि गतिस्तस्य न विद्यते ॥२४॥ तस्मान्नत्वारेत्किञ्चिदशुभं लोकगर्हितम् ॥ सदाचारवता भाव्यं यथा धर्मो न नश्यति ॥२५॥ ये ध्यायन्ति मनोवृत्त्या करिष्यामः प्रबोधिनीम् ॥ तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥२६॥ समतीतं भविष्यं च वर्तमानं कुलायुतम् ॥ विष्णुलोकं नयत्याशु प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥२७॥ वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोकेऽत्यलंकृताः ॥ विमुक्ता नारकैर्दुःखैः पूर्वकर्मसमुद्भवैः ॥२८॥ कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः ॥ कृत्वा तु जागरं विष्णोर्धौत-

करते हैं वे त्रिवर्ग, अर्थ, धर्म, कामसे रहित हो वह नरकाग्निसे जलाये जाते हैं ।। २२ ।। जो अधम साधुओंका अपमान करके प्रसन्न होते हैं और जो मूर्ख उनको मना नहीं करते हैं वे कुलक्षयको देखते हैं ।। २३ ।। जिनका देह आचारसे भ्रष्ट है और जो चुगल है, वह दान तथा होम करे तो भी उसकी गति नहीं होती है ।। २४ ।। अतः किञ्चित भी लोकमें निंदित अशुभ कर्म न करे सदाचारी हो जिससे धर्मका नाश न हो ।। २५ ।। जो अपने मनमें ऐसा सोचता है कि, हम प्रबोधिनीका व्रत करेंगे उनका सौ जन्मपूर्व का पाप नष्ट हो जाता है ।। २६ ।। प्रबोधिनी की रात्रिमें जो जागरण करता है वह पिछले अगले और वर्तमान दश हजार कुलोंको विष्णुलोकमें पहुँचा देता है ।। २७ ।। उसके पितर कर्मसे उत्पन्न हुये नरकके दुःखसे छूटकर प्रसन्न और अति अलंकृत हो विष्णुके लोकमें निवास करते हैं ।। २८ ।। जो मनुष्य ब्रह्महत्या आदि घोर पाप

पापो भवेन्मुने ॥२९॥ दुष्प्राप्यं यत्फलं रम्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः ॥ प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥३०॥ आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु दत्वा गाः काञ्चनं महीम् ॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरेः ॥३१॥ जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम् ॥ कार्त्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी ॥३२॥ यथा ध्रुवं नृणां मृत्युर्धननाशस्तथा ध्रुवम् ॥ इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं वैष्णवं दिनम् ॥३३॥ यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये सम्भवंति च ॥ तानि तस्य गृहे सम्यग्यः करोति प्रबोधिनीम् ॥३४॥ सर्वकृत्यं परित्यज्य तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ उपोष्यैकादशी रम्या कार्त्तिके हरिबोधिनी ॥३५॥ स ज्ञानी स च योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः ॥ भोगो मोक्षश्च

करके भी प्रबोधिनीकी रात्रिमें जागरण कर तो उसके सब पाप छूट जात हैं ।। २९ ।। जो फल सुन्दर अश्वमेध आदि यज्ञसे बड़ी कठिनाईसे मिलता हैं वही फल प्रबोधिनीरात्रिमें जागरण करने से सहज ही प्राप्त हो जाता है ।। ३० ।। सब तीर्थोंम स्नान करके और गौ, सुवर्ण तथा भूमिदान कर उस फलको नहीं प्राप्त करता है जो हरिका जागरण करने से प्राप्त करता हैं ।। ३१ ।। वही सुकृती है और उसी ने अपना कुल तारा है, हे मुनिशार्दूल ! जिसने कार्तिकमें प्रबोधिनी एकादशीका व्रत किया है ।।३२।। जैसे मनुष्यका नाश ध्रुव (निश्चित) है वैसे ही धनका नाश भी निश्चित है हे मुनिश्रेष्ठ ! इस बातको समझकर वैष्णव दिनका व्रत करना चाहिये ।। ३३ ।। तीनों लोकके समस्त तीर्थ प्रबोधिनी व्रत करने वाले के घर में वास करते हैं । ।।३४।। सब कर्मों को त्यागकर चक्रपाणिकी प्रसन्नताके लिए कार्तिकमें हरि बोधिनी एकादशोका

तस्यास्ति ह्युपास्ते हरिबोधिनीम् ॥३६॥ विष्णुप्रियतरा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी ॥ सकृदेनामुपोष्यैव मुक्तिभाक्
च भवेन्नरः ॥३७॥ प्रबोधिनीमुपोषित्वा न गर्भं विशते नरः ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद ॥३८॥
कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम् ॥ तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥३९॥ स्नानं दानं
जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम् ॥ नरैर्यत्क्रियते वत्स प्रबोधिन्यां तदक्षयम् ॥ ४० ॥ येऽर्चयन्ति नरास्तस्यां
भक्त्या देवं च माधवम् ॥ समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्ते शतजन्मभिः ॥ ४१ ॥ महाव्रतमिदंपुत्र महापापौघ-
नाशनम् ॥ प्रबोधवासरं विष्णोर्विधिवत्समुपोषयेत् ॥ ४२ ॥

व्रत करना चाहिये ।। ३५ ।। वही ज्ञानी है, वही योगी है, वही तपस्वी है, वही जितेंद्रिय है और उसीको भोग तथा मोक्ष है जो हरिबोधिनीका व्रत करता है ।। ३६ ।। धर्मके सारकी देनेवाली यह एकादशी विष्णुको अत्यंत प्रिय है एक बार इस व्रतको करके मनुष्य मुक्तिका भागी बनता है ।। ३७ ।। प्रबोधिनीका व्रत करके मनुष्य गर्भमें नहीं प्रवेश करता है हे नारद ! अतः सर्व धर्मोंका त्याग करके इसे करना चाहिये ।। ३८ ।। कर्म से मनसे और वचनसे जो पाप संचित किया हैं वह प्रबोधिनीके जागरण से धुल जाता है ।। ३९ ।। स्नान, दान, जप, होम जो भी जनार्दनके नाम पर प्रबोधिनीके दिन मनुष्य द्वारा किया जाता हैं वह अक्षय होता है ।। ४० ।। जो मनुष्य उस एकादशीके दिन भक्तिसे माधवदेवका पूजन करते हैं वे इस व्रतको करके सौ जन्मके पापसे छूट जाते हैं ।। ४१ ।। हे पुत्र ! यह बड़ा व्रत पापों

व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम् ॥ विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति भवनं हरेः ॥४३॥ कर्तव्यैषा प्रयत्नेन नरैः कांतिमभीप्सुभिः ॥ द्वादशी द्विपदां श्रेष्ठ कार्तिके तु प्रबोधिनीम् ॥ ४४॥ बाल्ये यच्चार्जितं वत्स यौवने वार्धके तथा॥ शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ४५ ॥ शुष्कमार्द्रं मुनिश्रेष्ठ स्वगुह्यमपि नारद॥ तत्क्षालयति गोविन्दमस्यामभ्यर्च्य भक्तितः ॥४६॥ धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा ॥ तामुपोष्य हरेर्भक्त्या दुर्लभं न भवेत्क्वचित् ॥४७॥ चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥ तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ ४८॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायोऽभ्यर्चनं हरेः ॥ तत्सर्वं कोटितुल्यं तु प्रबोधिन्यां तु

के समूहको नाश करनेवाला है यह जो विष्णुके जागनेका दिन है उसका व्रत विधिवत् करे ।। ४२ ।। इस व्रतद्वारा देवेश जनार्दनको संतुष्ट करके सब दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ हरिके धामको जाता है ।। ४३ ।। हे द्विपदोंमें श्रेष्ठ ! द्वादशीयुक्त इस कातिकमें प्रबोधिनी एकादशी कान्तिके इच्छुक पुरुषोंको यत्नसे करना चाहिये ।। ४४ ।। हे वत्स ! बालकपनमें, जवानीमें और बुढ़ापे में जो पाप सैकड़ों जन्मसे इकट्ठे किये गये हैं, थोड़े हों या बहुत ।। ४५ ।। हे मुनिश्रेष्ठ ! हे नारद ! सूखा गीला और छिपाने योग्य जो पाप है उसे एकादशीके दिन गोविन्दका भक्तिसे पूजन करके मनुष्य धो देता है ।। ४६ ।। धन-धान्यकी देनेवाली पवित्र और सब पापों को हरने वाली है भक्ति से उसे करने से संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।। ४७ ।। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें जो फल कहा है उससे हजार गुना प्रबोधिनीके जागरणका फल है ।।४८।। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय और हरिका पूजन प्रबोधिनीके दिन करनेसे मनुष्यको कोटिगुना फल प्राप्त होता है ।।४९।। जन्म

यत्कृतम् ॥४९॥जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणाभ्यर्जितं भवेत् ॥ वृथा भवंति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिकव्रतम्॥५०॥
अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः ॥ जन्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं नाप्नोति नारद ॥५१॥ तस्मा-
त्त्वया प्रयत्नेन देवदेवो जनार्दनः ॥ उपासनीयो विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदः ॥५२॥ परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्त्तिके
विष्णुतत्परः ॥ परान्नवर्जनाद्धत्स चांद्रायणफलं लभेत् ॥ ५३ ॥ न तथा तुष्यते यज्ञैर्न दानैर्वा गजादिभिः ॥
यथा शास्त्रकथालापैः कार्तिके मधुसूदनः ॥ ५४ ॥
ये कुर्वंति कथां विष्णोर्ये शृण्वन्ति समाहिताः ॥ श्लोकं वा श्लोकपादं वा कार्तिके गोशतं फलम् ॥ ५५ ॥

से मनुष्यने जो पुण्य इकट्ठा किया हो वह सब कार्तिककी एकादशीका व्रत न करनेसे वृथा हो जाता है ।। ५० ।। विष्णुका बिना नियम किये जो मनुष्य कार्तिकमास व्यतीत करता है, हे नारद ! वह सब जन्मभरके अर्जित पुण्यके फलको नहीं प्राप्त होता है ।। ५१ ।। हे विप्रेंद्र ! अतः तुम यत्नपूर्वक सब कामनाओंका फल देनेवाले देवदेव जनार्दनकी उपासना करो ।। ५२ ।। जो विष्णुभक्तिमें तत्पर मनुष्य कार्तिकमें पराये अन्नका त्याग करता है तो वह उस त्यागसे चांद्रायणव्रतके फलको प्राप्त करता है ।। ५३ ।। कार्तिकमें भगवान् मधुसूदन शास्त्रकी कथाओंके कहनेसे जितना प्रसन्न होते हैं उतना यज्ञ और हाथी घोड़े के दान से नहीं होते ।। ५४ ।। जो कार्तिकमें विष्णुकी कथाको एक श्लोक या आधा श्लोक कहत हैं और सावधानीसे सुनते हैं वे सौ गोदानके फलको प्राप्त करते हैं ।। ५५ ।। कार्तिकके महीनेमें सब धर्मोंको त्यागकर

सर्वधर्मान्परित्यज्य ममाग्रे कार्तिके नरैः॥ शास्त्रावधारणं कार्यं श्रोतव्यं च सदा मुने ॥५६॥ श्रेयसां लोभबुद्ध्या वा यः करोति हरेः कथाम् ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् ॥५७॥ नित्य शास्त्रविनोदेन कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः ॥ निर्दहेत्सर्वपापानि यज्ञायुतफलं लभेत् ॥ ५८ ॥ नियमेन नरो यस्तु शृणुते वैष्णवीं कथाम् ॥ कार्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥५९॥ प्रबोधवासरे विष्णोः कुरुते यो हरेः कथाम् ॥ सप्तद्वीपवतीदाने तत्फलं लभते मुने ॥ ६० ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति कथाविदम् ॥ स्वशक्त्या मुनिशार्दूल तेषां लोकाः सनातनाः ॥६१॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रबीत् ॥ नारद उवाच ॥ विधानं

मेरे आगे सदा मनुष्योंको शास्त्रका अवधारण और श्रवण करना चाहिये ।। ५६ ।। हे मुनिशार्दूल ! लालचवश भी जो मनुष्य कार्तिकमें कल्याणदायी हरिकथाको कहते हैं वह अपने सौ कुल तार देता है ।। ५७ ।। जो मनुष्य नित्य शास्त्रके विनोदसे कार्तिकमासको व्यतीत करता है वह अपने सब पापोंको जला देता है और दशहजार यज्ञके फलको प्राप्त करता है ।। ५८ ।। जो मनुष्य नियम से हरिकी कथाको सुनता है वह विशेष रूप से कार्तिकमें सहस्र गोदानके फलको प्राप्त करता है ।। ५९ ।। विष्णुके प्रबोध दिनमें जो हरिकी कथा कहता है हे मुने ! वह सात द्वीपोंसे युक्त भूमिके दानका फल प्राप्त करता है ।। ६० ।। जो मनुष्य दिव्य विष्णुकी कथाको सुनकर कथावाचककी शक्ति के अनुसार पूजन करते हैं, हे मुनिवर ! उनको सनातन लोक प्राप्त होता है ।। ६१ ।। ब्रह्माके वचन सुनकर नारद फिर कहने लगे, नारद बोले—

ब्रूहि मे स्वामिन्नेकादश्याः सुरोत्तम ॥ ६२ ॥ चीर्णेन येन भगवन्यादृशं फलमाप्नुयात् ॥ नारदस्यवचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ह्येकादश्यां द्विजोत्तम ॥ स्नानं चैव प्रकर्त्तव्यं दंतधावनपूर्वकम् ॥६४॥ नद्यां तड़ागे कूपे वा वाप्यां गेहे तथैव च ॥ केशवश्चैव संपूज्यः कथायाः श्रवणं तथा ॥६५॥ नियमार्थं महाभाग इमं मंत्रमुदीरयेत्॥ एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ॥६६॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ६७ ॥ भक्तिभावेन तुष्टात्मा ह्युपवासं समर्पयेत् ॥ रात्रौ जागरणं कार्यं देवदेवस्य सन्निधौ ॥ ६८ ॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च तथा

कि, हे स्वामिन् ! हे सुरोत्तम् ! मुझसे एकादशीका विधान कहिये ।। ६२ ।। हे भगवन् ! उसके करनेसे जो फल प्राप्त होता है। नारदका यह वचन सुनकर ब्रह्मा बोले ।। ६३ ।। ब्रह्मा–बोले कि हे द्विजोत्तम ! एकादशीके दिन ब्राह्म मुहूर्त अर्थात दो घड़ी रात्रि रहे उठकर दंत-धावन करके स्नान करना चाहिये ।।६४।। नदीमें या कूप में अथवा बावड़ीमें तथा घरम फिर केशवका पूजन और कथाका श्रवण करे ।। ६५ ।। और हे महाभाग ! नियमके लिए यह श्लोक पढ़, मैं एकादशीके दिन निराहार रहकर द्वादशीके दिन ।। ६६ ।। भोजन करूंगा हे पुंडरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मेरे रक्षक हो, देवदेव जो चक्री भगवान् हैं उनके आगे इस मंत्रको उच्चारण करे ।। ६७ ।। फिर भक्ति भावसे तुष्टात्मा होकर उपवास करे, फिर देवदेवके समीप रात्रिम जागरण करे ।। ६८ ।। हे मुने ! जो गीत, नृत्य, वाद्य और कृष्णकी कथा

कृष्णकथां मुने ॥ यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः ॥६९॥ बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः ॥ हरेः पूजा विधातव्या कार्तिक्यां बोधवासरे ॥ ७० ॥ वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे ॥ यस्मात्पुण्यमसंख्यातं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥७१॥ फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ शङ्खे तोयं समादाय ह्यर्घो देयो जनार्दने ॥७२॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् तत्फलं कोटिगुणितं दत्त्वार्घं बोधवासरे ॥७३॥ अगस्त्यकुसुमैर्दिव्यैः पूजयेद्यो जनार्दनम् ॥ देवेन्द्रोपि मुनिश्रेष्ठ करोति करसंपुटम् ॥ ७४ ॥ न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः ॥ यत्करोति हृषीकेशो मुनिपुष्पैरलंकृतः ॥७५॥ बिल्वपत्रैश्च ये कृष्णं कार्तिके

करता है वह पुण्यात्मा त्रिलोकीके ऊपर स्थित है ।। ६९ ।। बहुतसे फूलों और फलों से और कपूर अगर कुम्कुम द्वारा कार्तिकमें बोधनीके दिन हरिकी पूजा करनी चाहिये ।।७० ।। हरिवासरके प्राप्त होने पर धनका लोभ न करे हे मुनिसत्तम ! जिससे असंख्य पुण्य प्राप्त होते हैं ।।। ७१ ।। प्रबोधिनीमें जागरणके समय नानाप्रकारके दिव्य फलोंसे पूजन करे और शंखमें जल लेकर जनार्दनको अर्घ देना चाहिये ।। ७२ ।। जो फल सब तीर्थोंमें और जो फल सब दानोंमें हैं उससे करोड़ गुणाफल बोधक दिनमें प्राप्त होता है ।। ७३ ।। जो दिव्य अगस्त्यके फूलों से जनार्दनका पूजन करता है उसके आगे हे मुनिश्रेष्ठ ! देवेंद्र भी हाथ जोड़ते हैं ।।७४।। हे विप्रेंद्र ! तप द्वारा सँन्तुष्ट किये गये हरि वह नहीं करते हैं जो अगस्त्यके पुष्पों से शोभित हृषीकेश भगवान् करते हैं ।। ७५ ।। हे कलिवर्द्धन ! जो कार्त्तिकमें बड़ी भक्ति से बिल्वपत्रों द्वारा

कालवर्धन ॥ पूजयन्ति महाभक्त्या मुक्तिस्तेषां मयोदिता ॥७६॥ तुलसीदलपुष्पैश्च पूजयंति जनार्दनम् ॥ कार्तिके सकलं वत्स पापं जन्मायुतं दहेत् ॥७७॥ दृष्टा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता ॥ रोपिता सेचिना नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥७८॥
नवधा तुलसीभक्ति ये कुर्वंति दिनेदिने ॥ युगकोटि सहस्राणि ते वसंति हरेर्गृहे ॥७९॥ रोपिता तुलसी याव-त्कुरुते मूलविस्तरम् ॥ यावद्युगसहस्राणि तनोति सुकृतं मुने ॥८०॥ यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैर्मुने ॥ रोपिता तुलसी पुंभिर्वर्धंते वसुधातले॥८१॥ कुले तेषां तु ये जाता ये भविष्यंति ये गताः॥ आकल्पयुगसाहस्रं

कृष्णका पूजन करते हैं उनको मेरी कही हुई मुक्ति मिलती है ।। ७६ ।। जो कार्तिकमें तुलसीदलसे और पुष्पों से जनार्दन का पूजन करते हैं, हे वत्स ! वे दशहजार जन्मके सब पाप जला देते हैं ।। ७७ ।। देखी गई, स्पर्श की हुई, ध्यान की गई, यशोगान की गई नमस्कार की गई, स्तुती की गई लगाई गई, सींची गई और पूजन की गई तुलसी शुभ करने वाली है ।। ७८ ।। जे नव प्रकारसे तुलसीकी भक्ति प्रति दिन करते हैं वे करोड़ों युग तक हरिके मन्दिरमें वास करते हैं ।। ७९ ।। हे मुने ! लगाई हुई तुलसी जितनी जड़का विस्तार करती है । उतने हजार युगों तक सुकृतको विस्तारित करती है ।। ।।८०।। हे मुने ! पुरुषों द्वारा लगाई हुई तुलसीकी जब तक शाखा, प्रशाखा बीज, पुष्प और दल पृथ्वी पर बढ़ते रहते हैं ।। ८१ ।। उन लगाने वाले मनुष्योंके कुलमें जो उत्पन्न हैं, होयँगे और जो होगये हैं उनका दो हजार कल्पतक

तेषां वासो हरेर्गृहे॥८२॥ कदम्बकुसुमैर्देवं येऽर्चयन्ति जनार्दनम्॥ तेषां यमालयो नैव प्रसादाच्चक्रपाणिनः॥८३॥ दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं प्रीतो भवति केशवः॥ किं पुनः पूजितोविप्र सर्वकामप्रदो हरिः॥८४॥ यः पुनः पाटलापुष्पैर्वसन्ते गरुडध्वजम्॥ अर्चयेत्परया भक्त्या मुक्तिभागी भवेद्धि सः॥८५॥ बकुलाशोककुसुमैर्येऽर्चयन्ति जगत्पतिम्॥ विशोकास्ते भविष्यंति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥८६॥ येऽर्चयंति चगन्नाथं करवीरैः सितासितैः॥ चतुर्युगानि विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः॥८७॥ मञ्जरीं सहकारस्य केशवोपरि ये नराः॥ यच्छंति ते महाभागा गोकोटिफलभागिनः॥८८॥ दूर्वांकुरर्हरेर्यस्तु पूजाकाले प्रयच्छति॥ पूजाफलं शतगुणं सम्यगाप्नोति

हरिके घरमें वास रहता है।।८२।। जो-लोग कदंबके फूलोंसे जनार्दनका पूजन करते हैं उन्हें उन चक्रपाणिके प्रसादसे यमका घर नहीं मिलता है ।। ८३ ।। कदंबके फूलों को देखकर केशव भगवान् प्रसन्न होते हैं, हे विप्र ! पूजा करनेसे सब कामनाओं को देनेवाले हरि प्रसन्न हों तो फिर क्या कहना है ।। ८४ ।। जो फिर वसंतऋतुमें पाटलाके फूलोंसे परम भक्तिसे गरुडध्वजका पूजन करता है वह निश्चय मुक्तिको प्राप्त करता है ।। ८५ ।। बकुल और अशोक के फूलों से जो जगत्पतिका पूजन करते हैं, वे जबतक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तब तक शोकरहित रहते हैं ।।८६।। हे विप्रेन्द्र ! जो श्वेत अथवा लाल कनेरके फूलोंसे जगन्नाथका पूजन करते हैं उनपर चार युग तक भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं ।।८७।। जो मनुष्य केशवके ऊपर आमकी मंजरी चढ़ाते हैं वे महाभाग पुरुष कोटि गोदानके फलोंको प्राप्त करते हैं ।। ८८ ।। पूजा के समय जो दूर्वादल पूजन

मानवः ॥८९॥ शमीपत्रैस्तु ये देव पूजयन्ति सुखप्रदम् ॥ यममार्गं महाघोरो निस्तीर्णस्तैस्तु नारद ॥ ९० ॥ वर्षाकाले तु देवेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः येऽर्चयन्ति न ते मर्त्याः संसरेयुः पुनर्भवे ॥९१॥ कुम्भीपुष्पं तु विप्रर्षे ये यच्छन्ति जनार्दनम् ॥ सुवर्णपलमात्रं ते लभन्ते वै फलं मुने ॥९२॥ सुवर्णकेतकीपुष्पं यो ददाति जनार्दने ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं दहते गरुडध्वजः ॥ ९३ ॥ कुंकुमारुणवर्णां च गन्धाढ्यां शतपत्रिकाम् ॥ यो ददाति जगन्नाथे श्वेतद्वीपालये वसेत् ॥ ९४ ॥ एवं सम्पूज्य रात्रौ च केशवं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ प्रातरुत्थाय च ब्रह्मन् गत्वा तु सजलां नदीम् ॥९५॥ तत्र स्नात्वा जपित्वा च कृत्वा पूर्वाह्णिकीः क्रियाः ॥

में उपभोग करे, उससे पूजा का फल सौगुना हो जाता है ।। ८९ ।। हे नारद ! जो सुख देनेवाले भगवान् की शमीपत्रसे पूजा करते हैं वे महाघोर यमके मार्गसे निस्तीर्ण हो जाते हैं ।। ९० । जो मनुष्य वर्षाऋतुमें देवेश भगवान्को चम्पाके फूलसे पूजते हैं वे संसारमें फिर नहीं आते हैं ।। ९१ ।। हे विप्रर्षे ! कुंभी अर्थात् पाटला के फूल जो जनार्दन को अर्पित करे हे मुने ! वह पलमात्र सुवर्णके चढानेके फलको पाता है ।। ९२ ।। जो पीली केतकीके फूल जनार्दन पर चढ़ाते हैं उनके कोटि जन्मके अर्जित पापको गरुडध्वज जला देते हैं ।। ९३ ।। कुंकुमके समान है अरुण वर्णवाली गंधयुक्त शतपत्रिका जो जगन्नाथको अर्पण करता हैं वह श्वेतद्वीपमें वास करता है ।। ९४ ।। इस प्रकार भुक्ति मुक्तिके देनेवाले केशव भगवान्का रात्रिमें पूजन करके हे ब्रह्मन् ! प्रातः काल उठकर सजल नदीमें जाकर ।। ९५ ।। स्नान, जप और प्रातःकाल की क्रिया करके घरमें जाकर विधिवत् केशव भगवान्का पूजन करे ।। ९६ ।। और व्रतके पूर्ण होने लिए बुद्धिमान् ब्राह्मणको भोजन कराये फिर भक्ति

गृहे गत्वा च सम्पूज्यः केशवो विधिवन्नरैः ॥९६॥ व्रतस्य पूरणार्थाय ब्राह्मणान् भोजयेत्सुधीः ॥ क्षमापयेच्च शिरसा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ९७ ॥ गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः ॥ दक्षिणा तैश्च दातव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥९८॥ भूयसी चैव दातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ॥ नियमश्चैव सन्त्याज्यो ब्राह्मणाग्रे प्रयत्नतः ॥९९॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ नक्तभोजी नरो राजन्ब्राह्मणान्॥ भोजयेच्छुभान् ॥१००॥ अयाचिते बलीवर्दं सहिरण्यं प्रदापयेत् ॥ आमांसाशी नरो यस्तु प्रददेद्गां सदक्षिणाम् ॥१॥ धात्रो स्नायी नरो दद्याद्दधिमाक्षिकमेव च॥फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥२॥ तैलस्थाने घृतंदेयं घृतस्थाने पयः स्मृतम् ॥ धान्यानां नियमे राजन् दीयन्ते शालितण्डुलाः ॥३॥

के साथ शिर झुकाकर क्षमा-याचना करे । ॥ ९७ ॥ तदनन्तर भोजन वस्त्र आदिसे गुरुकी पूजा करे और भगवान् चक्रपाणिकी प्रसन्नताके लिए दक्षिणा देना चाहिये ॥ ९८ ॥ ब्राह्मणों को यत्नसे बहुतसी दक्षिणा देना चाहिये और ब्राह्मणों के सन्मुख पूर्व नियमों को यत्नसे त्याग करे ॥ ९९ ॥ ब्राह्मणों को कहकर शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे । हे राजन् ! नक्तभोजी मनुष्य शुभ ब्राह्मणको भोजन कराये ॥ १०० ॥ अयाचित व्रतमें सुवर्णसहित बलवान् बैलका दान करे और जो मनुष्य चार महीने मांस नहीं खाता है वह दक्षिणासमेत दान करे ॥ १ ॥ और आमलेसे स्नान करनेवाला मनुष्य दही और शहद का दान करे । हे राजन् ! फलोंके नियम में फलों का ही दान करे ॥२॥ हे राजन् ! तैलके स्थानमें घीका दान करे और घीके स्थानमें दूध का दान कहा है । धान्यके नियममें चावल का दान करे ॥ ३ ॥ और भूमिमें शयन करनेवाले

दद्याद्भूशयने शय्यां सतूलां सपरिच्छदाम् ॥ पत्रभोजी नरो राजन् भोजनं घृतसंयुतम् ॥ ४ ॥ मौने घण्टां तिलाश्चैव सहिरण्यं प्रदापयेत् ॥ दंपत्योर्भोजनं देयं निःस्नेहं सर्पिषा युतम् ॥ ५ ॥ धारणेन स्वकेशानामादर्शं दापयेद्बुधः ॥ उपानहौ प्रदातव्ये उपानत्परिवर्जनात् ॥ ६ ॥ लवणस्य च संत्यागे शर्करां च प्रदापयेत् ॥ नित्यं दीपः प्रदेयस्तु विष्णोर्वा विबुधालये ॥७॥ सदीपं सघृतं ताम्रं कांचनं वा दशायुतम् ॥ प्रदद्याद्विष्णुभक्ताय ॥ संपूर्णव्रतहेतवे ॥८॥ एकांतरोपवासे तु कुम्भानष्टौ प्रदापयेत ॥ सवस्त्रान् कांचनोपेतान्सर्वान् सालंकृताञ्छुभान्॥९॥ सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना॥ द्विजवाक्यं स्मृतं राजन्संपूर्णव्रतसिद्धिदम् ॥१०॥

को सतूल शय्या दान करना चाहिये ! पत्तोंमें भोजन करने वाले मनुष्यको घीसमेत पात्रका दान करना चाहिये ।। ४ ।। मौनव्रतमें तिल और सुवर्णयुक्त घंटाका दान कर और घीके नियममें स्त्री-पुरुषको घृतयुक्त भोजन कराये ।। ५ ।। केश रखनेवाली व्रती दर्पणका दान करे और जूता छोड़ने वाला जूतोंका जोड़ा दान करे ।। ६ ।। और नमक छोड़नेमें शर्कराका दान करे और नित्य विष्णुके मन्दिरमें या देवालयमें दीपक प्रज्वलित करना चाहिये ।। ७ ।। और बाती से युक्त तांबेका वा सोनेका दीपक व्रतकी पूर्णताके लिये विष्णुभक्तको दान करे ।। ८ ।। एकांत व्रतमें आठ कुंभका दान करे, उन सब कुम्भोंको वस्त्र तथा सुवर्ण से अलंकृत करे ।। ९ ।। हे राजन् ! यदि सब प्रकार के दानकी शक्ति न हो तो ब्राह्मण के मुख से ही "तुम्हारा व्रत पूर्ण हो गया" यह आशीर्वाद प्राप्त करे क्योंकि ऐसे समय में ब्राह्मणके वचन ही सिद्धि देनेवाले होते हैं ।। १० ।। नमस्कार करके ब्राह्मणका विसर्जन करे । उसके बाद स्वयं भोजन करे, जो चार महीने छोड़ा है उसकी समाप्ति करे

नत्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् ॥ यत्त्यक्तं चतुरो मासान्समाप्तिं तस्य चाचरेत ॥११॥ एवं य आचरेत्प्राज्ञः सोऽनन्तफलमाप्नुयात् ॥ अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरं व्रजेत्॥१२॥ यश्चाविघ्नं समाप्यैवं चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥ स भवेत् कृतकृत्यस्तु न पुनर्मानुषो भवेत् ॥१३॥ एतत्कृत्वा महीपाल परिपूर्णं व्रतं भवेत् ॥ व्रतवैकल्यमासाद्य ह्यंधः कुष्ठीप्रजायते ॥१४॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि लभेद्गोदानजं फलम् ॥११५॥ इति श्रीस्कंदपुराणे कार्तिकशुक्लैकादशीप्रबोधिनीमाहात्म्यं समाप्तम ॥ २४ ॥

॥ ११ ॥ हे राजेंद्र ! जो प्राज्ञ मनुष्य इस प्रकार करता है वह अनंत फलको प्राप्त होता है। अन्तमें विष्णुपुर को जाता है ॥ १२ ॥ हे नृप ! जो इस प्रकार चातुर्मास्य व्रतको निर्विघ्न समाप्त करता है वह कृतार्थ हो जाता है, और फिर मनुष्यका जन्म नहीं पाता है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! यह सब करनेसे व्रत पूर्ण होता है और यदि व्रत गलत हो जाय तो व्रती अन्धा अथवा कोढी हो जाता है ॥ १४ ॥ जो कुछ भी तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने तुम्हें सुनाया, इसके पढ़ने और सुनने से गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ ११५ ॥ इतिश्रीमत्पण्डितपरमसुखतनय-पण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायांदीपिकासमाख्यायां कार्तिकशुक्लैकादशीप्रबोधनीकथा समाप्ता ॥ २४ ॥

अथाधिकमासशुक्लैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य का वा एकादशी भवेत् ॥ किं नाम को विधिस्तस्याः कथस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मम मासस्य या पुण्या प्रोक्ता नाम्ना च पद्मिनी ॥ सोपोषिता प्रयत्नेन पद्मनाभपुरं नयेत ॥२॥ मम मासे महापुण्या कीर्तिका कल्मषापहा ॥ तस्याः फलं कथयितुं न शक्तश्चतुराननः ॥ ३ ॥ नारदाय पुरा प्रोक्तं विधिना व्रतमुत्तमम् ॥ पद्मिन्याः पापराशिघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४॥ श्रुत्वा वाक्यं मुरारेस्तु प्रोवाचातिमुदान्वितः ॥ युधिष्ठिरो जगन्नाथं विधिं पप्रच्छ धर्मवित् ॥५॥ श्रुत्वा राज्ञस्तु वचनं प्रीत्युफुल्लांबुजेक्षणः ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि मुनीनामप्यगोचरम् ॥६॥

अथ पुरुषोतममासशुक्लैकादशीपद्मिनीकथा ।। पुरुषोत्तममासे या शुक्ला चैकादशी स्मृता ।। पद्मिनी नाम तस्यास्तु माहात्म्यं विवृणोम्यहम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि, मलमासके शुक्लपक्षमें कौनसी एकादशी होती है और उसका क्या नाम, तथा क्या विधि है हे जनार्दन ! वह मुझे सुनायें ।। २ ।। श्रीकृष्ण बोले–कि, मेरे मासकी जो पवित्र एकादशी होती है उसका पद्मिनी नाम है जिसका व्रत भगवान् का धाम देनेवाला है मेरे मासकी अतिपवित्र और पापोंका नाश करनेवाली कही गई है उसके फलको कहने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं ।। ३ ।। प्रथम ब्रह्मा द्वारा नारदको पापसमूहका नाश करने वाली और भुक्ति-मुक्तिरूप फलको देनेवाली यह उत्तम पद्मिनीका व्रत सुनाया गया ।। ४ ।। भगवान् के वचन सुनकर सानन्द धर्मातमा राजा युधिष्ठिर महाराज श्रीकृष्ण से उसकी विधि पूछने लगे ।। ५ ।। राजाका वचन सुनकर प्रीतिसे विकसित नेत्र युक्त भगवान् श्रीकृष्णजी बोले–कि, हे राजन् ! सुनो जो मुनीश्वरों को भी दुर्लभ है वह व्रत मैं तुमसे कहता

दशमीदिवसे प्राप्ते व्रतारम्भो विधीयते ॥ कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥७॥ शाकं मधु परान्नं च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥ हविष्यान्नं च भुञ्जीत अक्षारलवणं तथा ॥८॥ भूमिशायी ब्रह्मचारी भवेच्च दशमीदिने ॥९॥ एकादशीदिने प्राप्ते प्रातरुत्थाय सादरम् ॥ विधाय च मलोत्सर्गं न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥१०॥ कृत्वा द्वादश गण्डूषाञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ सूर्योदये शुभे तीर्थे स्नानार्थं प्रव्रजेत्सुधीः ॥ ११ ॥ गोमयं मृत्तिकां गृह्य तिलान् दर्भाञ्छुचिस्तथा॥ चूर्णैरामलकीभूतैर्विधिना स्नानमाचरेत् ॥ १२ ॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमंत्रिता ॥१३॥ त्वं मे कुरु पवित्राङ्गं

हूँ ॥६॥ दशमीको व्रत आरंभ किया जाता है । कांसेके पात्रमें भोजन, मांस, मसूर, चने कोदों ॥७॥ साग, शहद और पराया अन्न इन दश वस्तुओंका दशमीके दिन त्याग करे । हविष्य अन्न अर्थात् चावल आदिका भोजन करे और खारा तथा नमकीन भोजन न करे ॥ ८ ॥ दशमीके दिन पृथ्वी पर शयन करे, ब्रह्मचर्यसे रहे ॥९॥ एकादशीके दिन प्रातःकाल सानन्द उठकर मलका त्याग कर दंतधावन न करे॥१०॥ सुधी पुरुष बारह कुल्ले करके शुद्ध तथा सावधानीसे सूर्य उदय होनेके समय शुभ तीर्थमें स्नानके लिये जाय ॥ ११ ॥ गोबर, मिट्टी, तिल और दर्भको लेकर शुद्ध हो आमलेके चूर्णको लगाकर विधिपूर्वक स्नान करे ॥ १२ ॥ हे मृत्तिके ! सौ बाहुवाले जो वराहरूप कृष्ण हैं उनके द्वारा तू उठाई गई है, और परशुराम द्वारा ब्राह्मणोंको दी गई है और कश्यप द्वारा अभिमंत्रिता ॥ १३ ॥ तथा नेत्रों एवं बालोंमें लगी हुई तू

लग्ना नेत्रे शिरो रुहे ॥ हरिपूजनयोग्यं मां मृत्तिके कुरु ते नमः ॥१४॥ सर्वौषधिसमुत्पन्नं गवोदरमधिष्ठितम् ॥ पवित्रकरणं भूमेर्मांपावयतु गोमयम् ॥१५॥ ब्रह्मष्ठीवनसंभूता धात्री भुवनपावनी ॥ संस्पृष्टा पावयांगं मे निर्मलं कुरुते नमः ॥१६॥ देवदेव जगन्नाथ शंखचक्र गदा धरः ॥ देहि विष्णो ममानुज्ञां तव तीर्थावगाहने ॥१७॥ वारुणांश्च जपेन्मंत्रान्स्नानं कुर्याद्विधानतः ॥ गंगादितीर्थं संस्मृत्य यत्र कुत्र जलाशये ॥१८॥ पश्चात्संमार्जयेद्गात्रं विधिना नृपसत्तम् ॥ मुखे पृष्ठे च हृदये बाह्वोः शिरसि चाप्यधः ॥१९॥ परिधाय सुखं वासःशुक्लं शुचि ह्यखंडितम् ॥ ततः कुर्याद्धरेः पूजां महापापं विनश्यति ॥२०॥ संध्यामुपास्य विधिना तर्पतेञ्च पितृन्सुरान् ॥

मेरे अंगोंको पवित्र कर और मुझे हरिपूजनके योग्य बना, तुझे नमस्कार है ।। १४ ।। सब औषधियों से उत्पन्न और गौके पेटमें स्थित भूमिको पवित्र करनेवाला गोबर मुझे पवित्र करे ।। १५ ।। ब्रह्माके थूकसे उत्पन्न भुवनको पवित्र करनेवाली हे धात्री ! मेरे अंगोंको पवित्र तथा निर्मल कर, तुझे नमस्कार है ।। १६ ।। हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे शंखचक्रगदाधर ! हे विष्णो ! अपने तीर्थोंमें स्नान करनेकी आज्ञा दीजिये ।। १७ ।। वरुणके मंत्र का जप करे गंगा आदि तीर्थोंको स्मरण करके जिस किसी जलाशयमें हो सके, विधि से स्नान करे ।। १८ ।। हे नृपश्रेष्ठ ! बादमें मुख पीठ, हृदय, बाहु, शिर और नीचे विधिवत् समार्जन करे ।। १९ ।। फिर सुखकारी सफेद शुद्ध और अखंडित वस्त्र पहनकर हरिका पूजन करे । तो महापाप नष्ट हो जाते हैं ।। २० ।। विधिपूर्वक सन्ध्योपासन कर पितृ और देवताओं का तर्पण करे, फिर हरिके मंदिरमें जाकर कमलापति भगवान्का पूजन करे ।। २१ ।। सुवर्णके बने राधिकासहित कृष्ण का और पार्वतीसहित शिवका विधिपूर्वक पूजन करे

हरेर्मंदिरमागत्य पूजयेत्कमलापतिम् ॥२१॥ स्वर्णमात्रं कृतं देवं राधिकासहितं हरिम् ॥ पार्वत्या सहितं देवं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥२२॥ कुम्भोपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रेऽथ मृन्मये॥ दिव्यवस्त्रसमायुक्ते दिव्य गन्धानुवासिते२३ तस्योपरि न्येसेत्पात्र ताम्र रौप्य हिरण्मयम् ॥ तस्मिन्संस्थापयेद्देवं विधिना पूजयेत्ततः ॥ २४ ॥ संस्थाप्य सलिलैः श्रेष्ठैर्गंधधूपादिवासितैः ॥ चंदनागुरुकर्पूरैःपूजयेद्देवमीश्वरम् ॥ २५ ॥

नानाकुसुमकस्तूरीकुंकुमेन सितांबुजैः ॥ तत्कालजातैः कुसमैःपूजयेत्परमेश्वरम् ॥ २६॥ नैवेद्यैर्विविधैः शक्त्या तथा नीराजनादिभिः ॥ धूपैः दीपैः सकर्पूरैः पूजयेत्केशव शिवम् ॥२७॥ नृत्यं गीतं तदग्रे तु कुर्याद्भक्तिपुरःसरम् ॥ नालपेत्पतितान्पापांस्तास्मिन्नहनि न स्पृशेत् ॥ २८ ॥ नानृतं हि वदेद्वाक्यं सत्यपूतं वचो वदेत् ॥

॥ २२ ॥ घटके ऊपर तांबेके या मिट्टीके पात्रमें दिव्य वस्त्रोंसे युक्त और दिव्य गंधोंसे सुगंधित करके देवकी स्थापना करे ॥ २३ ॥ उस घटके ऊपर तांबेके रूपेके अथवा सोनेके पात्रको धरे उसमें देवकी स्थापना करके विधिपूर्वक पूजन करे ॥ २४ ॥ २५ ॥ नाना प्रकारके फूल कस्तूरी, केसर और श्वेत कमल और उस समयमें उत्पन्न होने वाले फूलोंसे परमेश्वरका पूजन करे ॥ २६ ॥ और यथाशक्ति नाना प्रकारके नैवेद्य तथा नीराजन आदि करे और कर्पूरसहित धूप दीपद्वारा केशव और शिवका पूजन करे ॥ २७ ॥ और भक्तिपूर्वक उनके आगे नृत्य तथा भजन करे, पतित और पापी लोगों से बात न करे और न उनका स्पर्श करे ॥ २८ ॥ झूठ न बोले सत्य और पवित्र वचन बोले, रजस्वला

रजस्वलां न स्पृशेच्च न निन्देद्ब्राह्मणं गुरुम् ॥२९॥ पुराणं पुरतो विष्णोः शृणुयात्सह वैष्णवैः ॥ निर्जला सा प्रकर्तव्या या च शुक्ले मलिम्लुचे ॥३०॥ जलपानेन वा कुर्याद्दुग्धाहारेण नायन्था ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीत-वादित्र संयुतम् ॥३१॥ प्रथमे प्रहरे पूजा नारिकेलार्घमुत्तमम् ॥ द्वितीये श्रीफलैश्चैव तृतीये बीजपूरकैः ॥३२॥ चतुर्थे पूजयेत्पूगैर्नारंगैश्च विशेषतः ॥ प्रथमे प्रहरे पुण्यमग्निष्टोमस्य जायते ॥३३॥ द्वितीये वाजपेयस्य तृतीये हयमेधजम् ॥ चतुर्थे राजसूयस्य जाग्रतो जायते फलं ॥३४॥ नातःपरतरं पुण्यं नातः परतरा मखाः ॥ नातः परतरा विद्या नातःपरतरं तपः ॥३५॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राण्यायतनानि च ॥ तानि स्नातानि दृष्टानि

स्त्रीको न स्पर्श करे ब्राह्मण तथा गुरुकी निंदा न करे ॥ २९ ॥ और विष्णुके आगे वैष्णवोंके साथ पुराण सुने और जो मलमासके शुक्लपक्ष में एकादशी होती है उसका निर्जल व्रत करना चाहिये॥३०॥जलपान अथवा दूधको आहार करके व्रत करे अन्यथा नहीं करे और गाने बजाने के साथ रात्रिमें जागरण करे ॥ ३१ ॥ पहले पहरमें नारियलके फलके अर्घसे पूजन करना उत्तम है और दूसरेमें श्रीफल जो बेलके फल हैं उनसे और तीसरेमें बिजौरेके फलों द्वारा ॥ ३२ ॥ और चौथे पहरमें पूग जो सुपारी हैं उनसे और विशेष करके नारंगी से पूजन करे। प्रथम पहरमें अग्निष्टोम य का फल प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ दूसरेमें वाजपेयका, तीसरेमें अश्वमेधका और चौथे प्रहरके जागरणमें राजसूय यज्ञका फल मिलता है ॥ ३४ ॥ इससे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और न इससे बढ़कर कोई यज्ञ है और न इससे परे कोई विद्या है न कोई तप है ॥३५॥ पृथ्वीमें जितने तीर्थ हैं क्षेत्र हैं और स्थान हैं वे सब उस मनुष्य द्वारा देखे जा चुके जिसने हरिका व्रत कर लिया ॥३६॥ इस प्रकार

येनाकारि हरेर्व्रतम् ॥३६॥ एवं जागरणं कुर्याद्यावत्सूर्योदयं भवेत् ॥ सूर्योदये शुभेतीर्थे गत्वा स्नानं समाचरेत् ॥३७॥ स्नात्वैवागत्य भावेन पूजयेद्देवमीश्वरम् ॥ पूर्वोदितेन विधिना भोजयेद्ब्राह्मणाञ्छुभान् ॥ ३८ ॥ कुम्भादिकं च यत्सर्वं प्रतिमां केशवस्य च ॥ पूजयित्वा विधानेन ब्राह्मणाय समर्पयेत ॥३९॥ एवंविधं व्रतं योवै कुरुते भुवि मानवः ॥ सफलं जायते तस्य व्रतं भुक्तिफलप्रदम् ॥ ४० ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लाया विधिमुत्तमम ॥४१॥ व्रतानि तेन चीर्णानि सर्वाणि नृपनन्दन॥ पद्मिन्याःप्रीतियुक्तो यः कुरुते व्रतमुत्तमम् ॥४२॥ कृष्णाया मलमासस्य विधिस्तस्यापि तादृशः ॥ परमा स तु विज्ञया सर्वपापक्षयकरी ॥४३॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेकां मनोरमाम् ॥ नारदाय पुलस्त्येन विस्तारेण

सूर्योदयपर्यन्त ज़ागरण करे और सूर्योदय होने पर शुभ तीर्थमें जाकर स्नान करे ।। ३७ ।। स्नान के पश्चात् भक्तिसे ईश्वरका पूजन पहले कही हुई विधिसे करे, सुन्दर ब्राह्मणोंको भोजन कराये ।। ३८ ।। कुंभ आदि समस्त वस्तुओं से और केशवकी प्रतिमा की विधिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको दान करे ।। ३९ ।। जो मनुष्य पृथ्वीपर इस व्रतको करता है उसका भुक्ति और मुक्ति देनेवाला यह व्रत सफल होता है। ।। ४० ।। हे अनघ ! जो तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने मलमासके शुक्लपक्षकी एकादशीकी विधि तुम्हें सुनायी ।। ४१ ।। हे नृपनन्दन ! प्रीतियुक्त जो मनुष्य पद्मिनी एकादशीका व्रत करता है उसने मानो सम्पूर्ण व्रत कर लिये ।। ४२ ।। मलमासके कृष्णपक्षकी भी एकादशी की यही विधि है वह सब पापोंको नष्ट करने वाली है, नाम परमा है ।। ४३ ।। मैं तुमसे एक मनोहर कथा कहूँगा । जिसे पुलस्त्य मुनिन नारद

निवेदिताम् ॥४४॥ कार्तवीर्येण कारायां निक्षिप्तं वीक्ष्य रावणम् ॥ विमोचितः पुलस्त्येन याचयित्वा महीपतिम् ॥४५॥ तदाश्चर्यं तदा श्रुत्वा नारदो दिव्यदर्शनः॥ प्रपच्छ च यथा भक्त्या पुलस्त्ये मुनिपुंगवम्॥४६॥ दशाननेन विजिताः सर्वे देवाः सवासवाः ॥ कार्तवीर्येण विजितः कथं रणविशारदः ॥ ४७ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा पुलस्त्यो मुनिमब्रवीत् ॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्यसमुद्भवम् ॥४८॥ पुरा त्रेतायुगे राजन्माहिष्मत्यां बृहत्तरः ॥ हैहयानां कुले जातः कृतवीर्यो महीपतिः ॥ ४९ ॥ सहस्रं प्रमदास्तस्य नृपस्य प्राणवल्लभाः न तासां तनयं कश्चिल्लेभे राजधुरंधरः ॥ ५० ॥

यजन्देवान्पितॄन् सिद्धान्प्रचिकित्सान् बृहत्तरान्॥ तेषां वाक्याद्व्रतं कुर्वन्न लब्धस्तनयस्तदा॥५१॥ सुतं विना

को विस्तारसे सुनाया था ।। ४४ ।। कार्तवीर्य द्वारा कारागृहमें डारे गये रावणको देख पुलस्त्य मुनिने उस राजासे याचना करके उसे छुड़ाया ।। ४५ ।। उस समय यह आश्चर्य सुनकर दिव्य है दर्शन जिनका ऐसे नारदमुनि भक्तिपूर्वक पुलस्त्य से पूछने लगे ।। ४६ ।। इन्द्र समेत सब देवता दशानन द्वारा जीते गये तो रण में वह रावण कीर्तवीर्य द्वारा कैसे जीता गया वह कहिये ।।४७।। नारद मुनिक वचन सुनकर पुलस्त्य मुनि बोले हे वत्स ! सुनो, मैं कार्तवीर्यकी उत्पत्ति सुनाता हूं ।। ४८ ।। पहले त्रेतायुगमें माहिष्मती नाम पुरीमें हैहय वंश में उत्पन्न कृतवीर्य राजा हुआ ।। ४९ ।। उस राजाके प्राणसमान प्रिय एक हजार स्त्रियाँ थीं पर उनमें से एक के भी सन्तान न थी जो उत्तराधिकारी बन सके ।।५०।। देवता, पतृ, सिद्ध, और बहुत बड़े चिकित्सों का पूजन करता और उनके वचनानुसार व्रत और उपचार करने पर भी संतान न

तदा राज्यं न सुखाय महीपतेः ॥ क्षुधितस्य यथा भोगा न भवन्ति सुखप्रदा ॥५२॥ विचार्य चित्ते नृपतिस्तपस्तप्तुं मनो दधे ॥ तपसैव सदा सिद्धिर्जायते मनसेप्सिता ॥५३॥ इत्युक्त्वा सहभार्यश्च चीरवासा जटाधरः ॥ तपस्तप्तुं गृहं न्यस्य सुविचार्य सुमंत्रिणे ॥५४॥ निर्गतं नृपतिं वीक्ष्य पद्मिनी प्रमदोत्तमा ॥ हरिश्चंद्रस्य तनया इक्ष्वाकुकुलसम्भवा ॥५५॥ पतिव्रता प्रियं दृष्ट्वा तपस्तप्तुं कृतोद्यमम् ॥ भूषणानि परित्यज्य चीरमेकं समाश्रयेत् ॥ ५६ ॥ जगाम पतिना सार्द्धं पर्वते गन्धमादने ॥ गत्वा तत्र तपस्तेपे वर्षाणामयुतं नृपः ॥५७॥ न लेभे तनयं राज्ये ध्यायन्देवं गदाधरम् ॥ अस्थिस्नायुमयंकान्तं दृष्ट्वा सा प्रमदोत्तमा ॥५८॥ अनसूयां

प्राप्त हुई ।। ।५१ ।। तब पुत्रके बिना वह राज्य राजा को इस प्रकार सुखदायी न हुआ जैसे भूखे मनुष्य को भोग वस्तुमें ।।५२।। राजा अपने मनमें सोच-विचार कर तप करने लगा, क्योंकि तप से ही इच्छित मनकी वस्तु प्राप्त होती है ।।५३।। तदन्तर स्त्री समेत चीर-वस्त्र और जटा धारण करके उत्तम मंत्रीको घर सौंपकर तप करने के लिए यात्रा आरम्भ किया ।।५४।। उस समय हरिश्चन्द्र राजाकी पुत्री इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न और सब स्त्रियोंमें उत्तम पद्मिनीने राजाको निकला हुआ देखकर ।। ५५ ।। उस पतिव्रताने तपके लिये उद्यत अपने पतिको देख गहने उतार कर एक चीरको धारण कर लिया ।। ५६ ।। और पतिके साथ गंधमादन नाम पर्वत पर वहां गई, जाकर राजा दश हजार वर्ष तक तप करता रहा ।। ५७ ।। गदाधरदेवका ध्यान करते रहे, परंतु उन्हें पुत्र नहीं प्राप्त हुआ तब उसने हाड और नसें हैं शेष जिसके ऐसे पतिको देखकर

महासाध्वी पप्रच्छ विनयान्विता ॥ भर्तुः प्रतपतः साध्वि वर्षाणामयुतं गतम् ॥ ५९ ॥ तथापि न प्रसन्नोऽभूत्केशवः कष्टनाशनः ॥ व्रतं मम महाभागे कथयस्व यथातथम् ॥६०॥ येन प्रसन्नो भगवान् मम भक्त्या प्रजायते ॥ येन मे जायते पुत्रश्चक्रवर्ती बृहत्तरः ॥६१॥ श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं पतिव्रतपरायणा ॥ यं प्रव्रजन्तं नृपतिं स्वयं वव्राज दीक्षितम् ॥६२॥

तदा प्रोवाच संहृष्टा पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ॥ स्नात्वा मलिम्लुचे सुभ्रु मासद्वादशसंमते ॥ ६३ ॥ त्रिंशद्दिनैश्च भवति मासः पूर्णः शुभानने ॥ तन्मध्ये द्वादशीयुग्मं पद्मिनी परमा तथा ॥ ६४ ॥ उपोष्य तत्प्रकर्तव्यं विधिना जागरैः समम् ॥ शीघ्रं प्रसन्नो भगवान्भविष्यति सुतप्रदः ॥ ६५ ॥ इत्युक्त्वाकथयत्सर्वं मया पूर्वोदितं नृप ॥

॥ ५८ ॥ विनयसे युक्त वह रानी साध्वी अनुसूयासे पूछने लगी कि, हे साध्वी ! मेरे पतिको तप करते दश हजार वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ५९ ॥ परंतु क्लेशके नाश करने वाले भगवान् केशव प्रस नहीं हुये हे महाभागे ! मुझे यथार्थ व्रत बताओ ॥ ६० ॥ जिस व्रतसे मेरी भक्तिसे भगवान् प्रसन्न हों और मुझे चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो ॥६१॥ पतिव्रतमें परायण, जो तपकी दीक्षायुक्त पतिको तपके लिये जाते देख स्वयं भी पतिके साथ चली गई उस कमल नयनी पद्मिनीसे ॥ ६२ ॥ अनसूया प्रसन्न होकर बोलीं कि, हे सुभ्रु ! बारह मासके संमतमें जो मलमास आता है उसमें तू स्नान कर ॥ ६३ ॥ हे शुभानने ! तीस दिन का एक मास होता है उसके मध्यमें द्वादशीयुक्त दो एकादशी हैं एक पद्मिनी और दूसरी परमा ॥ ६४ ॥ विधिपूर्वक जागरणके साथ उस व्रतको करना योग्य है इस व्रतसे पुत्रके देनेवाले भगवान् शीघ्रही प्रसन्न

विधिं व्रतस्य विधिवत्प्रसन्ना कर्दमाङ्गजा ॥६६॥ श्रुत्वा व्रतविधिं सर्वं यथोक्तमनसूयया ॥ चार्वंगयकृत तत्सर्वं
पुत्रप्राप्तिमभीप्सती ॥६७ ॥ एकादश्यां निराहारा सदा जाता च निर्मला ॥ जागरेण युता रात्रौ गीतनृत्यसम-
न्विता ॥ ६८ ॥ पूर्णे वते च वै शीघ्रं प्रसन्नः केशवः स्वयम् ॥ बभाषे गरुडारूढो वरं वरय शोभने ॥ ६९ ॥
श्रुत्वा वाक्यंजगद्धातुः स्तुत्वा प्रीत्या शुचिस्मिता ॥ ययाचेऽद्य वरं देहि मम भर्तुर्बृहत्तरम् ॥ ७० ॥
पद्मिन्यास्तद्वचः श्रुत्वा कृष्णः प्रीतः प्रियंवदः ॥ त्वयाऽहं तोषितो भद्रे प्रत्युवाच जनार्दनः ॥७१॥ मलिम्लुचश्च
मासोऽसौ नाऽन्यो मे प्रीतिदायकः ॥ तन्मध्यैकादशी रम्या मम प्रीतिविवर्धिनी ॥७२॥ सा त्वयोपोषिता सुभ्रु

होंगे ।। ६५ ।। हे नृप ऐसा कहकर कर्दम ऋषिकी पुत्री अनुसूया प्रसन्न होकर पहले मेरे द्वारा कथित विधिको विधिपूर्वक भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होंगे ।। ६५ ।। हे नृप ! ऐसा कहकर कर्दम ऋषिकी पुत्री अनुसूया प्रसन्न होकर पहले मेरे द्वारा कथित विधिको विधिपूर्वक सुनाई ।।६६।। अनसूयाने जैसा कहा उसी विधिसे उस सुन्दर अंगवाली पद्मिनीने पुत्र प्राप्तिकी इच्छासे उस व्रत को किया ।। ६७ ।। एकादशीको सदा वह निर्मल निराहार रहती और रात्रिमें गीत नृत्य करती हुई जागरण करती ।। ६८ ।। और व्रतपूर्ण होने पर शीघ्रही प्रसन्न गरुड पर आरूढ़ भगवान् केशव आकर बोले कि, हे शोभने ! तू वर मांग ।। ६९ ।। जगद्धाता श्रीभगवान् के वचन सुनकर वह शुद्ध मंद मंद मुस्काती हुई प्रेमपूर्वक भगवान्‌की स्तुति करके पतिको इच्छित वर देने की प्रार्थना की ।। ७० ।। पद्मिनीके ये वचन सुनकर कृष्ण प्रिय बचन बोले हे भद्रे ! तुझसे मैं प्रसन्न हूँ ऐसा जनार्दन बोले ।। ७१ ।। यह मलमासका महीना जैसा मुझे प्यारा है वैसा और नहीं है उसके मध्यमें

यथोक्तविधिनामुना ।। तेन त्वया प्रसन्नोऽहं कृतोस्मि सुभगानने ॥ ७३ ॥
तव भर्तुः प्रदास्यामि वरंयन्मनसेप्सितम् ॥ इत्युक्त्वा नृपतिं प्राह विष्णुर्विश्वार्तिनाशनः ॥७४॥ वरं वरय राजेन्द्र
यत्ते मनसि कांक्षितम् ॥ सन्तोषितोऽहं प्रियया तव सिद्धिचिकीर्षया ॥ ७५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विष्णोः प्रसन्नो
नृपसत्तमः ॥ वव्रे सुतं महाबाहुं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥७६॥ न देवैर्मानुषैर्नागैर्दैत्यदानव राक्षसैः ।। जेतुं शक्यो
जगन्नाथ विना त्वां मधुसूदन ॥७७॥ इत्युक्तो बाढमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ नृपोऽसि सुप्रसन्नात्मा हृष्टः
पुष्टः प्रियायुतः ॥ ७८ ॥ समायात्स्वपुरं रम्यं नरनारी मनोरमम् ॥ सपद्मिन्यां सुतं लेभे कार्त्तवीर्यं महाबलम्
॥७९॥ न तेन सदृशः कश्चित्त्रिषु लोकेषु मानवः ॥ तस्मात्पराजितः संख्ये रावणो दशकन्धरः ॥८०॥ न तं

मेरी प्रीतिको बढ़ानेवाली सुन्दर एकादशी होती है ।।७२।। हे सुभ्रु ! तुमने उस एकादशीका व्रत यथोक्तविधिसे किया है, हे सुभगानने ! अतः मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ ।। ७३ ।। तेरे पतिके मन बांछित वर दूंगा, इस प्रकार कहकर विश्व के दुःख हरनेवाले विष्णु राजा से बोले ।।७४।। हे राजेंद्र ! तुमने जो वर मनसे चाहा है उसे मांगो, तुम्हारी सिद्धि चाहने वाली तुम्हारी प्रियासे मैं प्रसन्न हूँ ।।७५।। विष्णु के इस वचनको सुनकर वह प्रसन्न मनसे सब लोकोंसे नमस्कृत जो महाबाहु हैं उसे मांग लिया ।। ७६ ।। हे मधुसूदन ! वह पुत्र ऐसा हो जो देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य, दानव और राक्षस किसीके द्वारा जीता न जाय ।। ७७ ।। इस प्रकार कहने पर भगवान् 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर वहीं अंतर्धान हो गये, प्रसन्न आत्मा से वह राजा प्रिया समेत हृष्ट पुष्ट होकर ।। ७८ ।। नर और नारीसे सुशोभित अपने नगर में आया और

जेतुं समर्थोऽस्ति त्रिषु लोकेषु कश्चन ॥ विना नारायणं देवं चक्रपाणिं गदाधरम् ॥ ८१ ॥ न त्वया विस्मयः कार्यो रावणस्य पराजये ॥ मलिम्लुचप्रसादेन पद्मिन्याश्चाप्युपोषणात् ॥८२॥ दत्तो देवाधिदेवेन कार्तवीर्यो महाबलः॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥८३॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लायाः सम्भवो महान् ॥ ८४ ॥ ये करिष्यन्ति मनुजास्ते यास्यन्ति हरेः पदम् ॥ त्वमेवं कुरु राजेन्द्र यदि चेष्टामभीप्ससि ॥८५॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा धर्मराजोऽतिहर्षितः ॥ चक्रे व्रतं विधानेन बन्धुभिः परिवारितः ॥८६॥ सूत उवाच॥

वह राजा पद्मिनी रानीसे कार्त्तवीर्य नामक महाबली पुत्रको प्राप्त किया ॥ ७९ ॥ तीनों लोकमें उसके समान कोई मनुष्य न था। इससे दशकंधर रावण युद्धमें पराभव पाया ॥ ८० ॥ चक्रपाणिगदाधर नारायण देवके विना तीनों लोकमें उसे जीतने में कोई समर्थ नहीं है ॥८१॥ मलमासके प्रसादसे और पद्मिनीव्रतके करनेसे रावणके हारनेमें तुम्हें विस्मय नहीं करना चाहिये ॥ ८२॥ देवाधिदेव भगवान्ने कार्त्त-वीर्य को महान् बल प्रदान किया था ऐसा कहकर पुलस्त्यजी चले गये ॥ ८३ ॥ और भगवान् कृष्ण बोले-कि, हे अनघ ! जो तुमने पूछा वह सब मैंने तुमसे मलमासके शुक्लपक्षकी एकादशीसे सम्भव फल कहा ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य इस व्रतको करेंगे वे हरिके पदको प्राप्त होंगे। हे राजेन्द्र ! यदि वांछित वस्तुको चाहते हो तुम भी ऐसेही करो ॥ ८५ ॥ केशव भगवान्के वचन सुनकर अतिहर्षित राजा युधिष्ठिर बन्धुओं से युक्त हो विधानपूर्वक व्रतको किया ॥ ८६ ॥ सूतजी बोले-कि, हे द्विज ! तुमने पहले पूँछा था वह सब मैंने तुम्हें कहा। और

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं पुरा द्विज ॥ पुण्यं पवित्रं परमं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८७ ॥ एवंविधं येऽपि व्रतं मनुष्या भक्त्या करिष्यंति मलिम्लुचस्य ॥ उपोषिता यैस्तु सुखप्रदात्री या शुक्लपक्षे भुवि तेऽपि धन्याः ॥ ८८ ॥ श्रोष्यन्ति ये तस्य विधिं समग्रं तेऽप्यंशभाजा मनुजा प्रशस्ताः ॥ ये वै पठिष्यन्ति कथां समग्रां ते वै गमिष्यंति हरेर्निवासम् ॥ ८९ ॥ इत्यधिकशुक्लैकादशीकथा समाप्ता ॥ २५ ॥

परम पवित्र किस पुण्यको आप सुनना चाहते हो ।। ८७ ।। जो मनुष्य इस प्रकार मलमासके व्रतको भक्तिसे करेंगे और जिसने सुखकी देनेवाली शुक्ल पक्षकी एकादशी की है वे पुरुष भी इस पृथिवीमें धन्य हैं ।। ८८ ।। और जो इसकी संपूर्ण विधिको सुनेंगे वे उत्तम मनुष्य धन्य हैं और समग्र कथाको पढ़ेंगे वे निश्चय ही हरिके धामको जायेंगे ।। ८९ ।। इति श्रीमतपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्म-द्विवेदिकृतायामेकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायां मलमासशुक्लपक्षैकादशीपद्मिनीकथा समाप्ता ।। २५ ।।

अथाधिककृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य कृष्णा का कथ्यते विभो ॥ किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जगत्पते ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ परमेति समाख्याता पवित्रा पापहारिका ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां भोगदा च युधिष्ठिर ॥ २ ॥ पूर्वोक्तविधिना कार्या शुक्लायाः सदृशेन वै ॥ पूजयेत्परया भक्त्या नाम्ना देवं नरोत्तमम् ॥३॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ॥ काम्पिल्यनगरे जातां मुनीनामग्रतः श्रुताम् ॥४॥ आसीद्द्विजवरः कश्चित्सुमेधा नाम धार्मिकः ॥ तस्य पत्नी पवित्राख्या पातिव्रत्यपरायणा ॥५॥ कर्मणा केनचिद्विप्रो धनधान्यविवर्जितः ॥ न क्वापि लभते भिक्षां याचन्नपि नरान् बहून् ॥६॥ न भोज्यं लभते

अथाधिकमासकृष्णैकादशीपरमाकथा ।। मलिम्लुचे कृष्णपक्षे परमैकादशी तु या ।। तन्माहात्म्यस्य विवृतिं नृगिरा संतनोम्यहम् ।। १ ।। युधिष्ठिर बोले–कि, हे विभो ! मलमासके कृष्णपक्षकी एकादशी कौनसी है और उसका क्या नाम है और उसकी विधि क्या है ? हे जगत्के स्वामी ! वह कहिये ।। १ ।। श्रीकृष्ण बोले–कि, परमा नामसे प्रसिद्ध वह एकादशी पवित्र और पापोंका नाश करने वाली है, हे युधिष्ठिर ! मनुष्यको भुक्ति और मुक्ति तथा भोगकी देनेवाली है ।। २ ।। पहले जो शुक्लाकी विधि कही है उसके समान ही इस व्रतको करना चाहिये और इसमें परम भक्तिसे नरोत्तम देवका पूजन करे ।। ३ ।। यहां मैं तुमसे एक मनोहर कथा कहता हूं जो कांपिल्य नगरमें हुई मैंने मुनियों से सुनी है ।। ४ ।। सुमेधा नामके एक धर्मात्मा ब्राह्मण थे और उनकी स्त्री पतिव्रता और धर्ममें परायण, पवित्रा नाम वाली थी ।। ५ ।। किसी कर्म से वह धन और धान्य रहित हो गये । वह बहुत मनुष्योंसे मांगता रहा परंतु उसे भिक्षा नहीं मिली ।। ६ ।। न कहीं भोजन मिलता

तादृङ्न वस्त्रं नैव मण्डनम् ॥ रूपयौवनमाधुर्यं नारी शुश्रूषते पतिम् ॥७॥ अतिथिं पूजयेत्क्वापि तदा सा क्षुधिता गृहे ॥ तिष्ठत्येव विशालाक्षी न म्लानमुखपङ्कजा ॥८॥ विलोक्य भार्यां सुदतीं कर्शंतीं स्वकलेवरम् ॥ न भर्त्तारं क्वचिन्नैव नास्त्यन्नमिति भाषते ॥९॥ विचार्य ब्राह्मणश्चित्ते भार्यायाः प्रेमबन्धनम् ॥ निन्दन्भाग्यं स्वकं विप्रः प्रोचे वाक्यं प्रियंवदाम् ॥ १० ॥ कान्ते करोमि किं कार्यं न मया लभ्यते धनम् ॥ याचयामि नरान् भव्यान्न यच्छंति च मे धनम् ॥११॥ किं करोमि क्व गच्छामि त्वं मे कथय शोभने ॥ विना धनेन सुश्रोणि गृहकार्यं न सिध्यति ॥१२॥ देह्याज्ञां परदेशाय गच्छामि धनलब्धये ॥ तस्मिन्देशे च यद्भाव्यं भाग्यं तत्रैव लभ्यते ॥१३॥

न वस्त्र तथा मण्डन । रूप तथा यौवनकी मधुरतासे युक्त जो वह ब्राह्मण है वह पवित्रा उसकी सेवा करती ॥ ७ ॥ यदि कभी अतिथिका पूजन करती तो व विशालाक्षी भूखी रहती, परंतु उसका मुख कभी म्लान नहीं होता ॥ ८ ॥ वह सुन्दर दांतोंवाली भार्या अपने शरीरको क्षीण होती हुई देखकर सोचा कि, वह पतिसे कभी नहीं कहती कि, घरमें अन्न नहीं है ॥ ९ ॥ वह ब्राह्मण भार्याके दृढ प्रेमको देखकर अपने भाग्यकी निन्दा करता और बड़े प्रेम से कहने लगा ॥१०॥ हे कान्ते ! मैं क्या करूं मुझे धन नहीं मिलता है, अच्छे लोगों से मांगता भी हूँ पर मुझे धन नहीं मिलता है ॥ ११ ॥ क्या करूं और कहां जाऊं, हे शोभने ! तू मुझे बता ! हे सुश्रोणि ! धनके बिना घरका काम नहीं चलता है ॥ १२ ॥ मुझे परदेश जानेकी आज्ञा दो मैं धनकी प्राप्तिके लिये जाऊँ, वहां भी होनहार और भाग्यानुसार कुछ प्राप्त करूँ ॥१३ ॥

उद्यमेन विना सिद्धिः कर्मणां नोपलभ्यते ॥ तस्माद्बुधाः प्रशंसंति सर्वथैव शुभोद्यमम् ॥१४॥ श्रुत्वा कान्तस्य वचनं साश्रुनेत्रा विचक्षणा ॥ प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयानतकंधरा ॥ १५ ॥ त्वत्तो नास्ति सुविज्ञाता त्वयाऽऽज्ञप्ता ब्रवीम्यहम् ॥ हितैषिणो नरा ब्रूयुः शाश्वदापद्गता अपि ॥ १६ ॥ पूर्वदत्तं हि लभते यत्र कुत्र महीतले ॥ विना दानं न लभ्येत मेरौ कनकपर्वते ॥ १७ ॥

पूर्वदत्ता हि या विद्या पूर्वदत्तं हि यद्धनम् ॥ पूर्वदत्ता हि या भूमिरिह जन्मनि लभ्यते ॥१८॥ यद्धात्रा लिखितं भाले तत्तत्रैव हि लभ्यते ॥ विना दत्तेन किं क्वापि लभ्यते नैव किञ्चन ॥ १९ ॥ पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र न मया न त्वया क्वचित् ॥ सत्पात्राणां करे दत्तं स्वल्पं भूर्यपि सद्धनम् ॥२०॥ इह देशे परे वापि दत्तं सर्वत्र लभ्यते ॥

उद्यमके बिना कार्यकी सिद्धि नहीं होती है अतः पंडितजन सर्वथा शुभ उद्यमकी प्रशंसा करते हैं ।। १४ ।। पतिका वचन सुनकर सुलोचना आंखोंमें आंसू भर हाथ जोड़ नम्रतासे गर्दन को नीचे किये हुये बोली ।। १५ ।। आपसे कोई अधिक ज्ञानी नहीं तुम्हारी आज्ञासे मैं कहती हूँ । सदा आपत्तिमें स्थित भी हित की ही बात मनुष्य कहता है ।। १६ ।। इस भूतल पर पूर्व जन्ममें दिया हुआ ही मिलता है, बिना दानके सुवर्णके मेरु पर्वत पर भी नहीं मिलता है ।। १७ ।। पूर्वकी दी हुई जो विद्या है और पूर्वका दिया जो धन है और पूर्वकी दी हुई जो भूमि है वही इस जन्ममें प्राप्त होती है ।। १८ ।। ब्रह्माने जो भाग्यमें लिख दिया वही मिल पाता है, क्या कभी बिना कुछ दिये मिलता है ।।१९।। हे विप्रेंद्र ! पहले जन्ममें मैंने और तुमने कुछ थोड़ा-बहुत धन सत्पात्र को नहीं दिया है ।। २० ।। यहां अथवा परदेशमें दिया हुआ ही सर्वत्र मिलता

अन्नमात्रं तु विश्वेशो विना दत्तं च यच्छति ॥ २१ ॥ तस्मादत्रैव भो विप्र स्थातव्यं भवता मया ॥ भवद्विना न तिष्ठामि क्षणमात्रं महामुने॥ २२ ॥ न माता न पिता भ्राता न श्वश्रूः श्वशुरो जनाः ॥ न सत्कुर्वन्ति तं केऽपि स्वजनाश्च पुरो गताः ॥२३॥ भर्तृहीनां विनिन्दन्ति दुर्भगेति वदन्ति ताम् ॥ तस्मादत्र स्थिरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ॥२४॥ भवतां भाग्ययोगेन प्राप्तिश्चात्र भविष्यति ॥ श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं स्थितस्तत्र विचक्षणः॥२५॥ तावत्तत्र समायातः कौण्डिन्यो मुनिसत्तमः॥ दृष्ट्वा समागतं हृष्टः सुमेधा द्विजसत्तमः ॥२६॥ सभार्यः सहसोत्थाय ननाम शिरसाऽसकृत् ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ २७ ॥

है, और विश्वेश अन्नमात्र तो अदानीको भी देते हैं ।। २१ ।। हे विप्रेंद्र ! अतः हमें तुम्हें यहांही रहना चाहिये, हे महामुने ! तुम्हारे विना मैं क्षणमात्र भी नहीं रह सकता हूँ ।। २२ ।। न माता न पिता न भाई न सास न ससुर न जन और न भाई-बंधु जो सामने स्थित हैं कोई भी आदर नहीं करते हैं ।।२३।। पतिसे हीन स्त्रीकी निंदा करते हैं और उसे दुर्भगा कहते हैं अतः यहां ही रहकर यथासुख विहार करो।।२४।। तुम्हारे भाग्य योग्य यहांही प्राप्ति होगी, यह उसका वचन सुनकर वह विचक्षण वहांही स्थित रह गया ।।२५।। तब वहां मुनियोंमें श्रेष्ठ कौंडिन्य ऋषि आये । उनको आया हुआ देखकर वह श्रेष्ठ-ब्राह्मण सुमेधा ।। २६ ।। स्त्रीसमेत शीघ्रही उठकर शिर नवाकर बार-बार नमस्कार किया और कहने लगे कि, मैं धन्य हूँ कृतार्थ हूँ आज मेरा जन्म सफल हो गया ।। २७ ।। बड़े भाग्यसे आपके दर्शन हुये । मुनीश्वर से कहने

यद्दृष्टोऽसि महद्भाग्यादित्युवाच मुनीश्वरम् ॥ दत्त्वा सुविष्टरं तस्मै पूजयामास तं द्विजम् ॥ २८ ॥
भोजयित्वा विधानेन पप्रच्छप्रमदोत्तमा ॥ विद्वन्केन प्रकारेण दारिद्र्यस्य क्षयो भवेत् ॥ २९ ॥ विना
दत्तं कथं लभ्येद्धनं विद्यां कुटुंबिनीम् ॥ मां भर्त्ता परित्यज्य गन्तुकामोऽद्य वर्त्तते ॥ ३० ॥ अन्यदेशं
पराँल्लोकान् याचितुं परपत्तने ॥ रक्षितोऽस्ति मया विद्वन् हेतुभिः कैर्महत्तरैः ॥ ३१ ॥ नादत्तं लभ्यते
किञ्चिदित्युक्त्वा स निवारितः ॥ मम भाग्यान्मुनीन्द्राद्य त्वमत्रैव समागतः ॥ ३२ ॥ त्वत्प्रसादाद्दरिद्रं मे
शीघ्र नश्यत्यसंशयम् ॥ केनोपायेन विप्रेन्द्र दरिद्रं नश्यति ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ कथयस्व कृपासिन्धो व्रतं तीर्थं

लगा । और सुन्दर आसन देकर उनका पूजन किया ॥२८॥
विधिसे भोजन कराकर वह उत्तम स्त्री पूछने लगी कि, हे विद्वन्! किस प्रकारसे मेरे दारिद्र्यका नाश हो ॥ २९ ॥ पूर्वजन्ममे विना दिये धन, विद्या, और स्त्रीको किस प्रकार प्राप्त करें, मेरा पति मुझे छोड़कर अब जानेकी इच्छा करता है ॥ ३० ॥ दूसरे देशके रहनेवाले मनुष्योंसे पराये नगरमें मांगनेको जा रहा था मैंने उसे बहुत विनय करके रक्खा है ॥ ३१ ॥ न देनेवाले को कुछ भी नहीं मिलता है यह कहकर निवारण किया । हे मुनींद्र! मेरे भाग्यसे अब आप यहां आ गये हो ॥३२॥ आपके प्रसादसे मेरा दरिद्र निस्संदेह नष्ट हो जायगा, हे विप्रेंद्र! किस उपायसे मेरा दरिद्र नष्ट होगा ॥ ३३ ॥ हे कृपासिंधो! ऐसे व्रत तीर्थ और तप

तपादिकम् ॥ श्रुत्वा तस्याः सुशीलाया भाषितं मुनिपुङ्गवः ॥३४॥ प्रोवाच प्रवरं चित्ते विचार्य व्रतमुत्तमम् ॥ सर्वपापौघशमनं दुःखदारिद्र्यनाशनम् ॥३५॥ परमा नाम विख्याता विष्णोस्तिथिरनुत्तमा ॥ मलिम्लुचे तु या कृष्णा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥३६॥ तस्या उपोषणं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत् ॥ विधिना जागरैः साकं गीतनृत्यादिकं चरेत् ॥३७॥ धनदेन पुरा चीर्णं व्रतमेतत्सुशोभनम् ॥ तदा तुष्टेन रुद्रेण धनानामधिपः कृतः ॥३८॥ हरिश्चन्द्रेण च कृतं धनानामधिपः कृतः ॥ पुनः प्राप्ता प्रिया तेन राज्यं निहतकण्टकम् ॥३९॥

तस्मात्कुरु विशालाक्षि व्रतमेतत्सुशोभनम् ॥ विधिना विधियुक्तेन समं जागरणेन च ॥ ४० ॥ इत्युक्त्वा

आदि कहिये, मुनि श्रेष्ठ सुशीलाके वचन सुनकर ।। ३४ ।। चित्तमें श्रेष्ठ तथा उत्तम व्रत विचारकर सब पापोंके समूहको शांत करनेवाले और दुःख तथा दरिद्र को नाश करनेवाले उत्तम व्रतको कहने लगे ।। ३५ ।। परमा नामसे विख्यात सबसे उत्तम विष्णुकी तिथि जो मलमासके कृष्णपक्षमें भुक्ति मुक्ति रूप फल की देनेवाली है ।।३६।। मनुष्य उस व्रत को करके धन धान्यसे युक्त हो जाता है विधिपूर्वक जागरण करता हुआ गीत और नृत्य आदि करे ।। ३७ ।। यह सुशोभन व्रत पहले कुबेर द्वारा किया गया तब शिवजी प्रसन्न होकर उन्हें धनका स्वामी बना दिया ।। ३८ ।। हरिश्चद्रने तो पुनः पत्नी और बहुत वैंभव वाले अकंटक राज्य को प्राप्त किया ।। ३९ ।।

हे विशालाक्षि ! अतः तू इस उत्तम व्रतको विधिपूर्वक कर और विधि विधान युक्त व्रतके साथ जागरण भी कर ।। ४० ।। हे पांडव ! इसप्रकार उसकी सब विधि प्रीतिसे परम संतुष्ट होकर भक्तिसे प्रसन्नतापूर्वक कहा ।। ४१ ।।

तद्विधिं सर्वं कथयामास पाण्डव ॥ प्रीत्या परमसन्तुष्टस्ततो भक्त्या प्रसादतः ॥ ४१ ॥ पुनः प्रोवाच व्रतं विप्र पञ्चरात्रिव्रतं शुभम् ॥ यस्यानुष्ठानमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च प्राप्यते ॥ ४२ ॥ परमादिवसे प्रातः कृत्वा पौर्वाह्णिकं विधिम् ॥ कुर्यात्सुनि यमाञ्छक्त्या पञ्चरात्रिव्रतादरात् ॥ ४३ ॥ प्रातः स्नात्वा निराहारो यस्तिष्ठेद्दिनपञ्चकम् ॥ स गच्छेद्वैष्णवं स्थानं पितृमातृप्रियासमम् ॥ ४४ ॥ एकाशनस्तु यो भूयाद्दिनानां पञ्चकं नरः॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्ग लोके महीयते ॥ ४५ ॥ स्नात्वा यो भोजयेद्विप्रं दिनानां पञ्चकं नरः॥ भोजितं तेन विधिना सदेवासुरमानुषम् ॥४६॥ पूर्णकुम्भं सुतो येन यो ददाति द्विजातये॥ दत्तं तेनैष सकलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥४७॥ तिलपात्रं तुयो दद्यात्स्नात्वा पञ्चदिनं नरः ॥ स भुक्त्वा विपुलान्

फिर उस ब्राह्मणसे शुभ पंचरात्रिव्रत कहा, जिसके करने मात्रसेही भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ परमाके दिन प्रातःकाल पूर्वाह्णिक विधि करके पंचरात्रि व्रतको आदरसे शक्तिके अनुसार सुन्दर नियमको करे ॥ ४३ ॥ प्रातःकाल स्नान करके जो पुरुष पांच दिनों तक निराहार रहता वह पिता माता और स्त्री समेत विष्णुके स्थानको जाता है ॥ ४४ ॥ फिर जो मनुष्य पांच दिन एक बार भोजन करके रहता है वह सब पापों से छूटकर स्वर्गलोकमें आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ और जो पांच दिनों तक स्नान करिके ब्राह्मणको भोजन कराये तो वह विधिपूर्वक देतवा, असुर और मनुष्य समेत त्रिलोकीको मानो भोजन कराया ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य जल भरे कुंभको ब्राह्मणको दान करे वह मानो चराचरसहित ब्रह्मांडको दान कर दिया ॥ ४७ ॥ जो नर पांच दिन

भोगान्सूर्यलोकेमहीयते ॥४८॥ ब्रह्मचर्येण यस्तिष्ठेद्दिनानां पञ्चकं नरः ॥ स स्वर्गे भुञ्जते भोगान् स्ववैश्याभिः समं मुदा ॥४९॥ एवंविधि व्रतं साध्वि कुरु त्वं पतिना शुभे॥ धनधान्ययुता भूत्वा स्वर्गं यास्यसि सुव्रते ॥५०॥ इत्युक्ता सा व्रतं चक्रे कौण्डिन्येन यथोदितम् ॥ भर्त्रा समं भावयुता स्नात्वा मासि मलिम्लुचे ॥ ५१ ॥ पञ्चरात्रव्रते पूर्णे परायाः प्रियसंयुता ॥ सापश्यद्राजभवनादायान्तं नृपनन्दनम् ॥ ५२ ॥ दत्त्वानवीनं भवनं भव्य वस्तुसमन्वितम् ॥वासयामास विधिना विधिना प्रेरितः स्वयम्॥५३॥ दत्त्वा ग्रामं वृत्तिकरं ब्राह्मणाय सुमेधसे॥ प्रसन्न-स्तपसा राजा तं स्तुत्वा स्वगृहं ययौ ॥५४॥ मलिम्लुचस्य मासस्य परायाः परमादरात्॥ उपोषणात्सकृष्णायाः पञ्चरात्रव्रतेन च ॥५५॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसौख्यसमन्वितः ॥ भुक्त्वा भोगान् प्रियासार्द्धमन्ते विष्णुपुरं

स्नान करके तिलपात्रको दान करता है वह संपूर्ण भोगोंको भोगकर सूर्यके लोकमें आनंद करता है ।। ४८ ।। जो मनुष्य पांच दिन ब्रह्मचर्य से रहता है वह स्वर्गमें अप्सराओंके साथ आनंदसे भोग भोगता है ।। ४९ ।। हे शुभे ! तू पतिसमेत ऐसे व्रतको कर तो धनधान्यसे युक्त होकर अन्तमें स्वर्गको प्राप्त होगी ।। ५० ।। इस प्रकार वह कौंडिन्यके कहनेके अनुसार पतिसमेत स्नान करके मलमासमें व्रतको करती है।। ५१ ।। और पांच रात्रिके व्रत पूरे होने पर पतिसमेत परमाका व्रत किया । तब वह राजभवनसे आते हुये राजाके पुत्रको देखा ।। ५२ ।। सुन्दर सब वस्तुओं से भरपूर नवीन घर देकर विधाता से प्रेरित वह स्वयं विधिपूर्वक उन्हें वास स्थान दिया ।। ५३ ।। और जीविकाके निमित्त सुमेधाको गांव देकर उनके तपसे प्रसन्न वह राजा स्तुति करके अपने घरको चला गया ।। ५४ ।। मलमासके कृष्णपक्षकी परमा नामक एकादशीका

ययौ ॥५६॥ ये करिष्यन्ति मनुजाः पराया व्रतमुत्तमम् ॥ पञ्चरात्रभवं पुण्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥५७॥ पुष्करावानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ धेनुमुख्यानि दानानि तेन चीर्णानि सर्वथा ॥५८॥ गयाश्राद्धं कृतं तेनपितरः परतोषिताः॥ व्रतानि तेन चीर्णानि व्रतखंडोदितानि वै ॥५९॥ द्विपदां ब्राह्मणः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ देवानां वासवः श्रेष्ठस्तथा मासो मलिम्लुचः ॥६०॥ मलिम्लुचे पञ्चरात्रं महापापहरं स्मृतम् ॥ पञ्चरात्रे च परमा पद्मिनी पापशोषणी ॥ ६१ ॥ साप्यशक्तैः प्रकर्तव्या यथाशक्त्या विचक्षणैः मानुषं जनुरासाद्य न स्नातो येर्मलिम्लुचः ॥६२॥ ते जन्मघातिनो नूनं नोपोष्य हरिवासरे ॥ चतुरशीति लक्षाणि

परम आदरसे जो व्रत करता है और पंचरात्रिके व्रतसे शीघ्र ही ॥ ५५ ॥ सब पापोंसे छूटकर सब सुखोंसे युक्त वह सुमेधा ब्राह्मण इस लोकमें प्रियासहित भोगोंको भोगकर अंतमें विष्णुलोकको गया ॥५६॥ जो मनुष्य पराके उत्तम व्रतको करेंगे उनके पुण्य और पंचरात्रका पुण्य जो है उसे मैं कहनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥५७॥ पुष्कर आदि तीर्थ, गंगा आदि नदी, गोदान आदि दान यह सब उस मनुष्यने किये जिसने पराके व्रत किये ॥ ५८ ॥ उसने गया श्राद्ध किया, पितर संतुष्ट किया, व्रतखण्डमें कहे हुये सब व्रत किया जिसने यह व्रत किया ॥ ५९ ॥ द्विपदोंमें ब्राह्मण, चतुष्पदोंमें गौ श्रेष्ठ है तथा देवताओंमें इंद्र श्रेष्ठ है वैसे ही महीनोंमें मलमास है ॥ ६० ॥ और मलमासमें पापोंके हरनेवाले पिछले पांच दिन और पंचरात्रिमें परमा और पापोंको नष्ट करनेवाली पद्मिनी उत्तम हैं ॥ ६१ ॥ वह एकादशी पंडितों द्वारा अशक्तिमें यथाशक्ति करनी चाहिये और मनुष्यजन्मको पाकर जिसने मलमासका व्रत नहीं किया ॥ ६२ ॥ और जिस मनुष्यने हरिवासरकाव्रत नहीं किये वे चौरासी

लभन्ते योनिसंकटे ॥ ६३ ॥
प्राप्यते मानुषं जन्म दुर्लभं पुण्यसञ्चयैः ॥ तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन परमाया व्रतं शुभम् ॥ ६४ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वाऽनघ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य परमायाः
समुद्भवम् ॥ ६५ ॥ तत्सर्वं ते समाख्यातं कुरुष्वावहितो नृप ॥ ६६ ॥ माहात्म्यं यदुपतिनोदितं निशम्य नच्चके
व्रतमथ प्रियासमेतः ॥ भुक्त्वाऽसौ दिवि भुवि दुर्लभांश्च भोगान्नीतोऽसौ सुरवरमंदिरं सुहृष्टः ॥ ६७ ॥
येऽप्येवं भुवि मनुजा मलिम्लुचस्य सुस्नाताः शुभ विधिना समाचरंति ॥ ते भुक्त्वादिवि विभव सुरेन्द्रतुल्यं
गच्छेयुस्त्रिभुवन वंदितस्य गेहम् ॥ ८ ॥ इति श्रीमदधिककृष्णैकादशी परमामाहात्म्यं समाप्तम् ॥ २६ ॥

लाख योनियोंके संकटमें भटकते हैं ।। ६३ ।। दुर्लभ यह मनुष्य देह बड़े पुण्यसे मिलता है अतः यत्नपूर्वक परमाका शुभ व्रत करना चाहिये ।। ६४ ।। श्रीकृष्ण बोले–कि, हे पापरहित ! मलमास और परमा व्रत से प्राप्त होने वाला सब फल आपके पूछनेसे कहा ।। ६५ ।। सब कुछ मैंने तुम्हें सुनाया अतः हे नृप ! तुम सावधानी से करो ।। ६६ ।। यदुपति श्रीकृष्ण महाराज के द्वारा कथित माहात्म्य को सुनकर राजा युधिष्ठिर भाई भीमादि और पत्नी द्रौपदी सहित व्रत किये और स्वर्गलोकमें दुर्लभ भोग को भोगकर अन्त में विष्णुलोक को प्राप्त किया ।। ६७ ।। जो मनुष्य मलमासमें विधिवत् स्नान एवं दोनों एकादशीके व्रत और पंचरात्रिका व्रत करते हैं वे स्वर्गमें इन्द्रके समान ऐश्वर्य-सुख भोगकर अन्त में भगवान् विष्णु के धाम को जाते हैं ।। ६८ ।।

दोहा—अब्धिवेदनवचन्द्रमित, विक्रम संवत् जान। चैत्रशुक्ल शुभपंचमी, भौमवार शुभ मान ।। १ ।।

टीका भाषामें करी, केशवपूर्वप्रसाद। जाके सुनतहिं नरनके, नाशत सकल विषाद ।। २ ।।

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिकृतायामकादशीमाहात्म्यभाषाटीकायां दीपिकासमाख्यायामधिकमासकृष्णैकादशीपरमाकथा समाप्ता ।। २६ ।।

इति एकादशीमाहात्म्यं हिन्दी टीकासमेतं समाप्तम्

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट.
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS